



# Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC  
(CGPA 2.93)

Gajendrasinh, Zala, 2012, “डॉ. राही मसूम राजा के उज्ज्यासों में युग –चेतना”,  
thesis PhD, Saurashtra University

<http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/1017>

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study,  
without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first  
obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any  
format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title,  
awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service  
<http://etheses.saurashtrauniversity.edu>  
repository@sauuni.ernet.in

# “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में युग-चेतना”

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिन्दी) की  
उपाधि हेतु प्रस्तुत होनेवाला  
शोध-प्रबन्ध



❖ प्रस्तुतकर्ता ❖  
गजेन्द्रसिंह ए. झाला

व्याख्याता

श्री ए.वी.जे. ओझा इन्स्टीट्यूट ओफ बी.एड्. कॉलेज  
लखतर (जिला : सुरेन्द्रनगर)



❖ निर्देशक ❖

डॉ. वखतसिंह गोहिल

प्राचार्य एवं अध्यक्ष

गार्डी आर्ट्स एण्ड कोमर्स कॉलेज

मालिया-हाटीना

जिला : जूनागढ़

वर्ष : २०१२

## प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रा. गजेन्द्रसिंह ए. झाला ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए मेरे निर्देशन, निरीक्षण एवं मार्गदर्शन में “**डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में युग-चेतना**” शीर्षक से शोध प्रबंध तैयार किया है। इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन एवं अनुशीलन करके वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है।

साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कोई उपयोग हुआ है।

स्थल : मालिया-हाटीना

निर्देशक

दिनांक : \_\_\_\_\_

**डॉ. वखतसिंह गोहिल**

प्राचार्य एवं अध्यक्ष

गार्डी आर्ट्स एण्ड कोमर्स कॉलेज

मालिया-हाटीना

जिला - जूनागढ़

## भूमिका

### ❖ पूर्व सूत्र

साहित्य मनुष्य के विचारों की अभिव्यक्ति है । मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है । हिन्दी साहित्य में गद्य और पद्य दो विधाएँ हैं । इन विधाओं में गद्य मनुष्य के जीवन से अधिक निकट है । गद्य में मनुष्य के विचारों की पूर्णतः अभिव्यक्ति निहित होती है । हिन्दी साहित्य में गद्य विधा के अंतर्गत उपन्यास विधा सर्वोन्मुखी रही है । साहित्य मनुष्य को पतन से उत्थान की ओर ले जाता है । इसलिए साहित्य को लोकहित एवं कल्याण का द्योतक माना जाता है ।

हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधाओं में उपन्यास साहित्य सबसे आधुनिक है । स्वतंत्रता के बाद इस विधा में अनेक परिवर्तन हुए । आरंभ में उपन्यासों में विषयवस्तु का स्थान तिलस्मी और ऐयारी कथाओं का था, वह स्थान बदल गया । हिन्दी उपन्यास में प्रेमचन्द के आगमन का पहला उल्लेखनीय असर यह हुआ कि ऐयारी-तिलस्मी और अपराधप्रधान तथा जासूसी कथा पुस्तकों का दौर समाप्त हो गया । उपन्यास का संबंध समाज और समाज की विभिन्न समस्याओं के साथ जोड़ा गया । हिन्दी के विभिन्न साहित्यकारों ने उपन्यास का संबंध मानव जीवन से जोड़ा । अतः तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का वर्णन इन साहित्यकारों ने उपन्यासों में किया । उपन्यासकार उपन्यास में कल्पना का सहारा लेकर वास्तविक परिस्थितियों को जाँचता है, परखता है और उनका समाधान उपन्यास के माध्यम से खोजने का प्रयत्न करता है । इसलिए उपन्यास आधुनिक युग की सर्वाधिक एवं शक्तिशाली विधा मानी जाती है ।



प्रेमचन्द का समकालीन मध्यमवर्गीय समाज अन्तर्विरोध, सामाजिक मान्यताओं तथा परंपरागत धारणाओं से ग्रस्त था । प्रेमचन्द ने उसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखा, उसका अध्ययन विश्लेषण किया तथा उसे अपने कथा संसार के माध्यम से प्रस्तुत किया । उपन्यासकार जिस समाज से साहित्य रचना की प्रेरणा लेता है, उसे अपनी रचनाओं से प्रेरित करके एक प्रगतिशील मार्ग का निर्माण करता हैं । जिससे बाधक पुरातन मान्यताओं को त्यागकर नये युग की प्रवृत्तियों को सहज स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है । आज के परिवर्तन युग में मनुष्य जीवन संघर्षमय बन गया हैं । आज मनुष्य कई समस्याओं का सामना करता है । इन समस्याओं का समाधान केवल साहित्य के माध्यम से किया जा सकता हैं । इसलिए आज सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि समस्यायें और उनका समाधान देने में उपन्यास भी समर्थ बन पाया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में युग-चेतना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया हैं । डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में विभिन्न समस्याएँ, नारी जीवन की समस्या, पति-पत्नी के विवाह संबंधी समस्या, टूटते परिवार, मूल्य विघटन आदि का चित्रण किया हैं । डॉ. राही के उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक चेतना को स्पष्ट करने का विनम्र प्रयत्न किया गया है ।

## ❖ प्रेरणा एवं विषय-चयन

शोधकार्य एक जटिल प्रक्रिया है, किसी भी विषय में शोधकार्य करने से पूर्व संबंधित विषय का चयन करना पड़ता है । विषय चयन की समस्या मेरे लिए बहुत मुश्किल कार्य था । मेरे शिक्षा कार्य के दौरान हिन्दी साहित्य के प्रति आरंभ से लगाव रहा था । हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में मुझे उपन्यास विधा सबसे प्रिय रही हैं । इसलिए उपन्यास विधा के संदर्भ में कार्य करना मैंने पसंद किया । उपन्यास विधा में कुछ नया करने की तमन्ना थी, इसलिए मेरे

इस स्वप्न को साकार करने के लिए सबसे पहले गुरुवर डॉ. वखतसिंह गोहिल साहब के सामने अपना विचार प्रस्तुत किया । बाद में डॉ. वखतसिंह गोहिल साहब के साथ विचार विमर्श करने के बाद तथा जरूरी परामर्श और मार्गदर्शन से उन्होंने डॉ. राही मासूम रज़ा का उल्लेख करके उनके विषय में जानकारी देते हुए उनके उपन्यासों के बारे में चर्चा की । डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों पर शोधकार्य करना मेरे लिए एक नया विषय था, इसलिए मैंने शोधकार्य के लिए डॉ. राही मासूम रज़ा का चयन किया । डॉ. वखतसिंह गोहिल साहब के साथ चर्चा एवं मार्गदर्शन के उपरांत “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में युग-चेतना” विषय निर्धारित किया गया ।

डॉ. राही मासूम रज़ा का स्थान प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यासकारों में आता है । डॉ. राही प्रेमचन्दोत्तर युग के एक सशक्त उपन्यासकार रहे हैं । डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक समस्याओं और उन समस्याओं से उत्पन्न परिस्थितियों को अपने साहित्य में स्थान दिया है । पूर्व संशोधित शोधकार्य पर दृष्टिपात करने से देखा कि इस विषय पर शोधकार्य नहीं हुआ है । अतः मेरे मार्गदर्शक गोहिल साहब ने डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यास साहित्य पर शोधकार्य करने की स्वीकृति प्रदान की और परम आदरणीय गुरुवर के निर्देशन में मैं यह शोधकार्य को संपन्न कर पाया हूँ, इसकी मुझे विशेष प्रसन्नता हो रही है ।

### ❖ सामग्री संकलन

शोधकार्य करना और इसके लिए सामग्री संकलन करना कठिन बात है । बहुत परिश्रम के फलस्वरूप इस कार्य को पूर्ण किया जा सकता है । शोधकार्य करने के लिए प्रस्तुत विषय के अनुरूप सामग्री का संकलन करना आवश्यक हैं । शोधकार्य के अनुरूप सामग्री का संकलन प्रामाणिक रूप से होना अनिवार्य माना जाता हैं । जितनी सामग्री ठोस एवं प्रामाणिक उतना ही शोधकार्य

उच्चकोटी का एवं श्रेष्ठ माना जाता हैं । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अपने आप में एक नया विषय था । अतः डॉ. राही मासूम रज़ा के संदर्भ में सामग्री प्राप्त करना थोड़ी कठिन बात थी । किन्तु माननीय डॉ. वखतसिंह गोहिल साहब के मार्गदर्शन से वह सरलता से प्राप्त हो सकी । जब मैंने 'डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में युग-चेतना' को अपना पीएच.डी. का विषय पसंद किया, तब मैंने डॉ. राही मासूम रज़ा के संदर्भ में पूर्व हुए संशोधन का अभ्यास किया । शोध प्रस्ताव की रूपरेखा तैयार करने के लिए डॉ. राही के उपन्यास प्राप्त करने थे, जो मुझे मालिया (हाटीना) आर्ट्स व कोमर्स कोलेज से प्राप्त हुए । इसके अलावा सहायक सामग्री प्राप्त करने के लिए सौराष्ट्र विश्वविद्यालय - राजकोट, गुजरात विद्यापीठ - अहमदाबाद, जिला पुस्तकालय - सुरेन्द्रनगर, ए. वी. जे. ओझा बी.एड्. कोलेज - लखतर, में से मुझे बहुत सी पुस्तकें प्राप्त हुई । डॉ. राही के व्यक्तित्व एवं संपूर्ण कृतित्व की विशेष जानकारी प्राप्त करने में 'डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में व्यक्त जीवन दर्शन' पुस्तक इस शोधकार्य में मुझे अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई । साथ ही साथ राजकमल प्रकाशन दिल्ली, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, राधाकृष्णन प्रकाशन दिल्ली से भी मुझे कुछ पुस्तकें प्राप्त हुई । इस सामग्री संकलन में बड़ी कठिनता होते हुए भी मेरे मार्गदर्शक एवं मेरे आत्मीय लोगों के सहयोग से मेरा यह कार्य सफल हुआ और मेरा यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत हो सका ।

### ❖ शोध-कार्य का उद्देश्य

किसी भी कार्य करने के पीछे कोई उद्देश्य होता है । बिना उद्देश्य कोई भी कार्य नहीं होता । शोधकार्य जैसा कठिन कार्य भी बिना उद्देश्य नहीं हो सकता । मेरे इस शोधकार्य के पीछे भी महत्वपूर्ण उद्देश्य छिपा हैं जो इस प्रकार हैं ।

- इस शोध प्रबन्ध में डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों को विस्तृत रूप से प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है ।
- हिन्दी उपन्यास साहित्य में डॉ. राही मासूम रज़ा का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है । अतः उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संपूर्ण अध्ययन इस शोधकार्य से प्राप्त होगा ।
- डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में युग-चेतना पर विवेचन करने का कार्य आलोचना जगत में अपेक्षित एवं आवश्यक होगा ऐसी आशा है ।
- प्रस्तुत शोधकार्य का अध्ययन भविष्य के छात्र, शोधार्थी एवं पाठकों के लिए सहायक एवं मार्गदर्शक का कार्य करेगा ।

### ❖ पूर्ववर्ती शोधकार्य

डॉ. राही मासूम रज़ा पर जो पूर्ववर्ती शोधकार्य हुए हैं, उसकी जानकारी सामग्री संकलन करने से प्राप्त हुई है । मेरी जानकारी के अनुसार अब तक डॉ. राही मासूम रज़ा पर निम्नांकित विद्वत्तजनों ने शोधकार्य किये हैं ।

१. डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में व्यक्त जीवन दर्शन – डॉ. सुनंदा मग्गीरवार
२. डॉ. राही मासूम रज़ा और उनका हिन्दी उपन्यास साहित्य एक विश्लेषणात्मक अध्ययन – डॉ. एम. एम. झिपारे
३. डॉ. राही मासूम रज़ा एक अध्ययन – डॉ. जिलेदारसिंह
४. उपन्यासकार राही मासूम रज़ा (आँचलिकता के परिप्रेक्ष्य में) – डॉ. सुनंदा मग्गीरवार

५. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में समकालीन संदर्भ – डॉ. शैलजा शराफ (जायस्वाल)
६. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन – डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन
७. राही मासूम रज़ा का रचना संसार – रेहाना रिजवी  
उपर्युक्त सारे ग्रंथ मेरे शोधकार्य में उपयोगी सिद्ध हुए हैं । पूर्ववर्ती शोध प्रबन्धों का अध्ययन करके मैंने इस शोधकार्य को नई दिशा देने का यथासंभव प्रयत्न किया है ।

### ❖ प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की विशेषताएँ

“डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में युग-चेतना” मेरे इस शोध प्रबन्ध की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं ।

- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को अध्ययन की सुविधा के लिए विभिन्न पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है ।
- इस शोध प्रबन्ध के द्वारा डॉ. राही मासूम रज़ा के संपूर्ण व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है ।
- इस शोध प्रबन्ध में डॉ. राही के सभी उपन्यासों का मूल्यांकन करते हुए उनमें चित्रित विभिन्न चेतनाओं को स्पष्ट किया गया है ।
- युग-चेतना के माध्यम से डॉ. राही के उपन्यासों की प्रवर्तमान युग में सार्थकता सिद्ध करने का प्रयास किया गया है ।
- प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में डॉ. राही के ‘नीम का पेड़’ उपन्यास का प्रथम बार उल्लेख एवं परिचय दिया गया है ।

- इस शोध प्रबन्ध में डॉ. राही मासूम रज़ा को एक युग चेता साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत करने का यथा संभव प्रयत्न किया गया है ।

### ❖ शोध की संभावनाएँ

डॉ. राही मासूम रज़ा हिन्दी साहित्य जगत के जाने माने और प्रतिभाशाली साहित्यकार है । उनका साहित्य शोध की अनेक संभावनाएँ रखता है । प्रस्तुत शोधकार्य के दौरान मुझे उनके व्यक्तित्व एवं साहित्य में शोधकार्य करने की कई संभावनाएँ दिखाई पड़ती है । ‘डॉ. राही और उनका फिल्मी जीवन’ इस विषय को लेकर शोधकार्य की पर्याप्त संभावनाएँ अभी भी उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त ‘डॉ. राही मासूम रज़ा के काव्य में क्रांतिकारी विचार’, ‘डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में नारी चेतना’, ‘डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में भाषा-शैली’ इत्यादि विषयों की संभावनाएँ दृष्टिगोचर होती है । इन संभावनाओं के आधार पर शोधार्थी अपने विचार के अनुरूप डॉ. राही मासूम रज़ा के साहित्य पर शोधकार्य कर सकते है, ऐसी मुझे आशा है । इस तरह डॉ. राही का साहित्य संशोधकों के लिए कई शोधकार्य की संभावनाएँ रखता हैं ।

### ❖ प्रबन्ध सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में ‘डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में युग-चेतना’ विषय पर सूक्ष्म एवं गहन आलोचना की गई हैं । इस शोध प्रबन्ध में मैंने डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों को ध्यान में रखकर युग-चेतना पर समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया हैं । प्रस्तुत शोध निबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है, जिसका सारांश निम्नांकित हैं ।

**प्रथम अध्याय** में युग-चेतना की परिभाषा, अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । इस अध्याय का शीर्षक ‘युग-चेतना : परिभाषा और स्वरूप’ दिया गया है । इस अध्याय में ‘युग’, ‘चेतना’ और

‘युग-चेतना’ की परिभाषा एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए युग-चेतना तथा युग-बोध, युग-चेतना और आधुनिकता, युग-चेतना और जीवन मूल्य का सहसम्बन्ध और भिन्नता स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

*द्वितीय अध्याय* में मैंने डॉ. राही मासूम रज़ा के व्यक्तित्व के तमाम पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है । इस अध्याय का शीर्षक ‘डॉ. राही मासूम रज़ा व्यक्तित्व और कृतित्व’ रखा गया है । जिसमें जन्म, परिवार, शिक्षा, व्यवसाय, जीवन संघर्ष और जीवन के अंतिम समय जैसे पहलू का उल्लेख किया गया है । साथ ही डॉ. राही के आंतरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व की विशेषताओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । उनके समाज सुधारक, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रप्रेम आदि गुणों का जिक्र किया गया है । कुशल फिल्म संवाद-लेखक के रूप में उनका चित्रांकन करने का यथासंभव प्रयास किया है । डॉ. राही के व्यक्तित्व के साथ ही उनके संपूर्ण कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है । डॉ. राही के कृतित्व के अंतर्गत उनके उपन्यास, निबंध, कहानी, रेखाचित्र, महाकाव्य आदि पुस्तकों का परिचय दिया गया है । उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की संपूर्ण जानकारी इस अध्याय में प्रस्तुत की गई है । साथ ही साथ उनके जीवन के बारे में गहन विचार-मंथन प्रस्तुत किया गया है ।

*तृतीय अध्याय* का शीर्षक ‘डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना’ है । इस अध्याय में मैंने सामाजिक चेतना को उजागर करनेवाले पहलुओं को स्पष्ट किया है । सामाजिक चेतना अंतर्गत नारी जीवन में आनेवाली समस्याएँ, स्त्री-पुरुष के संबंधों में आये तनाव, स्त्री-पुरुष अनैतिक यौन संबंध, समाज में मूल्य विघटन और मूल्य परिवर्तन की विस्तृत चर्चा की गई है । डॉ. राही के उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना के कारण उनके उपन्यासों में तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब नजर आता है । इस अध्याय में

डॉ. राही के उपन्यासों की सामाजिक चेतना को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

**चतुर्थ अध्याय** का संबंध राजनीतिक चेतना से है । इस अध्याय को 'डॉ. राही के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना' शीर्षक दिया गया है । इसमें राजनीतिक चेतना से संबंधित राजनीति, अर्थ, स्वरूप, परिभाषा आदि का विवेचन किया गया है । स्वतंत्रता के बाद राजनीति के क्षेत्र में हो रहे परिवर्तन, सामंतीय जीवन में विघटन, आपातकाल और उनसे उत्पन्न परिस्थितियों में आम आदमी का शोषण करनेवाले तत्त्व का पर्दाफाश किया है । राजनीति में पनपते भ्रष्टाचार, पुलिस तंत्र की निष्क्रियता आदि राजनीतिक चेतना को विभिन्न परिदृश्यों से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

**पंचम अध्याय** में डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में तत्कालीन परिवेश में धर्म संबंधी विसंगतियों का चित्रण किया है । अतः इस अध्याय का शीर्षक 'डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में धार्मिक चेतना' दिया है । इस अध्याय के अंतर्गत धर्म के नाम पर हो रहे बाह्याडंबर, अंधश्रद्धा जैसी कुरृतियों पर विचार किया गया है । प्रवर्तमान समय में हिन्दू-मुस्लिम आपसी संघर्षों के बावजूद भी हिन्दू-मुस्लिम आपसी संबंधों का चित्रण किया गया है । धर्म के आड़ में हो रहे अन्याय व अत्याचार का चित्रण किया गया है । धर्म की संकल्पना का स्वरूप आज के युग में बदल सा गया है । धर्म को सिर्फ व्यवसाय के रूप में अपनाने वाले लोगों पर प्रहार किया गया है । धार्मिक चेतना को उजागर करनेवाले सभी तत्त्वों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

प्रबन्ध के अंत में **उपसंहार** में समग्र अध्ययन का निचोड़ एवं मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है । डॉ. राही के उपन्यासों में युग-चेतना को विभिन्न



दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया हैं । सामाजिक चेतना के अंतर्गत समाज के विभिन्न वर्गों में फैली विसंगतियों पर दृष्टिपात किया गया है । राजनैतिक चेतना में प्रवर्तमान समय की राजनीति पर उनके विचार प्रस्तुत किये हैं । अंत में धर्म संबंधी विचारों को प्रस्तुत करके धार्मिक चेतना को जागर किया गया है । इन सभी पहलुओं पर विचार व्यक्त करके डॉ. राही मासूम रज़ा को युग चेता साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

### ❖ कृतज्ञता ज्ञापन

शोधकार्य एक जटिल प्रक्रिया है । इसलिए किसी एक व्यक्ति से यह कार्य संपन्न नहीं होता । इस कार्य को पूरा करने के लिए अनेक व्यक्तियों की सहायता की आवश्यकता होती है । मेरे इस शोधकार्य को पूरा करने के लिए मुझे अनेक विद्वानों का सहयोग एवं प्रेरणा मिली है । जिनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के निर्माण में मार्गदर्शन का श्रेय परम आदरणीय गुरुवर डॉ. वखतसिंह गोहिल साहब (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग एवं प्राचार्य, गार्डी आर्ट्स व कोमर्स कॉलेज, मालिया हाटीना) को है । जिनके विद्वतापूर्ण आत्मीयता भरे परामर्श के फलस्वरूप ही मेरा यह शोधकार्य पूरा हो सका । उनकी सहृदयता और सहयोग के लिए मैं सदैव उनका आभारी रहूँगा । साथ ही मैं श्रीमति भावनाबा वी. गोहिल का भी हृदयपूर्वक आभारी हूँ ।

अविस्मरणीय काल से मेरी अंगुली पकड़कर मुझे निरन्तर प्रगति के पथ पर ले जानेवाले मेरे परम आदरणीय माता-पिता, जिनकी छत्रछाया में मुझे प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला । जिनका आभार मैं शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता । किन्तु उनके आशीर्वाद से इस शोध प्रबन्ध को संपन्न होने का श्रेय मैं उनको देता हूँ ।

शोधकार्य में सदैव प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रदान करने में मेरी प्रिय जीवनसंगिनी रीनाजी और सुपुत्री काव्यांशीबा को भी कृतज्ञता से स्मरण करता हूँ, जिन्होंने घर पर मुझे अध्ययन की सुविधा और प्रेरणा देकर इस प्रयास को पूर्णता प्रदान की। साथ ही मैं सादर आभार व्यक्त करता हूँ अपने परिवार के सदस्यों के प्रति, जिनका मुझ पर अड़िग विश्वास मुझे अपने पथ पर डटे रहने का नैतिक बल प्रदान करता रहा है।

इस शोधकार्य करने में मैं श्री क्रिपालसिंह परमार साहब (लिमड़ी कोलेज) का ऋणी रहूँगा। जिन्होंने मुझे इस शोधकार्य के लिए प्रेरणा दी। साथ ही मैं श्री ए. वी. जे. ओझा इन्स्टीट्यूट ऑफ बी.एड्. कोलेज के मेनेजींग ट्रस्टी श्री मनोजभाइ ओझा तथा हमारे कोलेज के प्रिन्सिपालश्री एस. जी. वाहु साहब तथा मुझे हमेशा परामर्श देनेवाले मेरे साथी अध्यापक मित्रों का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके सहयोग से मेरा यह कार्य संपन्न हो सका।

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के हिन्दी भवन के अध्यक्ष डॉ. कलासवा साहब तथा रीडर डॉ. शैलेश मेहता साहब और प्रा. गामित साहब का भी मैं आभारी हूँ, जिनका सहयोग एवं परामर्श मुझे सदा मिलता रहा है।

संशोधन के इस कार्य में मैं गार्डी आर्ट्स एण्ड कोमर्स कोलेज, मालिया-हाटीना के ग्रंथपाल जीतेन्द्रभाई पी. जोशी का भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस अध्ययन से संबंधित आवश्यक सुविधाएँ एवं संदर्भ ग्रंथ उपलब्ध कराकर मुझे अनुग्रहीत किया है। साथ ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की सामग्री संकलित करने हेतु मैंने जिन ग्रंथालयों का उपयोग किया है, उनमें सौराष्ट्र विश्वविद्यालय - राजकोट, जिला पुस्तकालय - सुरेन्द्रनगर, श्री ए. वी. जे. ओझा इन्स्टीट्यूट ऑफ बी. एड्. कोलेज - लखतर, गूजरात विद्यापीठ - अहमदाबाद इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सभी ग्रंथालयों के ग्रंथपालों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मेरे संपूर्ण शोध कार्य को, मेरी वैचारिक पृष्ठभूमि को लिपिबद्ध करनेवाले कमलेश कोमर्सीयल सेन्टर, जामनगर के सभी सदस्यों के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । जिन्होंने शोध प्रबन्ध का टंकन काम सुचारु रूप से पूर्ण करके यथा समय सहयोग दिया ।

इनके अतिरिक्त जिन विद्वानों, साहित्यकारों, मित्रों एवं शुभचिन्तकों ने समय-समय पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सहयोग, सद्परामर्श, सुझाव एवं आशीर्वाद प्रदान कर अनुगृहीत किया, मैं उन सब के प्रति कृतज्ञ हूँ ।

श्री ए. वी. जे. ओझा इन्स्टीट्यूट  
ओफ बी. एड्. कोलेज - लखतर

विनीत

दिनांक: .....

गजेन्द्रसिंह ए. झाला

## अन क्रमणिका

	प ष्ट क्रमांक
अध्याय - १ युग चेतना परिभाषा और स्वरूप	००१-०२८
अध्याय - २ “डॉ. राही मासूम रज़ा व्यक्तित्व और कृतित्व”	०२९-०८८
अध्याय - ३ “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना”	०८९-१८१
अध्याय - ४ “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना”	१८२-२४३
अध्याय - ५ “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में धार्मिक चेतना”	२४४-२८२
उपसंहार	२८३-२९२
परिशिष्ट :	२९३-२९९
➤ आधार ग्रंथ	
➤ संदर्भ ग्रन्थ	
➤ शब्द कोष वं साहित्य कोष	
➤ पत्र-पत्रिका	
➤ वेबसाइट	

## अध्याय – 9

### युग चेतना परिभाषा और स्वरूप

- ❖ विषय प्रवेश
- ❖ 'युग' परिभाषा एवं स्वरूप
- ❖ 'चेतना' परिभाषा एवं स्वरूप
- ❖ 'युग-चेतना' परिभाषा एवं स्वरूप
- ❖ 'युग-चेतना' का महत्त्व
- ❖ 'युग-चेतना' और आधुनिकता
- ❖ 'युग-चेतना' और जीवन-मूल्य
- ❖ 'युग-चेतना' और युग-बोध
- ❖ निष्कर्ष
- ❖ संदर्भ सूची

## अध्याय – 9

### युग चेतना परिभाषा और स्वरूप

#### ❖ विषय प्रवेश :

साहित्य समाज का दर्पण होता है। जिस युग में जो साहित्य निर्मित होता है, इसमें तत्कालीन परिस्थितियाँ, रीति-रिवाज एवं परम्पराएँ आदि का वर्णन होता है। इसलिए युगीन परिस्थितियाँ साहित्य निर्माण में कारणभूत होती हैं और साहित्य भी युग निर्माण का कार्य करता है। साहित्य के माध्यम से समाज में हो रही विसंगतियों को पहचानने का प्रयास किया जाता है। साहित्य का सम्बन्ध युग के साथ जुड़ा हुआ है, इसलिए प्रत्येक युग का अपना साहित्य होता है। किसी भी साहित्यकार की सामाजिक एवं राष्ट्रीय इमानदारी होती है कि वह समाज में व्याप्त ऐसे प्रश्नों का गम्भीरता के साथ अध्ययन करे, जो समाज एवं राष्ट्र के विकास में बाधक हो।

साहित्य मनुष्य जीवन की सूक्ष्मतम अनुभूति की अभिव्यक्ति है। जिसे वह अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। वह न केवल अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति ही करता है, अपितु उसकी प्रतिक्रिया भी देता है। जिन समस्याओं का उसे सामना करना पड़ता है, उसका जनसाधारण को भी अनुभव करना पड़ता है। अतः वह उन समस्याओं के हल का उपाय भी ढूँढ़ता है। साहित्यकार न केवल समाज को अपनी कृतियों में प्रतिबिंबित करता है, बल्कि वह उसे संवारता है, संस्कृत करता है। साहित्यकार किसी समस्या का केवल वर्णन न करके उसे हर कौने से देखकर उसकी उत्पत्ति के मूल तक पहुँचकर उसे निर्मूल करने का प्रयास करता है। वह देशकाल से प्रभावित होता है। इसलिए तत्कालीन परिस्थिति का प्रतिबिंब साहित्य से मिलता है। इसलिए साहित्य ही समाज को विकासोन्मुख बनाता है। साहित्य मनुष्य जीवन

के भूत एवं वर्तमान को प्रस्तुत करनेवाला सबल माध्यम है, साथ ही भविष्य की ओर भी संकेत करता है ।

साहित्यिक कृति का कृतिकार समकालीन, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इत्यादि विभिन्न प्रकार के जीवन मूल्यों से प्रभावित रहता है । जीवन मूल्यों का यह प्रभाव उनकी कृतियों में युग-चेतना के रूप में अभिव्यक्त होता है । साहित्यिक विधाओं में युग चेतना की अभिव्यक्ति परवर्ती लेखकों एवं उनकी कृतियों को भी प्रभावित करती है । साहित्य एवं समाज में समय पर युग चेतना सम्बन्धी प्रश्न उठाये जाते रहे हैं एवं तत्संबन्धी दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किये गये हैं । इन विविध दृष्टिकोण का अनुशीलन करने के पश्चात अपने विषय निरूपण के लिए हमारे लिए तत्संबन्धी मानदण्ड स्थापित करना आवश्यक हो जाता है । इसलिए यहाँ 'युग' और 'चेतना' इन दोनों शब्दों के अर्थ व्यवस्था आदि पर विचार प्रस्तुत करते हुए आगे बढ़ना आवश्यक समजते हैं ।

'युग-चेतना' शब्द 'युग' और 'चेतना' शब्द मिलकर बना है । 'युग' शब्द की जो व्युत्पत्ति एवं व्याख्याएँ मिलती है वह इस प्रकार हैं ।

#### ❖ 'युग' परिभाषा एवं स्वरूप :

'युग' शब्द का अर्थ प्राचीन समय से विभिन्न अर्थ में चला आ रहा है । 'युग' शब्द का प्रयोग समय या काल के संदर्भ में किया जाता है । 'युग' शब्द का कोई स्वतंत्र अर्थ नहीं किया जा सकता । उस शब्दका जब भी जहाँ भी प्रयोग किया जाता है, वहाँ समय के सापेक्ष में ही किया जाता है । हमारे सांस्कृतिक संदर्भ में यदि देखा जाय तो 'युग' को चार भागों में विभाजित किया गया है । सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग । इसका संदर्भ मानव के आचार-विचार और व्यवहार से है । 'शब्दकल्पद्रुम' एवं अन्य कोशों में 'युग' शब्द की जो व्युत्पत्ति एवं व्याख्याएँ मिलती है, इसमें यही प्रतीत होता है

कि 'चेतना' को विशेषण के रूप में काल विशेष को लक्ष्य में रखकर 'युग' शब्द का प्रयोग किया जा सकता हैं । 'युग' शब्द एक समय के अर्थ में प्रयुक्त होता हैं । 'युग' शब्द के प्रयोग द्वारा संपूर्ण युग का बोध नहीं होता, क्योंकि यह काल विशेष की अभिव्यंजना करने के कारण संपूर्ण का एक भाग होता है । फिर भी वह अपने आप में पूर्ण होता हैं । जिस समय में साहित्य रचा होता हैं । वह अपने तत्कालीन समय से अनुप्रासित होता है, जैसा कि हमने देखा कि युग एवं साहित्य परस्पर सम्बंधित होते है । प्रत्येक लेखक अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक परिस्थिति के अनुरूप आवश्यकता के अनुसार ही अपने साहित्य का निर्माण करता हैं । अंग्रेजी में युग को 'AGE' और 'ERA' कहते हैं । परिवर्तन सृष्टि का नियम है, कोई भी समय हो, या वस्तु हो, इसमें परिवर्तन आता रहता है । जिसका आविष्कार होता है, उसका समय-समय पर परिवर्तन होता हैं । एक युग की चीज का दूसरे युग में परिवर्तन देखा जा सकता है । हिन्दी साहित्य के इतिहास को देखे तो आदिकाल या वीरगाथा काल जिसमें वीरकथाएँ या चारण काव्य लिखे गये थे । किन्तु इसके बाद भक्तिकाल में साहित्य की विषयवस्तु बदल गयी, जिस तरह काल बदला, इस तरह उस काल का साहित्य भी बदल गया । इसमें वीरकथाओं का स्थान अब भक्तिकाव्यों ने ले लिया । इसलिए एक काल से दूसरे काल में परिवर्तित होने से एक काल दूसरे के लिए पृष्ठभूमि के रूप में कार्य करता है । इसलिए "प्रत्येक युग दूसरे युग को कुछ देकर जाता है, अन्यथा इतनी बड़ी सृष्टि अस्तित्वहीन होकर कभी की शून्य में समा जाती ।"<sup>9</sup> इतिहास साक्षी है कि विशेष साहित्य युगों में विशेष कथ्यों का चुनाव होता है । युग विशेष के विशेष विषय तत्कालीन सामाजिक विकास के भीतर विभिन्न सामाजिक मानव सम्बन्धों से निर्धारित होते हैं । ये विभिन्न विषय अपने को अभिव्यक्त करने के लिए उस वर्ग के हृदय से अकुलाते रहते हैं । जो उस काल के साहित्यिक, सांस्कृतिक क्षेत्र के भीतर निर्णायक रूप में



प्रभावशाली हो उठते हैं, किन्तु साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रभावशाली होने से पहले समाज में प्रभावशाली नहीं होंगे, तब तक साहित्य में उनका स्थान पाना संभव नहीं हो पाता । ‘युग’ शब्द काल सापेक्ष के रूप में माना जाता है । ‘युग’ का नामाभिधान काल विशेष की विशेष प्रवृत्ति के आधार पर अथवा उस समय के प्रभावी व्यक्ति के प्रभाव में आकर व्यक्ति विशेष के नाम पर युग का नामाभिधान हो जाता है । जैसे – हिन्दी साहित्य के इतिहास के संदर्भ में देखा जाय तो जब वीररस प्रधान रचनाओं की बहुलता रही तो उसे वीरगाथा काल या आदिकाल कहा गया । जब भक्तिरस प्रधान कृतियों की अधिकता रही तो भक्तिकाल अथवा संत साहित्य युग या मध्य युग कहा गया । और व्यक्ति साहित्यकार के प्रभाव से प्रभावित भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रेमचन्द युग आदि नाम दिये गये हैं । इसलिए “युग शब्द काल सापेक्ष है जैसे भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, प्रेमचन्द युग, प्रेमचंदोत्तर युग आदि किसी भी युग में अनेक प्रकार के भाव और विचारधाराएँ प्रचलित रहती हैं ।”<sup>२</sup>

‘युग’ शब्द का अर्थ बोध से भी है, इससे ज्यादा मूल्य से है । वस्तुतः युग परिवर्तन मूल्यों के कारण ही होता है । इसलिए कोई मूल्य बहुत से समान धर्मों, व्यक्तियों को प्रभावित करता है । तब वह युग विशेष का निर्माण स्वयं हो जाता है । “युग विभिन्न परिवेशों में विभिन्न मूल्य निर्मित करता है और उन मूल्यों के कारण यह अपने विभिन्न अर्थों का प्रचार करता है ।”<sup>३</sup> संक्षेप में ‘युग’ को कई प्रकार से विभक्त किया जाता है । ‘युग’ परिवर्तनशील होता है ।

#### ❖ ‘चेतना’ परिभाषा एवं स्वरूप :

‘चेतना’ शब्द का बड़ा ही व्यापक अर्थ है । साहित्यकार चेतना के माध्यम से ही अपने अनुभवों से साहित्य का सर्जन करता है । ‘चेतना’ शब्द को सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो ‘चेत’ शब्द से बना है । ‘चेत’ शब्द का

अर्थ ज्ञान होता है । ‘चेतना’ वह तत्त्व है, जो किसी भी सजीव को निर्जीव पदार्थ से अलग करता है, क्योंकि जो जीव है उसमें चेतन नामक तत्त्व अवश्य होता है, जिसके कारण यह अपने क्रियाकलाप कर सकता है । चेतना शब्द के विभिन्न अर्थ एवं पर्यायी शब्द हिन्दी शब्दकोश में व्यक्त किये गये हैं । किन्तु सभी अर्थ भिन्न-भिन्न हैं । अंग्रेजी भाषा में ‘चेतना’ शब्द का अंग्रेजी शब्द ‘Conscious’ है, जिसका अर्थ जागृति है । मनुष्य का प्रमुख गुण जागरूकता है । इसे आधुनिक विद्वानों ने ‘चेतना’ कहा है । जिससे मनुष्य को वस्तुओं, विषयों, व्यवहारों, क्रिया-प्रतिक्रियाओं का ज्ञान एवं परिचय होता है । यह एक गतिमान नित्य परिवर्तनशील प्रक्रिया है ।

‘चेतना’ एक अमूर्त तत्त्व है, जो मानव के अंतरंग की शक्ति है । ‘चेतना’ का महत्त्व स्वीकार करते हुए उसका स्वरूप विश्लेषित करने का तथा उसे परिभाषित करने का प्रयास विद्वानों, चिंतकों, मनीषियों ने किया है, परन्तु आज तक इसकी कोई ठोस परिभाषा या व्याख्या नहीं हो पायी है । यह अनुभूति की वस्तु है, अभिव्यक्ति की नहीं । इस पर चर्चा हो सकती है, परन्तु इसे बताना मुश्किल ही नहीं असंभव है । पर ‘चेतना’ नाम का तत्त्व ही मनुष्य के मनुष्यत्व की पहचान है, जिसके अभाव में उसका जीवन निरर्थक है । ‘चेतना’ के माध्यम से ऐतिहासिक युगों में अपने युग की समस्याएँ खोज कर वैसी ही परिस्थिति में उनके समाधान का प्रयत्न संभव होता है । इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान युग की समस्याओं का ही चित्रण होता है, प्राचीन ऐतिहासिक वातावरण एवं परिस्थितियों के साथ ज्ञान द्वारा महान व्यक्तियों के महत्त्वपूर्ण क्रियाकलापों एवं आदर्शों द्वारा चारित्रिक शिक्षा मिलती है । जिससे हमारे चरित्र के निर्माण में काफी सहायता मिलती है ।

‘चेतना’ का स्वतंत्र अस्तित्व है । उसकी अनुभूति मस्तिष्क से होती है । जिसके कारण वे मानसिक अनुभूतियों को स्पष्ट करती है । मनुष्य द्वारा

जो सुख-दुःख आदि अनुभूतियाँ होती है वह 'चेतना' पर आधारित है । चेतना मनुष्य को सतत मार्गदर्शन करती है । “चेतना प्राणीमात्र में रहनेवाला वह तत्त्व है जो उन्हें निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्न बनाता है और उन्हें चैत्य सम्पन्न बनाकर जीवधारी सिद्ध करता है ।”<sup>४</sup> चेतना एक अनुभूति है, जो मनुष्य को विशेषता प्रदान करती है । 'चेतना' के कारण मनुष्य अपनी सारी प्रवृत्तियाँ करता है । इस तरह 'चेतना' का सम्बन्ध ज्ञान, भाव और क्रियाओं के साथ रहा हैं । इन तीनों के कारण 'चेतना' मनुष्य को अपने लक्ष्य तक पहुँचाती है । विभिन्न ग्रंथों में 'चेतना' शब्द की व्युक्तिपरक व्याख्याएँ दी गई है । “मन की वह वृत्ति या शक्ति जिसमें जीव या प्राणी को आंतरिक तत्त्वों या बातों का अनुभव या मान होता है ।”<sup>५</sup> 'चेतना' इस संसार में जीवित रहने से लेकर वस्तुओं, विषयों, व्यवहारों इत्यादि के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति है । 'चेतना' शब्द की कोई एक सुनिश्चित परिभाषा देना कठीन है, किन्तु उनका व्याख्यात्मक वर्णन किया जा सकता है ।

'चेतना' को स्मृति के रूप में स्वीकार किया जाता है । भूतकाल की क्रियाओं को वर्तमान में याद करना, उसके प्रति जागरूक होना तथा भविष्य के लिए जागरूक होना या चेतन होना ही चेतना का महत्त्वपूर्ण गुण हैं । जब हम बीते हुए क्षणों का स्मरण करते हैं, वर्तमान के प्रति प्रबुद्ध होते हैं अथवा वर्तमान काल के विषयों – व्यवहारों के विषय में सोचते हैं, तब उस समय हमारी चेतना जागृत रहती है । इसी प्रकार से अनागत भविष्य के विषय में चिंतन मनन करते समय भी चेतना ही की प्रमुखता रहती हैं ।

स्वानुभूति के परत सिद्धांत के विषय में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना अत्यंत कठीन कार्य है । किन्तु हमें उन्हें किन्हीं न किन्हीं शब्दों में व्यक्त करना पड़ता है एवं अभिव्यक्ति के इस रूप में उसे द्रव्य, धर्म या गुण किसी भी वर्ग के अंतरंग रखकर निर्वेदित करना पड़ता हैं । चेतना भी ऐसी ही

परम धारणा है । हिन्दू दर्शन इस परम चेतना के विवेचन को समग्र संभवनीय विकल्पों में प्रस्तुत करता है । चेतना को दृश्य गुण या कर्म और निरंतर एवं अपरिवर्तनीय की तरह या फिर परिवर्तनीय और क्षणिक या पुनः नित्य रूप में विषयी और विषय के विभेद विभक्त तथा सदैव विषयवस्तु सहित विभक्त रूपों में प्रस्तुत और प्रतिपादित करता है ।

‘चेतना’ का स्वरूप दीपक प्रकाश की तरह है । वह एक ही बार में न केवल बाह्य विषय को, बल्कि स्वयं को तथा उसके आधार पर आत्मा को भी उसी तरह प्रकाशित करती है । जिस तरह दीपक किसी विषय को, स्वयं को तथा स्वयं की आधारवर्तिका को भी प्रकाशित करता है ।

‘चेतना’ जीवमात्र में रहनेवाला वह तत्त्व है, जो उन्हें निर्जीव एवं जड़ पदार्थों से पृथक् बनाता है तथा उन्हें चेतन्य से परिपूर्ण बनाकर जीवधारी सिद्ध करता है । वस्तुतः : “चेतना स्वयं को और अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है ।”<sup>६</sup> मानव चेतना वास्तव में सम्बन्धों में निर्मित तथा उससे अदभूत चेतना है । उन्हीं मानव सम्बन्धों की अवस्था विशेष के अनुसार मानव की विश्व दृष्टि भी बनती है, उसकी यह विश्व दृष्टि निश्चय ही उसकी चेतना का ही अंग है, जैसे-जैसे मानव समाज बदलता जाएगा, मानव सम्बन्ध भी बदलते जायेंगे । तथा चेतना के स्वरूप में भी परिवर्तन होगा । वेदकालीन चेतना मध्ययुगीन चेतना नहीं है, इसी प्रकार रीतिकालीन चेतना आधुनिक चेतना नहीं हैं । ‘चेतना’ के तत्त्व बदलते ही उसकी अभिव्यक्ति भी बदल जाती है । क्योंकि चेतना स्वयं मानव सम्बन्धों में परिवर्तन उपस्थित होते ही बदलने लगती हैं ।

‘चेतना’ मनुष्य का ही नहीं, अपितु प्राणीमात्र का एक ऐसा गुणधर्म हैं, जिसके अभाव में उसका अस्तित्व ही नहीं है । ‘चेतना’ एक ऐसा गुण है, जिसके होने पर ही हमें किसी वस्तु या व्यक्ति के होने की संज्ञा प्राप्त होती

है । अन्यथा उस वस्तु व्यक्ति का कोई अस्तित्व मूल्य या महत्त्व नहीं रह जाता । हम प्रायः ऐसा कहते सुनते हैं कि कुछ चेतना प्राप्त हो गई अथवा कुछ चैतन्य हो गया है । इसमें प्रथम से हमें ऐसा आभास होता है कि उसका कोई मूल्य नहीं रह गया है, अपने अस्तित्व में आ गया हैं । इसमें कुछ होने या कुछ भी न होने का भाव छिपा हुआ हैं । अर्थात् चेतना है । इसलिए हम चैतन्य है, क्योंकि हममें चेतना का गुणधर्म अन्तर्निहित है । जहाँ चेतना नहीं वहाँ शून्य है । अस्तित्वहीनता का भाव है । इस तरह चेतना एक अविच्छिन्न गुणधर्म है । इसके बिना सब शून्य है ।

जैसा कि हमने ऊपर कहा है कि चेतना का एक अर्थ प्रबुद्ध होना अथवा ज्ञान प्राप्त करना भी किया जाता है । जिस विषयवस्तु या व्यक्ति का हमें ज्ञान नहीं होता, जिनसे हम अनभिज्ञ रहते हैं, उसके बारे में जानकारी प्राप्त करना या होना भी चेतना कहलाता है । हम जिस विषयवस्तु या व्यक्ति की ओर जागृत होते हैं, उसके बारे में हम संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं, उसके सूक्ष्मतम गुणों का विवरण हम प्राप्त करते हैं, उसके लिए चैतन्य होते हैं, जागृत रहते हैं, यही 'चेतना' हैं ।

### ❖ 'युग-चेतना' परिभाषा एवं स्वरूप :

'युग-चेतना' शब्द 'युग' और 'चेतना' – दो शब्द के मेल से बना है । अंग्रेजी में 'युग-चेतना' को 'Sprit of the age' कहते हैं । जिसका तात्पर्य होता है किसी निश्चित समय में अभिव्यक्त चेतना ।

जिस प्रकार समाज मानवजाति की एक इकाई है, उसी तरह से युग विशेष अखंड काल की इकाई है । साहित्य समाज में जन्म लेता है और समाज समय की इकाईयों में जीता है । इस प्रकार साहित्य एक ओर अपने समाज से सम्बंधित होता है और दूसरी ओर उस समाज के युग विशेष से । प्रत्येक रचनाकार की कृति में तत्कालीन युगीन जीवन और उससे सम्बंधित

घटनाओं का विवरण होता है । इसलिए साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से 'युग-चेतना' को अभिव्यक्त करता है । प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख जीवन, समाज, एवं राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण एवं जीते जागते प्रश्न हमेशा ही उठते रहते हैं । 'युग-चेतना' प्राचीन में वैसे ही प्रश्नों को खोजकर वर्तमान में उनके उत्तर की खोज करती है । वर्तमान के समाधान के लिए इतिहास की चिरन्तन खड़ियों को काम में लाने का मोह संवरण न कर सकने के कारण वर्तमान को भूत के सांचे में ढाल देना 'युग-चेतना' का अर्थ है ।

प्रत्येक युग के रचनाकार युग चेतना को ध्यान में रखकर साहित्य का सृजन करता है । 'युग-चेतना' और साहित्य अन्योन्याश्रित है । 'युग-चेतना' की अवहेलना करके कोई साहित्यकार साहित्य सृजन नहीं कर सकता । 'युग-चेतना' का महत्त्व समाज में जो तृटियाँ या विसंगतियाँ पायी जाती हैं उनका निराकरण लाने के लिए उपयोगी हो सकती है । 'युग-चेतना' आपसी कटूता, संकीर्णता, जातीयता, सांप्रदायिकता आदि से दूर रहकर सच्चे अर्थों में संस्कृति के उदात्त चरित्रों, अवतारी महापुरुषों से अपना साक्षात्कार करने की प्रेरणा प्रदान करती हैं । साहित्य के क्षेत्र में 'युग-चेतना' साहित्यकार की मानसिकता है, जो समय के अनुरूप उभरती रहती है । साहित्यकार की कृति युगीन परिस्थितियों से पैदा होती है, परंतु वह युग को बदलने का सामर्थ्य भी रखती है । परिस्थिति से, घटना से उत्पन्न स्थिति को बदलना ही कृतिकार का लक्ष्य होता है । अतः युग से प्रभावित होकर भी युग को बदलने का काम साहित्य का है और युग को बदलने का जो सामर्थ्य है, वही 'युग-चेतना' कहा जा सकता है । अतः "वास्तविकता यह है कि युग-चेतना का कोई सुनिर्दिष्ट प्रतिमान नहीं होता, क्योंकि एक ही युग विशेष में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की चेतना अलग-अलग हो सकती है और होती है ।"<sup>9</sup> प्रत्येक साहित्यकार अपने

वैचारिक स्तर पर युग विशेष की स्थिति को समझने की ओर उसे अपनी रचनाओं में चित्रित करने का प्रयास करता है ।

साहित्य में व्यक्त विचारधाराएँ समाज और युग विशेष से सम्बंधित होती है । समय की गतिशील पृष्ठभूमि पर साहित्यकार की परिवर्तित अनुभूतियों को 'युग-चेतना' संज्ञा दी जाती है । "युग चेतना युग के शुभाशुभ, सत्यासत्य तथा तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक, अपेक्षित – त्याज्य आदि विषयों की जानकारी देती है । यह अंतः चेतना की तरह नैसर्गिक शक्ति नहीं, बल्कि भावना की वह शक्ति या प्रवृत्ति है, जो सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं ।"<sup>८</sup> समय के साथ साहित्यकार की वैचारिक अनुभूतियों में भी बदलाव आता है । युग चेतना प्रत्येक युग में अपना स्वरूप बदलती रहती हैं । क्योंकि साहित्यकार समाज में जो परिवर्तन देखता है, उसकी प्रतिच्छाया उसके साहित्य में दिखाई देती है । इसलिए 'युग-चेतना' भी समाज और साहित्य के साथ परिवर्तित होती रहती है ।

'युग-चेतना' में परिवर्तन लाने से तत्कालीन परिस्थितियाँ कारणभूत रहती हैं, जिसके कारण युग-चेतना में बदलाव आता हैं । सामान्यतः लोगों को यह कहते सुना है कि जमाना बदल गया हैं । इस परिवर्तन का भला या बुरा अर्थ लोग अपने-अपने संस्कारों एवं अपनी-अपनी रूचि के अनुरूप करते हैं, किन्तु इसका वास्तविक अर्थ तो यह होता है कि मनुष्य के सामूहिक व्यवहार में परंपरा प्राप्त मूल्यों से भिन्न मूल्यों की प्रतिष्ठा ही परिवर्तन की द्योतक है । यद्यपि इस परिवर्तन का सामान्य व्यक्ति भी अनुभव करता है, तथापि वह उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाता । किन्तु कलाकार युगीन परिवर्तनों एवं परिस्थितियों से प्रभावित होकर वह अपनी कलात्मक चेतना द्वारा युग विशेष को अपने साहित्य में शब्दबद्ध कर देता है । ऐसे ही साहित्य में तत्कालीन युग एवं

परिस्थितियों के उतार चढ़ाव, टेढ़े मेढ़े, सीधे-सादे और साफ सुधरे चित्र देखे जा सकते हैं। इस सत्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि एक ही काल के विचारकों में भी भेद दिखाई देता है। परंतु एक देश और समाज के विचारकों में विचार साम्य एक सीमा तक अवश्य होता है और वह वैचारिक भेद एवं साम्य ही 'युग-चेतना' के निर्माण में निर्णायक तत्त्व बनता है। इसमें भी विचार साम्य एवं 'युग-चेतना' की तीव्रता उस समय ओर भी दृष्टिगत होते हैं, जब कोई समाज या देश किसी सक्रांति या संकटकाल से गुजर रहा हो और जनमानस के सम्मुख ध्येय की एकता हो। साहित्य के क्षेत्र में भी वही बात लागू होती है। साहित्य 'युग-चेतना' के साथ सम्बंधित होता है और 'युग-चेतना' साहित्य में प्रतिबिम्बित होती हैं। एक युग के साहित्यकारों के विचारों में समानता भी देखी जा सकती है और दूसरे युग के साहित्यकारों में उनमें भिन्नता भी पाई जाती है। यहाँ तक कि एक ही साहित्यकार में युगानुरूप विचार परिवर्तन भी होता रहता है। हिन्दी साहित्य के कवि सुमित्रानंदन पंत को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है, वह पहले छायावादी कवि थे। किन्तु बाद में यथार्थवाद की ठोस भूमि पर उतर आए एवं प्रगतिवादी स्वरगान में लग गए। वस्तुतः प्रत्येक साहित्य अपने युग की सभ्यता, संस्कृति तथा अन्योन्य परिस्थितियों की उपज होता है एवं युग विशेष के साहित्यकारों में अपने युग की विशेषताएँ प्रतिफलित होती हैं। अतः किसी भी साहित्य के अध्ययन के लिए उस युग की विशिष्टताओं का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। 'युग-चेतना' विभिन्न व्यक्तित्व एवं विचारवाले साहित्यकारों में भी सामंजस्य स्थापित कर देती है। समग्रतः कहा जा सकता है कि युगीन परिस्थितियों से साहित्यकार प्रभावित होता है यह ठीक है, किन्तु वह परिस्थितियों को भी प्रभावित करता है। अर्थात् परिस्थितियों को बदलने का सामर्थ्य भी रखता है और जिस विचारधारा से युगीन परिस्थितियाँ बदल जाती हैं उसे 'युग-चेतना' कहा जा सकता है।



‘युग-चेतना’ के अंतर्गत युग अपने संपूर्ण वैभव स्वरूप को लेकर समाया होता है, वहाँ ‘युग-चेतना’ को एक सीमित अर्थ में ही ग्रहण किया जा रहा है । ‘युग’ का तात्पर्य काल के संदर्भ में सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग से लेकर आजतक काल विशेष के संदर्भ में लिया जा रहा है । ‘युग’ शब्द काल सापेक्ष है । जैसे भारतेन्दु युग, प्रेमचन्द युग आदि इससे यह फलित होता है कि प्रत्येक युग विशेष की अपनी मौलिक चेतना हुआ करती है, जो युगानुसार अपना स्वरूप बदलती रहती हैं तथा तत्कालीन साहित्य में युगीन परिस्थितियाँ एवं प्रजाकीय विचारधारा प्रतिबिंबित होती है । ‘युग-चेतना’ तब तक साहित्य में अपना अस्तित्व या महत्त्व की स्थापना नहीं कर सकती, जब तक वह व्यक्ति की निजी चेतना न हो, क्योंकि किसी के लिए यदि गांधीवादी चेतना युग विशेष में सत्य हो सकती है तो किसी के लिए नहीं । तात्पर्य यह है कि काल या समय के परिवर्तन के साथ-साथ ‘युग-चेतना’ भी बदलती रहती है । डॉ. पन्ना द्विवेदी का कहना है कि “समाज संस्कृति, राजनीति, धर्म, दर्शन, आध्यात्म्य, भौतिकता तथा विज्ञान आदि का स्वरूप जिस युग में जैसा रहता है उसे ठीक उसी रूप में ग्रहण कर अभिव्यक्त करते कवि, कथाकार, एवं नाटककार के साहित्य को युग-चेतना कही जाती है ।”<sup>६</sup>

तात्पर्य यह है कि जीवन ही की भाँति राष्ट्रीय जीवन में भी अपेक्षाकृत देर ही में सही युग परिवर्तन आता है । वैयक्तिक जीवन के समान उसकी भाव स्थितियाँ भी बदलती रहती है, राष्ट्रीय जीवन में इसी से कभी उत्साह तो कभी निराशा का, कभी आस्था की, तो कभी अनास्था की, कभी आदर्शवाद की तो कभी मूल्य विघटन की, संघर्ष की भाँति और शंका की स्थितियाँ आते ही युग की चाहे जो भी भाव स्थिति हो युग की प्रधान चेतना ही साहित्यकार की कृतियों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उद्घाटित होती है । फिर चाहे उसके उदघाटन अपनी-अपनी वैयक्तिकता के अनुसार भिन्न-भिन्न क्यों न हो ? युग

की प्रेरक शक्तियाँ निःसंदेह साहित्य के बाहर होती हैं, परंतु साहित्य के अध्ययन के समय साहित्य के साथ उनके सम्बन्ध में उनकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्यकार को अपने विचारों का भोजन अपने समाज से, काल एवं युग से भी मिलता है। साहित्य वस्तुतः उन माध्यमों में से एक है, जिनके द्वारा 'युग-चेतना' की धारा प्रवाहित होती है।

हम इस तथ्य से भी सहमत हैं कि 'युग-चेतना' को पूर्ववर्ती युगों - यहाँ तक कि इतिहास को उसकी चेतनाधारा से विच्छिन्न करके नहीं देखा जा सकता है। 'युग-चेतना' के संदर्भ में साहित्य के अध्येता को अखंडता के इस सूत्र को पकड़ना होगा और साथ ही उन विरोधी प्रवृत्तियों का भी ध्यान रखना होगा, जो क्रियात्मक या प्रतिक्रियात्मक रूप से युग की प्रधान चेतना के साथ काम करती रहती हैं। कई बार विरोधी विचारधारा प्रधान और प्रतिनिधि विचारधारा को समझने में बड़ी सहायक होती है। 'युग-चेतना' न केवल साहित्य के कथ्य में परिवर्तन लाती है, बल्कि उसके शिल्प को भी प्रभावित करती है। जिस प्रकार प्रत्येक युग की परिस्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं और साथ ही उसकी 'युग-चेतना' भी। ठीक उसी प्रकार प्रत्येक युग की अभिव्यंजना का माध्यम भी अलग हुआ करता है, जो संपूर्णतः मौलिक और अभिनव होता है। परंपरा से प्रचलित भावों की अभिव्यक्ति भले ही परंपरागत शैली में हो, किन्तु अभिनव - भावाभिव्यक्ति के लिए शैली भी नवीनतम ही प्रयुक्त होने लगती है। प्रत्येक युग के भाव एवं जन अभिरुचि में बदलाव आने के कारण भी अभिव्यक्ति की शैली में नवीनता आती है। प्रत्येक युग के भाव एवं जन अभिरुचि में बदलाव आने के कारण भावाभिव्यक्ति की कला में भी बदलाव आता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन परिस्थितियाँ एवं मान्यताओं के कारण परिवर्तनशील साहित्य के कथ्य एवं शिल्प

दोनों में ही नवीनता का आगमन होता है । अतः इस दृष्टि से भी 'युग-चेतना' का अपना महत्त्व होता है ।

स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासों में निहित 'युग-चेतना' का अध्ययन करने के लिए 'युग-चेतना' के स्वरूप पर प्रकाश डालना आवश्यक था । हमारा मानना है कि 'युग-चेतना' के संदर्भ में उपर्युक्त स्पष्टताएँ पर्याप्त हैं ।

### ❖ युग-चेतना का महत्त्व :

विभिन्न जातियों को एक महाजाति के सांचे में ढालने का प्रयास, अनेक विचारों और धर्मों के बीच एकता लाने का प्रयास, सभी युगों में भारतीय युग-चेतना की विशेषता रही है । जीवन दर्शन के विभिन्न दृष्टिकोण स्थल एवं जलवायु की विविधता के होते हुए भी हमारी युग-चेतना हमें एकता के सूत्र में बाँधती है । भारतीय युग-चेतना विभिन्न संस्कृतियों में एकता लाने की पक्षपाती है । इसी का यह परिणाम है कि आज समस्त संसार में केवल भारतीय संस्कृति ही ऐसी है कि जिसमें अधिकाधिक संस्कृतियों का मेल है । राष्ट्रीय मानस और राष्ट्रीय जीवनधारा की अभिव्यक्ति इसी आदर्श से जुड़ी हुई है, जो जड़ के पीछे चैतन्य की सत्ता को स्वीकार करता है और जगत को भौतिक नहीं, आध्यात्मिक मानता है । मानवीय नहीं, दैवीय समझता है । भारत वर्ष की परलौक सम्बन्धी आस्था, त्याग, ज्ञान, आदि कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो भारत के व्यक्तिगत और राष्ट्रीय दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं । भारतीय नैतिकता, चारित्रिकता, जीवन व्यवस्था एवं चर्चा का मूल स्रोत उसकी यही आध्यात्मिक जीवन दृष्टि है जो कि हमारी चेतना का आदर्श है ।

आज मानव की 'युग-चेतना' प्रजातीय, जातीय, सांप्रदायिक तथा राष्ट्रीय प्रभेदों से उपर उठकर मानवीय और आत्मिय बनती जा रही है । इसलिए हमारी रचनाएँ एकदेशीय न होकर सार्वभौमिक और सार्वकालिक हो सकी है, जिनमें मानव जीवन के कल्याण के प्रति तीव्र आग्रह हमें देखने को मिलता

है । वर्तमान में हमारी 'युग-चेतना' ने आध्यात्मिकता का स्थान जनहित की कल्पना को दे दिया है । विराम के स्थान पर जीवन के प्रति उत्कृष्ट राग नयी चेतना की विशेषता है । वर्तमान में हमारी चेतना व्यापक और समर्थ समन्वय का प्रतीक बनती जा रही है, जिसे हम विश्व संस्कृति की काल्पनिक संज्ञा दे सकते हैं । आज के मनुष्य को पूर्व और पश्चिम का उत्तराधिकार एक साथ मिला है । उसे अपनी शिक्षा-दीक्षा तथा सांस्कृतिक चेतना का अभिन्न अंग बनाकर ही हम राष्ट्रीयता के भीतर से आंतरराष्ट्रीयता या विश्व मानवता की ओर बढ़ सकते हैं ।

'युग-चेतना' अतीत के महत्त्वपूर्ण चरित्रों, घटनाओं, विसंगतियों, खड़ियों, एवं आदर्शों को ग्रहण करके वर्तमान की समस्याओं के समाधान में जो महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, उसका एक व्यापक राष्ट्रीय महत्त्व होता है । क्योंकि जातीय जीवन अथवा समूह जीवन को ही आधुनिक अर्थ में राष्ट्रीय जीवन कहने लगे हैं । जातीय जीवन या समूह जीवन के कुछ शाश्वत मूल्य होते हैं । उन्हीं मूल्यों के अनुरूप ही जीवन के आदर्श की रूपरेखा तैयार होती है । इस प्रकार हम एक परम्परागत जीवन पथ के अनुरूप सोचने के आदी बन जाते हैं । राष्ट्रीय जीवन में प्राण फूंकने के लिए सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को पुष्ट एवं स्पष्ट करना आवश्यक होता है । इसके लिए इतिहास का आधार ग्रहण करना आवश्यक होता है, क्योंकि अतीत का प्रेम भी युग-चेतना की परिधि से बाहर नहीं होता है । सच्चे अर्थों में अतीत का प्रेम सांस्कृतिक पुनःजागरण का ही परिणाम होता है और इतिहास का विवेचन करना राष्ट्रीयता को जगाना होता है । जागरण की प्रवृत्ति का द्योतक होता है । इतिहास का विवेचन तो राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है । इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास का विवेचन या अतीत का मोह – ये दोनों ही चीजें युग-चेतना से ओतप्रोत हैं । एक ओर भी है जो संभवतः निर्विवाद है ।

स्वच्छंद चेतना जो किसी भी बंधन में बंधना नहीं चाहती, उसे अतीत की गोद में ही आनंद प्राप्त होता है ।

युग-चेतना अतीत को आधार बनाकर भी ऐसे चरित्रों एवं घटनाओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं कि वर्तमान में भी संपूर्ण स्थितियों का दर्शन हो जाता है । वस्तुतः प्रस्तुत चेतना की दृष्टि वर्तमान की होती है और आकर्षण अतीत की ओर होता है । इस प्रकार वर्तमान की समस्या का समाधान अतीत के माध्यम से करना एक राष्ट्रीय जागरण का उदाहरण होता है । किसी भी राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने के लिए यह आवश्यक होता है कि उस राष्ट्र के जातीय जीवन में जिजीविषा को जगाया जाय, शक्ति का संवर्धन किया जाय । इसके लिए गौरवपूर्ण अतीत तथा पूर्वजित सांस्कृतिक संपदा का उपयोग करना अत्यंत जरूरी होता है, क्योंकि जातीय जीवन में जितनी शक्ति और स्फूर्ति सांस्कृतिक चेतना द्वारा संभव है, उतनी किसी अन्य द्वारा नहीं । इस प्रकार 'युग-चेतना' ऐतिहासिकता, अतीत एवं वर्तमान का युगान्ध स्वरूप, जीवनबोध आदि को समेटकर वर्तमान की सारी परिस्थितियों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करती है । इस प्रकार राष्ट्र को शक्तिशाली तथा आदर्श बनाने में युग-चेतना महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं ।

#### ❖ युग-चेतना और आधुनिकता :

युग-चेतना और आधुनिकता दोनों शब्द यदि देखे तो एक जैसे लगते हैं । अर्थ की दृष्टि से देखो तो भी दोनों में किसी भी प्रकार का वैषम्य देखने को नहीं मिलता, फिर भी दोनों शब्द अपने आप में अलग हैं । फिर भी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । जैसे कि आधुनिकता का प्रभाव युग-चेतना पर अवश्य पड़ता है । आधुनिकता के लिए अंग्रेजी में 'मार्डन' (Modern) शब्द प्रयुक्त होता है । आधुनिकता के संदर्भ में मानना है कि "आधुनिकता मानसिक प्रत्ययों तथा सामाजिक रहस्यों को समझाती तथा विश्लेषित करती है, ताकि

विशेष देशकाल के सन्दर्भ में मनुष्य सचेत एवं परंपरामुक्त होकर परिवर्तन भी कर सके । वास्तव में आधुनिकता में सिद्धांत एवं व्यवहार का संयोग है ।”<sup>१०</sup> आधुनिकता के संदर्भ में यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिकता अन्तहीन अन्त है, पर यह ध्यान में रखना होगा कि आधुनिकता सार्वभौमिक हैं और उसी सत्य से वह जुड़ी रहेगी । इसी अर्थ से स्पष्ट होता है कि वह संघर्ष की प्रक्रिया है । आधुनिकता कोई नई चीज नहीं है, यह बात बताते हुए विपिन कुमार अग्रवाल ने कहा है कि “आधुनिकता की प्रकृति सूक्ष्म है । इसकी कई स्थूल, पूर्व निश्चित अपरिवर्तनीय दिशा नहीं है, जिसे व्यापक ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जा सके । परमाणुओं की तरह इसके पास कोई यादगार चीज नहीं है, बल्कि हम कह सकते हैं कि आधुनिकता मूलतः एक खंडित घटना है, जिसकी बीती हुई घटनाओं से बहुत दूर का ही सम्बन्ध हैं ।”<sup>११</sup> कोई भी संवेदनशील रचनाकार अपने अनुभवों से प्रेरित होकर अपनी रचना का निर्माण करता है । वह अपनी रचना का प्रभाव पाठक तक पहुँचाता है ।

आधुनिकता के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल का कहना है कि “यह बात हमें समझनी चाहिए कि आधुनिकता स्वयं कोई मूल्य नहीं वह तो एक दृष्टि भर है – एक अनुभूति है । काल विशेष को आधुनिकता कहना ठीक नहीं है । काल विशेष में जीवित रहनेवाला हर व्यक्ति या साहित्यकार आधुनिक नहीं हैं, आधुनिकता समसामयिक संदर्भों में जुड़ी हुई नयी जीवन दृष्टि हैं ।”<sup>१२</sup> अतः आधुनिकता केवल काल विशेष के रूप में नहीं, किन्तु विशेषण के रूप में भी प्रयुक्त होता है । आधुनिकता एक प्रक्रिया है, जो सार्वजनिक स्तर पर नवीनता और क्रान्ति का संदेश देती हैं । आधुनिकता मात्र भौतिक या बौद्धिक क्रान्ति से नहीं होती, बल्कि मनुष्य अपने जीने के लिए जो संघर्ष कर रहा है, उसके सम्प्रेषण में वह होती है ।

आधुनिकता को समझने के लिए सूक्ष्म धरातल की आवश्यकता होती है । उपन्यासों के संदर्भ में माना जा सकता है कि जो कुछ भी नया है, जो वास्तविकता, यथार्थता की नकल नहीं है, वह आधुनिक है । आधुनिकता का सम्बन्ध अनुभूति, अभिव्यक्ति और संघर्ष चेतना से है । आधुनिकता को नये और पुराने संदर्भ में अपने-अपने ढंग से जोड़ा जाता है, इसलिए किसी भी प्राचीन कृति अपनी मौलिकता के कारण आधुनिक कही जाती है, और आधुनिक काल की रचना सामाजिक चेतना न होने के कारण आधुनिक न कहलाये । चेतना और आधुनिकता एक दूसरे के पूरक है । आधुनिकता के लिए चेतना का होना आवश्यक है, किसी भी नवीन कृति में यदि कोई चेतना का भाव जागृत न होता हो, तो उस साहित्यिक कृति में आधुनिकता का अभाव देखने को मिलता है । प्रत्येक युग का अतीत अतीत बनने से पहले आधुनिक होता है, क्योंकि आधुनिकता विशेष रूप में स्वीकार की जाती है । विश्व में अनेक इसके उदाहरण हैं जैसे सूर, कबीर, तुलसी मध्ययुगीन होकर भी अपने साहित्य और साहित्य में होनेवाली चेतना के द्वारा ही आधुनिक कहलाये हैं । इसको रमेश कुन्तल 'मेघ' के शब्दों में देखे तो "व्यापक आधुनिकीकरण तथा समाजकृत आधुनिकीकरण की समस्या को एक ओर राष्ट्रीय संस्कृति के प्रश्न से जोड़ सकते हैं, तो दूसरी ओर समाज के आधुनिकीकरण से, इसलिए आधुनिकता एक विचार विधि, एक व्यवस्था की समग्र धारणा एवं चिन्तन पद्धति, एक वृत्ति अथवा मूल्य चक्र से अभिहित होती हैं ।"<sup>१३</sup> इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य सामाजिक और नैतिक मूल्यों से जुड़ा हुआ है । साहित्य का विषय केवल आधुनिकता के संदर्भ में तत्कालीन साहित्य पर मात्र विचार करना नहीं है । आधुनिकता वस्तुतः युग चेतना का पर्याय है और युग-चेतना साहित्य की किसी विधा में नहीं तो वह किसी भी अर्थ में आधुनिकता नहीं कही जा सकती ।

आधुनिकता के संदर्भ में यह निश्चित है कि नित्य क्रियाशील व गतीमान रहे । आधुनिकता को हम परम्परा से काटकर अलग नहीं कर सकते । आधुनिकता क्रिया के रूप में जिस प्रकार परंपरा से जुड़ी है, उसी प्रकार वर्तमान से जुड़ी हैं । सत्य तो यह है कि आधुनिकता क्रियाशील जीवन दर्शन हैं । जहाँ बिता हुआ काल और आनेवाला काल एक विशिष्ट बिन्दु पर मिलता है । सृजनशील रचनाकार अपने युग के प्रति प्रतिबद्ध होता है, इसलिए उसे अपने युग की पूर्व प्रवृत्तियों का स्वीकार करते हुए वर्तमान के साथ जोड़ना होता है । आधुनिकता में बिती हुई परम्परा और वर्तमान प्रवृत्तियों का सहज विकास होता है, इसलिए आधुनिकता को हम देशकाल और किसी सीमा में बाँधकर नहीं रख सकते । आधुनिकता वास्तव में कालजयी है । आधुनिकता हर स्थिति को तार्किक चेतना प्रदान करती है । आज के युग में जिस प्रकार से वैज्ञानिक सतर्कता और वस्तुनिष्ठा दिखाई देती है, वह इसके पूर्व नहीं थी, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि हम अतीत की परम्परा को छोड़ दे । हर युग में परम्परा बदलती नहीं है, किन्तु परम्परा को देखने का दृष्टिकाण बदल जाता है । आधुनिकता के संदर्भ में भी कुछ ऐसी ही बात है ।

आधुनिकता का सम्बन्ध विशेषण, गुण, काल आदि के साथ भी माना गया है । आज के युग में साहित्यकार प्राचीन परम्पराओं के साथ संघर्ष करता है और इसमें विद्रोह की भावना देखी जा सकती है । वे अपनी रचनाओं में उन परम्पराओं का वर्णन करते हैं और वे कृतियों के माध्यम से आधुनिक विचारों एवं भावों का वर्णन करते हैं । किसी भी व्यक्ति को देखकर इस बात का अंदाज नहीं लगाया जा सकता कि वह आधुनिक है । किन्तु व्यक्ति के विचार आधुनिक होते हैं । व्यक्ति आधुनिकता के साथ कदम से कदम मिलाकर चलता है । आधुनिकता को किसी बंधन में नहीं बाँधा जा सकता ।



वह मुक्त है । कहीं भी दृष्टिगत हो सकती है । इस तरह आधुनिकता युग-चेतना के अनुसार परिवर्तित होती रहती है ।

### ❖ युग-चेतना और जीवन मूल्य :

मनुष्य के जीवन में मूल्यों का अधिक महत्त्व है, क्योंकि मूल्यों से ही जीवन को लयबद्ध बनाया जा सकता है । मूल्य का समाज के साथ अतूट रिश्ता है, क्योंकि मूल्य समाज सापेक्ष है, तो समाज मूल्य सापेक्ष है । समाज में परिवर्तन आने के कारण मूल्य की संकल्पना बदलती रहती हैं । मूल्य के संदर्भ में व्याख्या करना एवं संकल्पना स्पष्ट करना कठिन है, फिर भी कुछ साहित्यकारों ने प्रयास किया है ।

‘मूल्य’ शब्द संस्कृत की ‘मूल’ धातु के साथ ‘यत्’ प्रत्यय संयुक्त कर देने से बना है, जिसका अर्थ कीमत, मूल्य रहा है । इस प्रकार इसका सम्बन्ध धन या रुपया के साथ जोड़ा गया है । हिन्दी साहित्यकोश में ‘मूल्य’ और प्रतिमान को समानार्थी शब्द माना गया है । मूल्य शब्द अंग्रेजी में ‘Value’ शब्द का समानार्थी है । और लेटिन भाषा में ‘Valere’ से बना है, जिसका अर्थ अच्छा, सुन्दर आदि होता है । यह शब्द साहित्य के क्षेत्र का अपना निजी शब्द न होकर वाणिज्य, अर्थशास्त्र आदि के क्षेत्र का शब्द है । आरंभ में यह शब्द अर्थशास्त्र के संदर्भ में ही प्रयुक्त हुआ, लेकिन जब यह मानवीय संवेदनाओं के गहन स्तरों के साथ जुड़ा तो मानवीय संवेदनाओं की तरह इसकी सीमा फैली और धीरे-धीरे अर्थ विस्तार के कारण इसकी सार्थकता साहित्य, जीवन और संस्कृति के रूप में भी विवेचित होने लगी ।

‘मूल्य’ को परिभाषा में बांधना अति कठिन कार्य है, फिर भी एक धारणा को ग्राह्य बनाने और उस पर विचार करने के लिए उसके सम्बन्ध में कुछ अभिमत प्रस्तुत किये जा सकते हैं । वस्तुतः हमारा जीवन क्या है और क्या होना चाहिए । इन दोनों की सीमान्ताओं से सम्बन्ध रहता है । जो है

वह तथ्य है और जो होना चाहिए वह 'मूल्य' है । दूसरे शब्दों में आदर्श को ही मूल्य कहा जाता है, परंतु यह धारणा समुचित नहीं है, क्योंकि 'मूल्य' यथार्थपरक भी हो सकते हैं । भारत में मूल्य का सम्बन्ध पुरुषार्थ के रूप में हुआ है । संस्कृत साहित्य में पुरुषार्थों को मानवीय जीवन के आधार रूप में दिखाया गया है । डॉ. धर्मवीर भारती के अनुसार "मूल्य व्यक्ति विशेष द्वारा प्रतिपादित होने पर भी व्यक्तिगत नहीं हो सकता । मूल्य न पूर्णतः वस्तुगत होते हैं और न पूर्णतः व्यक्तिगत । वे वस्तु व्यक्ति के परस्पर सम्बन्धों, क्रिया-प्रतिक्रियाओं, संघर्षों-संगतियों के फल होते हैं ।"<sup>१४</sup> मूल्य समाज रूपी शरीर में हृदय के समान है, जो समस्त समाज में जीवन का संचार करता है । व्यक्ति के जीवन को समाज के अनुकूल या सामाजिक सीमा रेखाओं के अंतर्गत बनाए रखने के लिए स्वीकृत मान्यताओं को हम मूल्य मानते हैं । 'मूल्य' अनुभूति का व्यवहारिक रूप होता है, जब कि अधिकांश विद्वान मूल्य को विवेक आधारित स्वीकार करते हैं । 'मूल्यों' का सम्बन्ध मानव जीवन से स्थापित किया गया है । प्रत्येक समाज के अस्तित्व को सुस्थिर करनेवाले आधारों में सबसे प्रमुख है उसकी मूल्यवत्ता । समाज में जागृकता, चेतना लाने के लिए श्रेष्ठ माध्यम है - साहित्य । इसलिए साहित्य के संदर्भ में साहित्यिक मूल्यों की प्रधानता है । साहित्य में व्यक्त मूल्यों का स्वरूप व्यक्ति के माध्यम से अनुभूत सामाजिकता का ही स्वरूप है । साहित्य के संदर्भ में जब हम मूल्यों को रूपायित करते हैं, तो इस समय उसमें मात्र सिद्धांत नहीं रह जाते, वरन् वे साहित्य में प्रतीकात्मक एवं बिम्बात्मक रूप में दृष्टिगोचर होते हैं । साहित्य में जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति उसी तरह नहीं होती, जैसे ज्ञान विज्ञान में होती है । साहित्य और कला में जीवन मूल्यों का रूपायन होता है । वे सूक्ष्म सिद्धांत न रहकर अपने को अभिव्यक्त करते हैं । एक प्रकार से समस्त साहित्य प्रतीकात्मक होता है, जिसमें जीवन मूल्य उपचेतन मन से बदलकर चेतनलोक में आते हैं । साहित्य समाज के दर्पण अथवा प्रतिबिम्बन

के मूल में हमारा अभिप्राय यही होता है कि साहित्य सभी सैद्धांतिक और व्यवहारिक, सामाजिक मूल्यों को ग्रहण और व्यक्त करता है । साहित्यकार अपनी सृजन प्रक्रिया के अंतरंग क्षणों में जीवन और जीवन मूल्यों की ही व्यवस्था करता है । इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य में मूल्यों का आरोपण बाहर से नहीं हो सकता । वे साहित्यकार के अनुभूत सत्य होते हैं । वे अपनी उदात्तता और जीवन्तता के कारण समाज द्वारा मूल्यों के रूप में रूपायित होते हैं । मूल्य और साहित्य का सम्बन्ध तात्त्विक है । जिस मूल्य की सिद्धि मानवीय अनुभव द्वारा जीवन में कर ली जाती है । वही साहित्य में प्रतिबिम्बित होता है । साहित्यकार को मूल्यों को अपनी संवेदना और व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग बनाना पड़ता है । अतः यह मानना होगा कि साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्यों से भिन्न नहीं होते । यह बात निर्विवाद है कि जिसका जीवन में मूल्य हैं, उसका साहित्य में भी मूल्य है । पर साहित्यकार की मूल्यनीति अन्य मूल्यवेत्ताओं से व्यापक होती है । अभिव्यक्ति संवेदनात्मक धरातल पर होती है । इस संदर्भ में डॉ. रामगोपाल सिंह चौहाण का कहना है कि “हर नये युग में जीवन मूल्य अपना नया संस्कार करते हैं, यही उनका कल्प है, अपने इस नये संस्कार में उनका पुराना रूप नया बनता है । इस रूप में मानव संस्कार पुराने के प्रवाहक्रम का ही अगला विकास होते हैं । जीवन मूल्यों के इस नये संस्कार और कल्प की गति को साहित्यकार उस समय तक अपने साहित्य में मूर्तिमत्ता नहीं दे सकता, जब तक कि उसे युग की विचारधाराओं, जीवन दर्शन और जीवन के विकास के लक्ष्य और उसकी गति का ज्ञान न हो ।”<sup>१५</sup> कोई भी साहित्यकार अपने युगीन वातावरण से सर्वथा पृथक् रहकर वास्तविक उच्च कृति का निर्माण नहीं कर सकता । इसलिए कृति में तत्कालीन प्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रहती ही हैं । किसी भी परिस्थिति को जाने बिना जीवन मूल्यों को समझा नहीं जा सकता, क्योंकि जीवन के अधिकांश मूल्यों का परिस्थिति के अनुसार उसके स्वरूप का

विकास होता है । साहित्य में जीवन मूल्यों का प्रचार या कथन नहीं होता, उनका बिम्बात्मक पूनःनिर्माण या जीवन और सुंदर नवनिर्माण होता है । साहित्य में प्रचारात्मक और सुधारवादी तत्त्वों को निकाल देने पर भी बहुत कुछ ऐसा रह जाता है, जिसमें उन्होंने स्वानुभूत जीवन मूल्यों को रूपायित और सौन्दर्य से अभिभूत किया जाता है । प्रत्येक व्यक्ति चेतना के आधार पर अपने सामाजिक जीवन का आभ्यांतरिकरण करता है । जीवन की आभ्यांतरिकरण प्रक्रिया से ही व्यक्ति अपनी जीवन दृष्टि और मूल्य दृष्टि को भी विकसित कर लेता है । इसके साथ ही मूल्य चेतना में वर्ग चेतना की महता भी है । व्यक्ति की मूल्य चेतना में उसकी आंतरिक दृष्टि के साथ उसकी शक्ति सीमाओं का पक्ष विशेष कार्य करती है । इसलिए वह स्पष्टतः स्वीकार करता है कि मानव सम्बन्धों की स्थिति, स्वरूप तथा विकासावस्था के आधार पर तथा उसके अनुसार हमारी विश्वदृष्टि, नैतिकता तथा जीवन मूल्य बनते हैं । इस तरह युग-चेतना और जीवन मूल्य एक दूसरे से अलग होते हुए भी निकट का सम्बन्ध हैं ।

### ❖ युग-चेतना और युग बोध :

‘युग-चेतना’ और ‘युग बोध’ जो सामान्यतः समानार्थी लगते हैं । फिर भी दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं । ‘बोध’ शब्द का अर्थ ज्ञान या जानकारी से हैं । ‘बोध’ शब्द को अंग्रेजी में सेंस (Sense) कहते हैं । ‘चेतना’ का सम्बन्ध चित्त से है और ‘बोध’ का सम्बन्ध ज्ञान से है । ‘युग-चेतना’ और बोध का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर अवश्य पड़ता है ।

साहित्य में युग काल का बोधक न होकर वृत्ति का बोधक होता है । ये वृत्तियाँ मानव प्रकृति के व्यापार से सम्बन्ध रखती है । दूसरे शब्दों में किसी काल का ‘युग-बोध’ उस काल के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं राष्ट्रीय परिवेश में ही निहित होता है । साहित्य हमारी अन्तश्चेतना में पड़े हुए

संस्कारों और भावों का यथार्थ उन्मेष है । प्रकृति जगत को हमारी अन्तश्चेतना जिस रूप में ग्रहण करती है, वही हमारा 'युग बोध' है । साहित्यकार अपने अनुभवों को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है । वह अपनी रचनाओं में 'युग बोध' और 'युग-चेतना' का समन्वय करके चित्रित करने का सामर्थ्य रखता है । जिसमें साहित्य के माध्यम से 'युग-चेतना' मुखर होती है । 'युग-चेतना' और 'युग बोध' के बीच के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि "प्रत्येक भारतीय लेखक का कर्तव्य है कि वह भारतीय जीवन में होनेवाले परिवर्तनों को अभिव्यक्ति दे और साहित्य में वैज्ञानिक बुद्धिवाद का समावेश करके देश में क्रान्ति की भावना के विकास में सहायता पहुँचाए । उन्हें साहित्य समीक्षा के ऐसे दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए, जो परिवार, धर्म, काम, युद्ध और समाज के प्रश्नों पर सामान्यतः प्रतिक्रियाशील तथा पुराणपंथी प्रवृत्तियों का विरोध करे । उन्हें ऐसी साहित्यिक प्रवृत्तियों का विरोध करना चाहिए जो सांप्रदायिकता, जाति, द्वेष तथा मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की भावना को प्रतिबिम्बित करती हो ।"<sup>१६</sup> किसी भी साहित्यिक कृति में घटनाओं के माध्यम से एक युग, एक समाज अंकित होता है । जिसके कारण मानवीय अनुभव एवं संवेदनाओं की ऐसी अभिव्यक्ति होती है, जिसमें साहित्यकार जीवित व्यक्ति समाज के यथार्थ जीवन को ग्रहण करता है । इसलिए समसामायिक युग-बोध अधिक व्यापक, गहरा, एवं यथार्थ होता है । वह जीवन यथार्थ को ऐतिहासिक कलेवर में नहीं, अपितु साहित्यिक युग - सत्य के रूप में प्रस्तुत करता है और यही उनकी सार्थकता हैं । साहित्यकार अपनी रचनाओं में 'युग-चेतना' और 'युग-बोध' प्राप्त करके आनेवाले युग के लिए एक नयी दिशा बताने का प्रयास करता है । 'युग-चेतना' और 'युग बोध' दोनों ही का साहित्य में होना अनिवार्य है । किसी एक के न होने से उस साहित्य की विशेषता का अभाव देखने को मिलता है । 'युग-चेतना' का सम्बन्ध मनुष्य के मस्तिष्क से है । किसी साहित्यकार अपने समय की तत्कालीन परिस्थिति का

वर्णन करता है, तब वह 'युग-बोध' को ध्यान में रखता है । क्योंकि 'युग-बोध' के बाद ही 'युग-चेतना' पर विचार किया जाता है । साहित्य में 'युग-बोध' आवश्यक अंग है । 'युग-बोध' और 'युग-चेतना' के बिना समाज में क्रान्ति लाना असंभव है । किसी काल की परिस्थितियाँ उस से प्रभावित चेतना किसी न किसी रूप में किसी न किसी धरातल पर साहित्य में अभिव्यक्त होती है । स्वातंत्र्योत्तर काल में जो भी साहित्य निर्मित हुआ, इसमें 'युग-बोध' का निरूपण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में अवश्य हुआ है, क्योंकि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियाँ ऐसी थी, जिसके कारण उनका स्थान अनिवार्य-सा बन गया था । 'युग-चेतना' का सम्बन्ध विचारों से है, जबकि 'युग-बोध' का सम्बन्ध आत्मसात करने के साथ है । 'युग-चेतना' और 'युग-बोध' एक दूसरे के पूरक हैं । स्वातंत्र्योत्तर काल के साहित्यकारों ने 'युग-बोध' का वर्णन अपने साहित्य में किया है, जिससे समाज में क्रान्ति लाई जा सके । साहित्य में साहित्यकार के विचारों का निर्देश किया जाता है, जिससे आम जनता तक पहुँचा जा सकता है । इसलिए 'युग-चेतना' और 'युग-बोध' का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है ।

#### ❖ निष्कर्ष :

साहित्य का सम्बन्ध मानव समाज से है । इसलिए साहित्य और समाज दोनों अन्योन्याश्रित हैं । साहित्यकार अपनी कृति में तत्कालीन समाज में हो रही विसंगतियाँ, रीत, रिवाज, प्रथाएँ आदि का अनुभव करता है । देखता है, किन्तु उन विसंगतियों को बाहर लाने के लिए वह साहित्य का निर्माण करता है । और अपने साहित्य में उन सभी विसंगतियों का वर्णन करता है । उसके माध्यम से वह समाज में जागरूकता लाने का प्रयास करता है, वह प्रयास ही युग-चेतना है ।

‘युग-चेतना’ दो शब्द से बना है । ‘युग’ और ‘चेतना’ । ‘युग’ का सम्बन्ध तत्कालीन परिस्थिति से है । जिससे विभिन्न युग में विभिन्न साहित्य का निर्माण हुआ है । चेतना का सम्बन्ध मानव मन से है, जिससे कि वह अपने युग की विसंगतियों को मानव मन तक पहुँचाने का प्रयास करता है । चेतना का स्वरूप भले ही अमूर्त है, किन्तु उसे अनुभव किया जा सकता है । ‘युग-चेतना’ साहित्य में किसी न किसी रूप में परिलक्षित होती ही रहती है । ‘युग-चेतना’ का सम्बन्ध आधुनिकता से भी है, क्योंकि युग बदलने से साहित्य में परिवर्तन आता है । आधुनिकता दिन-प्रतिदिन बदलती रहती है, तो साहित्य में भी उस परिस्थिति के अनुरूप परिवर्तन आता है । उस तरह युग-चेतना का सम्बन्ध जीवन मूल्यों के साथ भी जोड़ा गया है, क्योंकि जीवन में यदि मूल्य जैसी कोई चीज ही नहीं, तो फिर उसमें ‘युग-चेतना’ का प्रभाव नहीं देखने को मिलता । ‘युग-बोध’ का सम्बन्ध भी युग-चेतना के साथ जुड़ा हुआ है, जिसके कारण साहित्यकार ‘युग-चेतना’ को अपने साहित्य में परिलक्षित करता है ।

❖ सन्दर्भ सूची :

१. युग और साहित्य - शान्तिप्रिय द्विवेदी - पृ. २०
२. रांगेय राघव के उपन्यास में युग चेतना - डॉ. वैश्य - पृ. २३
३. विविध बोध नये हस्ताक्षर - डॉ. हुकुमचन्द राजपाल - पृ. १०
४. भगवती चरण वर्मा के उपन्यास में युग चेतना - डॉ. बैधनाथ प्रसाद शुक्ल - पृ. ७
५. मानक हिन्दी कोश - पृ. २७४
६. हिन्दी विश्वकोश भाग-४ - डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी - पृ. २८२
७. हिन्दी उपन्यास युग चेतना और पाठकीय संवेदना - डॉ. मुकुन्द त्रिवेदी - पृ. १
८. भगवती चरण वर्मा के उपन्यास में युग चेतना - डॉ. बैधनाथ प्रसाद शुक्ल - पृ. ६
९. दिनकर के काव्य में युग चेतना - डॉ. पन्ना द्विवेदी - पृ. ३
१०. आधुनिक खंडकाव्य में युग चेतना - डॉ. एन. डी. पाटील - पृ. २७
११. आधुनिकता के पहलू - विपिन कुमार अग्रवाल - पृ. १८
१२. आँचलिकता से आधुनिकता बोध - भगवती प्रसाद शुक्ल - पृ. १३१
१३. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण - डॉ. रमेश कुन्तल 'मेघ' - पृ. २११
१४. मानव मूल्य और साहित्य - डॉ. धर्मवीर भारती - पृ. ५०
१५. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. रामगोपाल सिंह - पृ. ३४
१६. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ - डॉ. रामविलास शर्मा - पृ. ३६



## अध्याय – २

### “डॉ. राही मासूम रज़ा व्यक्तित्व और कृतित्व”

- ❖ विषय प्रवेश
- ❖ डॉ. राही का जीवन : एक परिचय
  - जन्म
  - परिवार
  - शिक्षा दीक्षा
  - व्यवसाय
  - जीवन संघर्ष
  - अंतिम समय
- ❖ डॉ. राही का व्यक्तित्व
  - ♦ बाह्य व्यक्तित्व
    - वेशभूषा
    - शोख
    - बाहरी स्वरूप
  - ♦ आंतरिक व्यक्तित्व
    - स्वभाव
    - संस्कार
    - नीड़रता
- ❖ डॉ. राही के व्यक्तित्व की विशेषताएँ
  - समाजसुधारक राही
  - धर्मनिरपेक्ष राही
  - सांप्रदायिकता के विरोधी राही

- राष्ट्र प्रेमी राही
- मातृभूमि के प्रति परम श्रद्धावान राही
- राजनीति के बारे में राही के विचार

❖ डॉ. राही का कृतित्व

- निबंध
- कहानियाँ
- जीवनी
- कविता
- काव्य संग्रह
- महाकाव्य
- उर्दू उपन्यास
- हिन्दी उपन्यास
- उपन्यासकार के रूप में राही

- (१) आधा गाँव
- (२) हिम्मत जौनपुरी
- (३) टोपी शुक्ला
- (४) ओस की बूंद
- (५) दिल एक सादा कागज
- (६) सीन ७५
- (७) कटरा बी आर्जू
- (८) असंतोष के दिन
- (९) नीम का पेड़

- सफल पटकथा-संवाद लेखक के रूप में राही

❖ निष्कर्ष

❖ सन्दर्भ सूची

## अध्याय – २

### “डॉ. राही मासूम रज़ा व्यक्तित्व और कृतित्व”

#### ❖ विषय प्रवेश :

साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसलिए साहित्य की यह विशेषता रही है कि उसमें समाज का अंकन किया जाय। साहित्य और समाज का धनिष्ठ संबंध है। किसी भी साहित्यकार समाज का ही एक सभ्य होता है। इसलिए समाज में जो देखता है, अनुभव करता है, उसका वर्णन उसके साहित्य में देखने को मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य में अपने युग और समाज का प्रतिबिम्ब अवश्य दिखाई देता है। किसी भी साहित्यकार को अपने साहित्य में सहायक बनने के लिए युग, परिवेश और समाज ये तीन माध्यम ही उनके व्यक्तित्व में सहायक बनते हैं।

किसी भी साहित्यकार के समग्र साहित्य का अध्ययन करने से पहले उस साहित्यकार के जीवन के पहलुओं को समझना आवश्यक है। यदि उनके जीवन को समझेंगे तब उनके साहित्य को समझने में सरलता रहेगी। अतः डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों को समझने से पूर्व उनके समग्र जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

हिन्दी एवं उर्दू साहित्य के प्रख्यात उपन्यासकार डॉ. राही मासूम रज़ा स्वातंत्र्योत्तरकाल के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में से एक हैं। डॉ. राही ने अपने समग्र समाज की जटील समस्याओं का चित्रण किया है। उन्होंने साहित्य के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। डॉ. राही आदर्श की ऊँची उड़ाने नहीं भरते, अपितु यथार्थ के धरातल पर विश्वास करते हैं। उनके उपन्यासों में कबीर की परंपरा का प्रभाव विशेष रूप में देखा

जाता हैं । इसलिए उन्होंने समाज को जैसा देखा वैसा ही चित्रण अपने साहित्य में किया हैं ।

डॉ. राही ने राष्ट्र में सर्वव्यापी भ्रष्टाचार को बेनकाब करने का प्रयत्न किया है । उन्होंने लिखा है कि “आधुनिक भारत में यह तय करना मुश्किल है कि धर्म ज्यादा बड़ा है या राजनीति । लेकिन दोनों व्यापारों में पैसा स्मगलिंग से भी ज्यादा है इसलिए जिसे देखिए वही राजनीति और धर्म के धंधे में जाने को बेकरार हैं ।”<sup>9</sup> डॉ. राही को हिन्दुस्तानी होने का गर्व है, इसलिए उनके उपन्यास में भारत विभाजन के समय की घटनाओं का असर उनके उपन्यासों में दृष्टिगत होता हैं । उनके साहित्य का मुख्य आशय हिन्दू मुसलमान के वैमनस्य को चित्रित करके उसे मिटाने का है और इस विषय पर उनकी पूरी आस्था हैं । उनकी आस्था का स्वर उनकी रचनाओं में स्पष्ट दिखाई देता हैं । धर्म के नाम पर हो रहे भ्रष्टाचार पर कबीर के बाद किसीने अपनी लेखनी चलाई है, तो वह है डॉ. राही मासूम रज़ा । इसलिए राही को युगपुरुष एवं समाजसुधारक कहा जा सकता हैं ।

#### ❖ डॉ. राही का जीवन : एक परिचय :

डॉ. राही मासूम रज़ा एक प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है । हिन्दी साहित्य में उनका स्थान सदैव सम्माननीय रहेगा । हम उनके जीवन-परिचय पर एक दृष्टि करें । यथा -

#### ➤ जन्म :

डॉ. राही मासूम रज़ा हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली कलाकार हैं । उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समग्र हिन्दी साहित्य में अपना नाम कमाया हैं । इसलिए मानवीय मन की अनंत भावनाओं, इच्छाओं और संवेदनाओं को अपनी विकसित विचारधारा के माध्यम से प्रकट करने का साहस केवल राही कर पाए हैं ।

किसी साहित्यकार की साहित्यिक कलाकृतियों का अध्ययन करना हो तो, उन साहित्यकार की व्यक्तिगत जिंदगी से हमें जुड़ना होगा, क्योंकि कलाकार की संवेदनशीलता, अनुभूतियाँ, भावनाएँ आदि का ख्याल तब मालूम होता है, जब हम उनके जीवन के बारे में जानते हैं। किसी भी साहित्यकार के साहित्य में अपने जीवन के साथ जुड़े हुए पहलुओं का प्रभाव देखने को मिलता है। साहित्यकार की साहित्यिक कृतियों से अपनी एक अलग पहचान बनती है। यह पहचान उस साहित्यकार के लेखन और प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण अपनी अलग विशेषता पाठकों एवं दर्शकों के सामने एक प्रतिभा के रूप में साकार होती है।

डॉ. राही मासूम रज़ा का जन्म १ सितम्बर १९२७ में पूर्वी उत्तरप्रदेश के गाजीपुर के गाँव 'बुधही' में एक सुसंस्कृत तथा संपन्न परिवार में हुआ था। गाजीपुर शहर से १२ कि.मी. दूर 'गंगोली' नामक गाँव राही का ननीहाल रहा है। गंगोली में सैयदों के केवल दश परिवार थे और वे सभी उत्तर पट्टी और दक्खिन पट्टी में बँटे हुए थे। उनमें एक परिवार मुनी हसन का था और राहीजी की दादी मुनी हसन की बहन थी। वास्तव में दादी अपने पति के साथ मायके में आ बसी थी। जिसके कारण राही का परिवार 'गंगोली' का कहा गया है। राही को उस भूमि के प्रति मनमें अपार स्नेह रहा है। इन्सान जहाँ जन्म लेता है, जिस मिट्टी में खेल कूदकर बड़ा होता है, उस मिट्टी से उनका नाता जुड़ा होता है। अपनी भूमि की मिट्टी से जुड़ी कोमल भावनाओं को राही ने इन शब्दों में व्यक्त किया है – “मैं उस गढ़ी का हूँ जिसने गंगा की तरह गंगोली को अपनी गोद में ले रखा है, मैं पाँचवीं और आठवीं मोहरम के गस्त का हूँ। मैं करधों की उन आवाजों का हूँ जो दिन-रात चलते हैं कभी नहीं रुकते।”<sup>२</sup>

गाजीपुर प्रसिद्ध सांस्कृतिक स्थान है। इसका पुराना नाम गादीपुरी था। राही अपने गाँव गाजीपुर का परिचय देते हुए कहते हैं कि “अषाढ़ की एक

काली रात में तुगलक के एक सरदार सय्यद मसऊद गाजी ने बाढ़ पर आयी गंगा को पार करके गादिपुर पर हमला किया और इस शहर का नाम गादिपुर से गाजीपुर हो गया, नाम शायद ऊपरी खोल होता है, जिसे बदला जा सकता है । नाम का व्यक्तित्व से कोई अटूट रिश्ता नहीं होता शायद ।”<sup>२</sup> उनके गाँव गंगोली के विषय में एक मान्यता यह है कि इस गाँव के राजा का नाम ‘गंगा’ था और उसी के नाम से गंगोली पड़ा ।

डॉ. राही अपने आप को तीन माँओं का बेटा मानते हैं । एक जन्म देनेवाली नफीसा बेगम, दूसरी संस्कारदात्री अलीगढ़ युनिवर्सिटी और तीसरी माँ गंगा जिससे उनका शरीर पोषा गया हैं ।

#### ➤ परिवार :

डॉ. राही का जन्म सुखी संपन्न परिवार में हुआ था । अतः उनका बचपन सुख और ऐशो आराम में बीता था । डॉ. रज़ा का मूल नाम सैयद मासूम रज़ा था । इनके पिता का नाम सैयद बसीर हसन आबदी था । वह गाजीपुर के जिला कचहरी में वकालत करते थे, वे एक कामयाब वकील थे । अतः वकालत खूब चलने के कारण पैसे भी खूब आते थे । अतः गंगोली अपना गाँव होते हुए भी गाजीपुर में रहते थे । उनकी माता का नाम नफीसा बेगम था ।

राही के बचपन में उनकी दादी जीवित थी । जो राही को बहुत प्यार करती थी, राही का मन बहलाने के लिए उन्होंने अपने मायके से कल्लुकाका को बुलाया था, जो कुबड़े थे । वे राही को कहानियाँ सुनाते थे । इस तरह राही को बचपन से ही कहानियाँ सुनने का शौख था । परिवार में चार भाई और पाँच बहनें थी । राही के बड़े भाई जनाब मुनीस रज़ा थे, जो दिल्ली विश्वविद्यालय में वाईस चांसलर के पद से रिटायर होकर दिल्ली में ही इन्स्टीट्यूट ओफ़ शोस्यल स्टडीज के चेयरमेन हैं । उनके दो छोटे भाई हैं, जनाब मेंहदी रज़ा और अहमद रज़ा । मेंहदी रज़ा अलीगढ़ विश्वविद्यालय में

भूगोल विभाग में अध्यापक थे, अब वह सेवानिवृत्त हो चुके हैं । छोटे भाई अहमद रज़ा जो वर्ल्ड बैंक का एक स्वतंत्र प्रतिष्ठान है 'इन्टरनेशनल मोनेटरी फंड' ये उसी के इंडियन डेस्क पर गोपी अरोरा के साथ काम करते हैं ।

डॉ. राही के तीन भाईओं के अलावा पाँच बहनें थीं, जिनमें से चार की शिक्षा पुराने रीति रिवाज के अनुसार घर पर हुई थी । उस जमाने में लोगों के मनमें एक ग्रंथी बंधी हुई थी कि जो लोग अपने आपको शरीफ समझते हैं, वे लड़कियों को बाहर पढ़ने नहीं भेजते थे, क्योंकि उनका सैयद का खानदान ऊँचा माना जाता था । सैयद धराने की स्त्रियाँ घर बाहर नहीं निकलती थी । किन्तु छोटी बहन सुरैया की जब पढ़ने की उम्र हुई तब घर के बच्चे-सभी भाई बहन जवान हो गये थे और इसी कारण सबने माता-पिता पर दबाव डाला कि छोटी बहन सुरैया को भी स्कूल-कोलेज भेजकर पढ़ाना चाहिए । अतः सुरैया खूब पढ़ी । उन्होंने संगीत भी सीखा और इतिहास में एम.ए. करके पीएच.डी. करके ससुराल इलाहाबाद डिग्री कोलेज में पढ़ा रही हैं ।

डॉ. राही का विवाह फैजाबाद की पोष्ट मास्टर की लड़की मेहरबानों से हुआ था । राही का सारा परिवार वास्तविक रूप में आधुनिक प्रगतिशील विचारों से प्रभावित था । मेहरबानों एक रूढ़िवादी सामान्य परिवार से आयी छोटी-सी लड़की थी, जो इस सुखी परिवार में स्वयं को अनपढ़ महसूस करती और दुःख से भर जाती । मेहरबानों के अनेक प्रयासों के बाद भी राही ने किसी की भी बात नहीं मानी और बात तलाक तब पहुँच गई । जब तलाक की समस्या खड़ी हुई, तो राहीने खुल्लेआम कह दिया कि तलाक पिताजी देंगे, क्योंकि शादी अब्बाने तय की थी और तलाकनामे पर पिताजी को ही हस्ताक्षर करने पड़े । इसका मेहरबानों के दिल पर गहरा असर पड़ा और आत्मनिर्भर होने का निश्चय करके कश्मीर महाविद्यालय से पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की ।

डॉ. राही की दूसरी पत्नी का नाम नय्यर था, जो बहुत ही सुंदर थी। नय्यर के पहले पति का नाम कर्नल युसुफ खाँ था। नय्यर के साथ राही का प्रेम विवाह हुआ था। इसी प्रेम विवाह को लेकर लोगों में काफी विवाद हुआ, इसी विवाद में बड़े लोग भी शामिल थे। उनकी पत्नी नय्यर के पहले पति के तीन पुत्र थे। राही से एक पुत्री हुई थी, जिनका नाम मरयम था। राही मरयम को खूब प्यार करते थे। मरयम का पति अमेरिका में डाक्टर हैं। राही के बेटे का नाम नदीम था, जिनका विवाह हिन्दू ब्राह्मण लड़की के साथ किया गया था, उनका नाम था पार्वती। इसी कारण हिन्दुओं ने यह आवाज उठाई कि इस नाम से हमारे देवी-देवताओं का अपमान होगा, इसलिए नाम बदल दिया जाय और बाद में पार्वती से पार्वतीखान रखा गया, जो पौप सिंगर है और नदीमखान अच्छे केमरामेन हैं। इस तरह राही का परिवार व्यापक था।

### ➤ शिक्षा दीक्षा :

डॉ. राही की शिक्षा गाजीपुर के सिया मुसलमानों की परंपरा के अनुसार राजकीय विद्यालय में हुई। वास्तव में राही की प्रारंभिक शिक्षा घर पर प्रारंभ हुई थी। मुन्नवर राही के पहले गुरु थे, जिनसे उन्होंने कुरान की शिक्षा प्राप्त की।

राही सन् १९३५ में बीमार पड़े और १९४० में कुछ ठीक हुए तो किसी तरह स्कूल जाना शुरू किया। बीमारी के कारण उनकी उम्र बढ़ गई थी, इसलिए इनका एडमीशन सीधे सातवीं कक्षा में कराया गया था। डॉ. राही को बीमारी केवल शरीर पर थी, दिमाग पर नहीं, इसलिए उनका मन पढ़ने में खूब लगता था। राही के परिवार में लोग पढ़े लिखे होने के कारण उनको पहले से ही ऐसा वातावरण मिला था और घर पर किताबों की कमी न थी। हाइस्कूल की परीक्षा देने से पहले ही ये फिर बीमार पड़ गये। इनके पीछे पढ़नेवाले लोग इनसे आगे निकल गये, लेकिन राही हिम्मत नहीं हारे। बिस्तर



पर पड़े-पड़े ही पढ़ते रहते थे । डॉ. राही ने यु. पी. बोर्ड इलाहाबाद से हाइस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की ।

डॉ. राही बीमार पड़े तब अपने छोटे भाई महेंदी रज़ा पढ़ने में आगे निकलते जा रहे थे, फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी । उन्होंने निश्चय कर लिया कि बीमारी चाहे मेरा कितना भी समय बिगाड़े मैं अपनी पढ़ाई पूरी करके ही रहूँगा । राही ने बिस्तर पर पड़े-पड़े ही बिना किसी शिक्षक के अपना कोर्ष तैयार कर लिया । अस्पताल से ठीक होकर घर आये तो इंटरमीडियेट की परीक्षा दे दी । इसी समय आदीबे कातिल की भी परीक्षा दे डाली । इससे यह फायदा हुआ कि इसी परीक्षा के कारण सीधे बी.ए. में एडमिशन मिल गया और देखते देखते उन्होंने बी.ए. पास कर लिया । बी.ए. पास करने के बाद उनका हौसला अधिक बढ़ गया और अपने छोटे भाई के लेक्चरर होने के बाद ही अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी से एम.ए. कर सके । बाद में “उर्दू साहित्य का भारतीय व्यक्तित्व” विषय पर शोध प्रबंध लिखकर १९६४ में पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की ।

#### ➤ व्यवसाय :

डॉ. राही मासूम रज़ा ने दशवी परीक्षा पास करके कुछ करना चाहा और उनको यु.पी. युनियन बैंक में नौकरी मिल गई, किन्तु यह नौकरी अपने पिता के दोस्त जो उस बैंक में ब्रान्च मैनेजर थे, जिनकी सहायता से मिली थी । किन्तु राही को इस नौकरी से संतोष न था । एक ओर उनको बीमारी पीछा न छोड़ती थी । इसके कारण उनकी नौकरी भी छूट गई और पढ़ना भी छूट गया । डॉ. राही ने सन १९४५ में पहली बार कविता लिखना शुरू किया । राही ने अपनी पहली रचना में अपने चाचा का शब्दचित्र लिखा है । शेर महम्मद को यह रचना बहुत अच्छी लगी और अपने पत्र ‘नफिसियात’ में जगह दी, जिससे राही को बहुत प्रोत्साहन मिला । इसके कारण राही की

पहचान बनने लगी इससे राही को उस जमाने में सत्तर रुपये की बड़ी आय हुई ।

राही की मुसीबत भरी जिन्दगी से इनके पिता परेशान थे । राही बेकार बैठे रहे ये इन्हें मंजूर न था । वे चाहते थे कि यह कुछ न कुछ करता रहे, अतः पिता ने गाजीपुर के बुनकरों को इकट्ठा करके कई दुकाने खुलवायी कि इन दुकानों से कपड़े बुनने संबंधित चीजे आसानी और राहत पर मिल सके । पिता के आदेश से राही ने बुनकरों की मदद की और सेल्समेनी में लग गए । सेल्समेन के रूप में एक वर्ष तक खूब मेहनत की, लेकिन उनका मन सेल्समेनी में नहीं लगा ।

अलीगढ़ युनिवर्सिटी में राही का नाम जाना पहचाना होने के कारण वे छात्र युनियन में भी उतने ही मनोयोग से काम करते थे और जल्दी ही हिन्दी-उर्दू विभागों में चर्चित होने लगे । सन् १९५० में हिन्दी-उर्दू का झगड़ा हुआ, जिससे भाषा जगत में खूब खलबली मच गई । इस झगड़े को समझने के लिए कम्युनिष्ट पार्टी ने एक कमीशन नियुक्त किया, इस कमीशन में कृष्ण चंदर, सरदार जाफरी के साथ राही मासूम रज़ा का नाम था । तब उनके पास बी.ए. और एम.ए. की डिग्री नहीं थी । राही ने पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त करने के बाद अलीगढ़ युनिवर्सिटी में अध्यापन कार्य से अपनी जीविका उपार्जन की शुरुआत की । कुछ वर्षों तक उर्दू साहित्य पढ़ाते रहे, लेकिन उनकी यह खुशी ज्यादा दिन तक न टिक सकी, क्योंकि धार्मिक कट्टरवादी युनिवर्सिटी होने के कारण उन्हें युनिवर्सिटी की नौकरी से निकाल दिया गया । डॉ. राही को पढ़ाने का काम बहुत प्रिय था, इसलिए ओल इंडिया रेडियो स्टेशन के डायरेक्टर जनरलश्री लूथरा साहब के बार-बार बुलाने पर भी वे नहीं गये । वे किसी तरह बंधन में नहीं रहना चाहते थे और अंत में फिल्मों के लिए कथा लिखना शुरू किया और बम्बई आ गये । राही साहब अलीगढ़ की नौकरी छोड़ने के बाद बम्बई आने का कारण बताते हैं - “मैं एक बार

भी किसी के पास काम माँगने नहीं गया । मैं तो ‘मुशायरा’ नाम की फिल्म लिखने बुलाया गया था और इस रास्ते का राही बन बैठा ।”<sup>४</sup> इस तरह डॉ. राही ने अपने जीवन में अंत तक फिल्म इंडस्ट्री को अपने व्यवसाय के तौर पर अपनाया ।

### ➤ जीवन संघर्ष :

डॉ. राही का समूचा जीवन संघर्षमय रहा हैं । राही का बचपन बीमारियों में बीता । राही को बचपन से ही बीमारियों ने ग्रस्त कर लिया था । राही जब चौथी कक्षा में पढ़ते थे, तभी उनके जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई । राही अचानक लंगड़ाते हुए चलने लगे, राही की ऐसी दशा देखकर घरवाले सब चिंता में डूब गये और डाक्टरी जाँच करवाई । डाक्टरी जाँच से पता चला कि उन्हें हड्डियों की टी.बी. हो गई थी । बोन टी.बी. होने के कारण उन्हें उठने बैठने में कठिनाइयाँ होती थी । उन दिनों में टी.बी. की बीमारी लाइलाज मानी जाती थी । अतः उन्हें बचपन के पाँच साल चारपाई पर ही बिताने पड़े । डॉ. राही सन् १९३५ से १९४० तक बीमार रहे, बाद में स्कूल जाना शुरू किया, किन्तु बीमारी के कारण उनकी उम्र बढ़ गई थी । राही बीमारी के कारण बिस्तर पर पड़े-पड़े पढ़ते रहे और प्राइवेट हाइस्कूल की परीक्षा पास कर ली । डॉ. राही को यु.पी. युनियन बैंक में नौकरी मिल गई, लेकिन बोन टी.बी. की बीमारी के कारण उनकी हालत बिगड़ने लगी, इसके कारण उनको नौकरी छोड़ देनी पड़ी । डॉ. राही को दूसरी बार टी.बी. का आक्रमण फेफड़े पर था, उनका स्वास्थ्य बिल्कुल बिगड़ने लगा था । इस बार इलाज के लिए उन्हें भवानी सेनेटोरियम में लाया गया । वहाँ कई वर्षों तक इलाज चलता रहा । दशवी परीक्षा पास करने के बाद राही को टी.बी. का तीसरा हमला हुआ, इस बार इलाज के लिए कश्मीर भेजा गया । तीन साल तक इलाज होता रहा, किन्तु राही धुन के पक्के थे । उन्होंने निश्चय कर लिया था कि बीमारी चाहे मेरा कितना भी समय बिगाड़े मैं

हार माननेवाला नहीं हूँ । वे बिस्तर पर पड़े-पड़े किताबें पढ़ते रहे और बी.ए. में एडमिशन लिया ।

राही का विवाह मेहरबानों से होने पर उनका जीवन अत्यंत संघर्षमय बन गया, क्योंकि राही का सारा परिवार प्रगतिशील विचारों से प्रभावित था, जबकि मेहरबानों रूढ़िवादी सामान्य परिवार की लड़की थी । इसी कारण बात तलाक तक पहुँच गई । लेकिन राही को इस घटना से कोई पछतावा नहीं था । वे इसी तरह रहा करते थे, जैसे उनके जीवन में कुछ घटित न हुआ हो । अलीगढ़ युनिवर्सिटी में अध्यापन कार्य करते समय एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई, जिससे राही के जीवन को अलग प्रकार से मोड़ दिया । राही के जीवन में नय्यर का आगमन हुआ । नय्यर के साथ राही का विवाह होने से राही के जीवन में खुशियाँ आ गयी थी, लेकिन बचपन से ही सुख दुःख के साथ निरंतर आँख मिचौली खेलनेवाले राही मासूम रज़ा की किस्मत को ढेर सारी खुशियाँ मिले ऐसा कब संभव था । नय्यर से विवाह करने से अलीगढ़ युनिवर्सिटी और साहित्य जगत में एक तूफान सा आ गया । मुस्लिम कट्टरपंथी और उनके विरोधी उन्हें भला बुरा कहते हुए आरोप करने लगे और उनके पुराने दुश्मनोंने इस अवसर का लाभ उठाकर उन्हें बदनाम और जलील किया । अतः राही अलीगढ़ छोड़ने के लिए मजबूर हो गए । जिन्दगी की गाड़ी आगे चलाने के लिए कुछ करना था । स्वाभिमानी राही के लिए अब अलीगढ़ रहना असंभव था, किन्तु उर्दू के लिए सारी दुनिया में सबसे बेहतरीन विभाग है अलीगढ़ युनिवर्सिटी । राही को अलीगढ़ छोड़ने का गम सारी जिन्दगी रहा, क्योंकि अलीगढ़ ने उन्हें बहुत कुछ दिया था ।

अलीगढ़ को छोड़कर राही अपने भाग्य को आजमाने के लिए बम्बई आ गये । बम्बई के जीवन ने राही को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया । अब राही के सामने उनकी जिन्दगी एक कड़ी चुनौती के रूप में थी । उनके पास जेब में थी कलम और दोस्तों का प्यार, जिनके भरोसे वे बम्बई की ओर आगे

बढ़े । बम्बई में उनके साहित्यिक मित्रों के माध्यम से वे फिल्मकारों से परिचित हुए और कुछ फिल्में मिली । राही फिल्मों में आना एक संयोग ही मानते हैं । क्योंकि अलीगढ़ युनिवर्सिटी में पढ़ा लेने के बाद दूसरी नौकरियों में बंधन महसूस होता था । इसी कारण फिल्म कथा लेखन चुना । इस संबंध में वे बताते हैं कि “फिल्मों के बारे में तो पहले मैंने सोचा भी नहीं था । इतफाकन मेरी नौकरी चली गई, ऑल इंडिया रेडियो से नौकरी का ओफर मिला, वह भी मैंने छोड़ दिया । इसलिए छोड़ दिया कि मैं बंधन नहीं चाहता था, बंधन में क्यों जीना तुम्हीं बताओं ?”<sup>५</sup> फिल्मी जगत में पहुँचकर राही ने कई फिल्मों के संवाद लेखन, पटकथा एवं गीत लिखे । इसी समय डॉ. राही को भारतीय संस्कृति का महान ग्रंथ ‘महाभारत’ के आधार पर महाभारत नामक टी.वी. धारावाहिक का निर्माण कर रहे डॉ. चौपरा ने राही को इस धारावाहिक के संवाद लिखने का कार्य सौंपा । इस कार्य से राही को ख्याति प्राप्त हुई, किन्तु इस बात की बहुत बड़ी किमत उन्हें चुकानी पड़ी । राही मासूम रज़ा मुसलमान थे, जो हिन्दू के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ पर आधारित कथा लेखन कर रहे थे । इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों ने विरोध किया । मुसलमान यह कहते थे कि मुसलमान होकर महाभारत लिख रहा है, क्या राही हिन्दू हो गया हैं ? हिन्दुओं ने भी विरोध करते हुए कहा हैं कि मुसलमान होकर हिन्दू ग्रंथ के बारे में क्या लिखेगा ? उसे हमारे धर्म, संस्कृति, सभ्यता और इतिहास की क्या समझ है ? आप हमारा अपमान कर रहे हैं । किन्तु राही ने महाभारत धारावाहिक के संवाद लिखकर सबकी जुबान बंध कर दी ।

डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में ‘आधा गाँव’ श्रेष्ठ उपन्यास रहा हैं । ‘आधा गाँव’ उपन्यास की प्रसिद्धि के कारण उसको साहित्य अकादमी के पुरस्कार के लिए स्पर्धा में रखा गया था । ‘आधा गाँव’ के साथ-साथ ‘राग दरबारी’ भी स्पर्धा में था । ज्युरी में दो सदस्य ‘आधा गाँव’ के पक्ष में और एक ही ‘राग दरबारी’ के पक्ष में था । फिर भी अंत में बाजी ‘राग दरबारी’

ने जीत ली । राही को जब पूरी कहानी मालूम हुई तो उन्होंने लिखा है कि “मैंने किसी पुरस्कार के लिए उपन्यास नहीं लिखा यदि मिल जाता, तो कोई बात नहीं, नहीं मिला तो उसके लिए मुझे अफसोस नहीं है । सुना है यार प्रेमचंद, मुक्तिबोध और निराला को भी कोई पुरस्कार नहीं मिला था ।”<sup>६</sup> डॉ. राही के साथ ऐसी घटनाएँ खत्म होने का नाम ही नहीं लेती थी । एक के बाद एक ऐसी घटनाएँ उनके साथ घटती रहती है । सन् १९७२ में जोधपुर के पाठ्यक्रम से ‘आधा गाँव’ को अश्लील कहकर निकाल दिया । ऐसा ही मराठावाडा विश्वविद्यालय औरंगाबाद में भी ‘आधा गाँव’ के साथ हुआ । वहाँ एम.ए. के पाठ्यक्रम से निकाल दिया गया, इसका कारण उसकी कथावस्तु की अश्लीलता बताया गया । वास्तव में इसलिए निकाल दिया गया क्योंकि इसमें धर्म, राजनीति आदि पर करारा व्यंग्य हैं । राही के समूचे जीवन में संघर्ष देखने को मिलता है ।

### ➤ अंतिम समय :

डॉ. राही बचपन से ही बीमारी के शिकार रहे थे । बचपन में ही उनको हड्डियों का टी.बी. ‘बोन टी.बी.’ हो गया था । डॉ. राही पर टी.बी. का तीन बार हमला हुआ । राही जीवन के अंतिम समय तक यही स्वप्न देखते रहे कि पारिवारिक जिम्मेदारी से छुटकारा पाते ही अलीगढ़ पहुँचकर साहित्य सर्जन में लग जायेंगे । किन्तु राही के जीते जी यह इच्छा पूरी न हो सकी । डॉ. राही का स्वास्थ्य दिसम्बर १९६१ में अधिक खराब हो गया । मेडिकल चेक-अप से पता चला कि उन्हें जबड़े का कैंसर हुआ है । अतः उन्हें बम्बई में हिन्दुजा अस्पताल में भर्ती कराया गया और उनका ओपरेशन भी हुआ । बाद में राही को इलाज के लिए अमरिका ले जाया गया, किन्तु स्वास्थ्य में कोई लाभ न हुआ और फिर भारत लौट आये ।

राही गंगा को अपनी माँ समझते थे, उन्होंने वसीयत की थी कि “मुझे गंगा की गोद में सुला देना । वो मेरी माँ है, वह मेरे बदन का जहर पी

लेगी । अगर शायद वतन से इतनी दूर मौत आये, जहाँ से मुझको गाजीपुर ले जाना नामुमकिन हो तो फिर मुझको अगर उस शहर में छोटी सी नदी भी बहती हो तो उसकी गोद में सुलाकर उसे कह देना कि गंगा का बेटा आज तेरे हवाले हैं ।”<sup>७</sup> राही को कैंसर की बीमारी पूरे गले में फैल गई थी । सात फरवरी को तबीयत खराब होती चली और १५ मार्च १९६२ के दिन डॉ. राही ने इस दुनिया से सदा-सदा के लिए बिदाई ले ली । सारे फिल्म जगत में राही की मृत्यु से उदासी छा गई । १६ मार्च १९६२ की शाम को उनका अंतिम संस्कार किया गया । उनके अंतिम संस्कार में भारत के कौने-कौने से लोग आ गए । गाजीपुर में राही के अवसान से तीन दिन तक शोक रखा गया । गाजीपुर के लोगों ने डॉ. राही की याद में एक सड़क बनवाई, जिसका नाम ‘राही मासूम रज़ा रोड़’ रखा गया । डॉ. राही के परम मित्र बलदेव मिर्जा ने उनकी मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हुए लिखा है कि “मैं १५ मार्च १९६२ को अपनी जिन्दगी का बुरा दिन मानता हूँ और उस दिन उपरवाले ने मुझसे मेरा मुक्कमल हिन्दुस्तान छीन लिया ।”<sup>८</sup> डॉ. राही अपने अंतिम समय तक संघर्ष करते रहे ।

#### ❖ डॉ. राही का व्यक्तित्व :

साहित्यकार का व्यक्तित्व ही उसकी रचनाओं में किसी न किसी रूप में व्यक्त होता है । व्यक्तित्व जिसे अंग्रेजी में 'Personality' कहा जाता है । व्यक्ति का बाह्य स्वरूप ही 'Personality' कहा जाता है । आंतरिक व्यक्तित्व उसकी रचनाओं में विशिष्टता प्रदान करता है । व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि “व्यक्तित्व का गुण या भाव अथवा वे विशेष गुण जिनके द्वारा किसी व्यक्ति की स्पष्ट और स्वतंत्र सत्ता सूचित होती है ।”<sup>९</sup> व्यक्तित्व में बाह्यतत्त्व और आंतरिकता का परम्पराश्रित संबंध होता है । लेकिन व्यक्तित्व में आंतरिकता महत्वपूर्ण होती है । बाह्यतत्त्व व्यक्तित्व की दृष्टि से गौण होते हैं, इसे स्पष्ट करते हुए डॉ. आशा अग्रवाल ने कहा है कि “बाह्य लक्षण ही

व्यक्तित्व नहीं होते इसलिए वे आंशिक रूप से ही सत्य माने जा सकते हैं।<sup>१०</sup> इस तरह व्यक्तित्व के दो रूप होते हैं (१) बाह्य व्यक्तित्व (२) आंतरिक व्यक्तित्व। इन दोनों रूपों के माध्यम से हम डॉ. राही के व्यक्तित्व को जानने का प्रयास करेंगे।

♦ **बाह्य व्यक्तित्व :**

बाह्य व्यक्तित्व व्यक्तित्व का एक पक्ष है। व्यक्तित्व का संबंध केवल आंतरिक व्यक्तित्व या गुणों से न होकर बाह्य आचरण से भी होता है। प्रतिक्रिया स्वरूप साहित्यकार के व्यक्तित्व के लिए बाह्य व्यक्तित्व से संलग्न तथ्यों का अध्ययन करना आवश्यक होगा। संभवतः साहित्यकार के बाह्य व्यक्तित्व में शारीरिक सुगठन, वेशभूषा, शोख, रहन-सहन आदि के साथ उनसे संबंधित व्यक्तियों का प्रभाव भी रहेगा। यहाँ पर उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर डॉ. राही मासूम रज़ा के व्यक्तित्व को देखने का प्रयास करेंगे।

➤ **वेशभूषा :**

डॉ. राही मासूम रज़ा का बचपन सुखी और संपन्न परिवार में बिता था। अतः राही बचपन से ही शोकीन मिजाज के थे। वे लखनवी शेरवानी का कुर्ता पहनते थे, उनके हाथ में कभी मलमल का तो कभी रेशम का कढ़ा कपड़े का बटुआँ रहता था। साथ ही चाँदी की पान की डिबियाँ और माल मसाले से लेस भूपाली बटुआँ साथ रखते थे। राही टी.बी. जैसी भयानक बीमारी का शिकार होने पर भी सिगारेट बहुत पीते थे। वे जब शेरवानी पहनते तब शेरवानी के उपर के बटन खूले रखते, ताकि भीतर पहने हुए मलमल के कुरते का बारीक पतियोंवाला अलीगढ़ी काम दिखाई दे। शेरवानी के खुले बटन और बेफिक्री के कारण वे दूर से ही पहचाने जाते थे।

➤ **शोख :**

डॉ. राही को बचपन से ही कहानियाँ सुनने का शोख था। राही जब छोटे थे, तब उनकी दादी जीवित थी। उन्होंने राही का मन बहलाने के लिए



अपने मायके से कल्लुकाका को बुलाया था । कल्लुकाका कुबड़े थे । कल्लुकाका राही को कहानी सुनाते थे और सुनते-सुनते राही को कहानियाँ पढ़ने का चस्का लग गया । राही को पतंग उड़ाने का भी शौख था, कल्लुकाका के हाथ में चरखी होती थी । घूड़सवारी करना, क्रिकेट खेलना, घर में भाई-बहनों को चिढ़ाकर छेड़ना और परेशान करना राही के अतिरिक्त शौख रहे थे । वह बचपन से ही पढ़ने में खूब तेज थे, इसलिए उनको किताबे पढ़ने का भी शौख था । उनका घर समृद्ध होने के कारण घर में कई सारी किताबे थी । इसलिए राही का यह शौख भी पूरा हो सका । पढ़ने के साथ-साथ राही को राजनीति में भी दिलचस्पी थी ।

डॉ. राही का साहित्यिक मित्र परिवार काफी बड़ा था । वे दोस्ती पसंद इन्सान थे । दोस्तों की टोलियाँ में गपशप करना, किसी विषय पर काफ़े हाऊस पर चाय की चुस्किया लेते चर्चा करना उसे पसंद था । राही के बचपन के दोस्तों में लालू और लड्डन का विशेष स्थान था । इसमें से लालू राही का आत्मीय मित्र था । इन दोनों को साथ लेकर मासूम अक्सर सिनेमा देखने जाते थे, सिनेमा घर में पहले से ही उनके लिए खास व्यवस्था की जाती थी । मासूम जब सिनेमा देखने जाते उनके साथ दोस्तों की एक टोली हुआ करती । फिल्म देखने जाने का भी एक खास अंदाज हुआ करता । नौकर के द्वारा पहले से ही सिनेमा होल में व्यवस्था कर दी जाती । सबके टिकट मासूम ही खरीदते । घर में राही की सब इच्छाएँ पूरी होती थी, इस तरह राही कुछ जिद्दी स्वभाव के भी हो गये थे ।

राही को अपने गाँव के प्रति बड़ा प्रेम था । वह मोहर्रम के दिनों गंगोली आया करते थे, उनको मोहर्रम का त्यौहार अति प्रिय था । इसलिए अपने परिवार के साथ मोहर्रम के त्यौहार में शरीफ होने के लिए बड़ी लगन के साथ नौहो की रचना करते । वे इमाम हुसेन को अपनी आस्था का प्रतीक मानते थे । राही को कहानियाँ सुनने या लिखने का शौख होने के कारण

उन्होंने अंत में फिल्म लिखने का कार्य किया और कई सारी फिल्मों में उन्होंने संवाद लेखन का कार्य किया ।

➤ **बाहरी स्वरूप :**

डॉ. राही का बाहरी व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था । उनके चेहरे का सुंदरसा गेहूँ रंग सबको आकर्षित करनेवाला था । राही का बाहरी स्वरूप सुंदर था । राही की सुंदरता, बतियाती आँखें और बोलते समय ओठों को दबाकर गोल हो जानेवाले होठ मानों दूधियाँ बचपन उनके बीच टिका है । उनके सिर के बालों का बेतरतीब बेफिक्र बिखरे हुए बाल झकाझक सफेद बालों को देखने से उनके भीतर का खुलापन दिखाई देता है । इस तरह राही का बाहरी स्वरूप अत्यंत प्रभावशाली था ।

♦ **आंतरिक व्यक्तित्व :**

आंतरिक व्यक्तित्व के अंतर्गत स्वभाव, संस्कार, नीड़रता आदि गुणों का विवरण किया जाता है ।

➤ **स्वभाव :**

डॉ. राही को बचपन से ही बीमारियों ने ग्रस्त कर लिया था, इसलिए उन्होंने बचपन का समय चारपाई में पड़े रहते ही बिताया था । इसी कारण राही के मनमें उदासी छा गई थी । राही सारा दिन उदास रहा करते थे । उनकी उदासी दूर करने के लिए कल्लूकाका उनको कहानियाँ सुनाते थे । जब डॉ. राही की शादी महेरबानो से होती है, तब राही के स्वभाव में अचानक परिवर्तन आ जाता है । उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है, उनमें एक प्रकार की मानसिक विकृति आ जाती है । परिणाम यह हुआ कि जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण बदल गया । इन घटनाओं से राही के स्वभाव में कुछ विद्रोही प्रवृत्तियाँ पनप रही हो – ऐसा लगता था ।

राही के स्वभाव में धैर्य और गंभीरता जैसे गुण भी देखने को मिलते हैं । राही के मतानुसार मानवता से बढ़कर उनके लिए कोई धर्म नहीं है ।

इन्सान की इन्सानियत पर उनकी दृढ़ श्रद्धा थी, अतः धर्मनिरपेक्षता और मानवीयता उनके साहित्य की बुनियाद हैं ।

➤ **संस्कार :**

डॉ. राही का जन्म एक सुखी और संपन्न परिवार में हुआ था । बचपन से ही माता-पिता एवं परिवार द्वारा उनमें संस्कारों का सिंचन हुआ था । घर में डॉ. राही को धार्मिक एवं सामाजिक वातावरण मिला था । परिवार के साथ-साथ शिक्षा-दीक्षा ने उनके जीवन में संस्कार के बीज बोये । वे धर्म में श्रद्धा रखनेवालों में से थे, उनको कुरान शरीफ में श्रद्धा थी, किन्तु धर्म की रूढ़ियाँ एवं खोखलेपन से नफरत थी । बचपन से ही विद्रोही स्वभाव उनके व्यक्तित्व की अलग पहचान थी । उनको मनुष्य की मनुष्यता पर ही विश्वास था । वे मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी प्रकार का भेदभाव सहन नहीं कर सकते थे । डॉ. राही में बचपन से ही यह बात दिखाई देती थी कि वे कभी किसी से डरते या किसी से दबकर नहीं रह सकते थे, बल्कि सत्य को और भी ऊँचे स्वर में और तीखे ढंग से कहते थे । अपने इसी गुण के कारण वे यथार्थ रूप में अपनी जमीन से जुड़े इन्सान, कवि और उपन्यासकार थे । उनके लिए मानवता से बढ़कर कोई धर्म नहीं था । इन्सान की इन्सानियत पर उनकी दृढ़ श्रद्धा थी, इसलिए धर्मनिरपेक्षता और मानवता उनके साहित्य की बुनियाद है । वे स्वयं को इस मातृभूमि, भारतीय संस्कृति और भारतीयत्व से कभी अलग नहीं मानते । डॉ. राही स्वयं मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथ महाभारत के आधार पर धारावाहिक 'महाभारत' में संवाद लिखने का कार्य किया था, जो उनके संस्कारों को उच्चकोटी का सिद्ध करते हैं । वे सच्चे अर्थ में अपने आपको हिन्दुस्तानी मानते थे । “वह सच्चा हिन्दुस्तानी था अपने देश, अपने अलीगढ़, अपने गाँव से उन्हें बहुत लगाव था । उसमें एक बड़ी बात यह थी कि यह खुले दिमाग का था और उसी वजह से कभी परंपराओं का वाहक नहीं बना, उसने उन्हीं को स्वीकारा जो

उसे भली लगी । वह धर्म के ठेकेदारों से बेहद परहेज करता था । तरक्की पसंद इन्सान था । पहनता शेरवानी ही था पर बहुत विस्तृत और व्यापक चिंतन से उसका व्यक्तित्व बनता था ।<sup>११</sup> डॉ. राही का हृदय संवेदनशील होते हुए भी उन्होंने समाज के दुर्भाग्य का खुल्लेआम चित्रण किया तथा उनको सहानुभूति की निगाहों से देखने का प्रयास भी किया ।

### ➤ नीड़रता :

राही में बचपन से ही एक विशेष बात दिखाई देती थी, वह है नीड़रता । वे कभी किसी से डरते या किसी से दबकर नहीं रह सकते थे । राही के व्यक्तित्व के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं निर्भिकता और वैचारिक स्पष्टता । इसी स्पष्टता और नीड़रता को अपनी साहित्यिक कलाकृतियों में अभिव्यक्त करने का साहस राही ने किया है । उनका यह साहस उनकी साहित्यिक कृतियाँ, फिल्मी संवाद, भाषा आदि से संबंधित विचारों से स्पष्ट होता है । उन्होंने साहित्य के माध्यम से धर्म और राजनीति का खुलकर मजाक उड़ाया है । राही ने अपने जीवन में कंप्रोमाइज करना सीखा ही न था । समझौता करनेवाली उनकी शिखिसयत नहीं थी, उन्होंने किसी से भी लड़ाई करते वक्त यह नहीं देखा कि वह कितना ताकतवर आदमी है । उन्होंने हमेशा यह देखा कि वो खुद सही है और अच्छाई का रास्ता है या नहीं । जब उन्हें अपने आप पर यकीन हो जाता कि वह जो भी कर रहे हैं वह सही है तब बड़े आदमी के सामने भी नहीं झुकते थे । उनके व्यक्तित्व में बगावत का जुनून बचपन से ही समाया हुआ था । उन्हें किसी दूसरे के पीछे चलना पसंद न था, बल्कि अपना रास्ता स्वयं बनाने की हिम्मत उनमें थी । उन्हें जो भी कहना हो वह खुलेआम कहते थे । सख्त से सख्त और कड़वी बात करने की हिम्मत उनमें थी । वे किसी के सामने सिर झुकानेवाले में से नहीं थे । राही ने अपने युग की विषमता तथा अनैतिक तत्वों को देखकर मुँह नहीं मोड़ा, बल्कि उन सामाजिक विषमताओं को बदल डालने के लिए खुलकर कठोर से

कठोर प्रहार करना भी अपना परम कर्तव्य समझा। डॉ. राही की पत्नी नय्यर ने भी कई बार राही को समझाने का प्रयत्न किया था कि “लोग कहते थे कि लेख या पत्र या पत्रिकाओं में उनके कोलम बहुत हार्ड हिटिंग होते हैं, मैं कभी-कभी कहती भी थी कि इतना तीखा और सख्त मत लिखो। सबको दुश्मन बना लेते हो। लेकिन उन्होंने हमेशा अपनी तरह से अपनी पसंद का लिखा। वे मुझसे कहते थे कि लिखने के मामले में तुम मेरे काम में दखल मत दो।”<sup>१२</sup> डॉ. राही बागी साहित्यकार थे, उन्होंने साहित्य में धर्म, राजनीति, सामाजिक कुरीतियाँ, सांप्रदायिकता आदि के विरोध में अपनी लेखनी चलाई हैं।

#### ❖ डॉ. राही के व्यक्तित्व की विशेषताएँ :

प्रत्येक व्यक्ति की कुछ विशेषताएँ होती हैं। साहित्यकार की भी अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। अपनी इन विशेषताओं के कारण वह अन्य व्यक्ति की तुलना में विशेष दिखाई देता है। डॉ. राही भी ऐसे ही साहित्यकार हैं। डॉ. राही के व्यक्तित्व की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

#### ➤ समाजसुधारक राही :

हिन्दी साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर काल के जिन उपन्यासकारों का नाम लिया जाता है, उनमें से एक हैं डॉ. राही मासूम रज़ा। अंग्रेजों के शासनकाल में भारतीय जनता परेशान थी, अंग्रेजों की ‘फूट डालो और राज करो’ नीति से भारतीय जनता कई वर्गों में विभाजित हो गई थी। ऐसी परिस्थिति में समाज में सुधार लाना आवश्यक था। डॉ. राही समाज की ऐसी दयनीय स्थिति देखकर व्याकुल हो उठे। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में जागरूकता लाने का कार्य किया। समाजसुधारक का जो कार्य कबीरजी ने किया वह कार्य डॉ. राही ने किया है, इसलिए डॉ. राही मासूम रज़ा को आधुनिक युग का कबीर कहा जाता है।

हिन्दू मुसलमान दोनों के बीच में हो रहे भेदभाव को मिटाने का काम कबीर के बाद किसी ने किया है तो वह है डॉ. राही । राही ने जो भी कहा वह डंके की चोट पर कहा हैं । राही का परिवार एक कट्टर शियापंथी होने के बावजूद घर के सदस्य प्रगतिशील विचारों के थे । राही धार्मिक कर्मकांड, रोजे, नमाज आदि को दिल से पढ़ते, किन्तु समाज के इस खोखले रूढ़ि, प्रथाओं से राही का मन बैचेन रहता था । राही को धर्म के प्रति लगाव था किन्तु धर्म के साथ जुड़ी खोखली प्रथा – परंपरा के साथ नहीं । डॉ. राही को धर्म से अधिक इन्सान की इन्सानियत पर विश्वास था । वे किसी प्रकार के भेदभाव में नहीं मानते थे, इसलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में आपसी संघर्ष, आपसी संबंध, रहन-सहन, अंधविश्वास आदि का खुलकर वर्णन किया हैं ।

डॉ. राही एक भारतीय होने के नाते गर्व महसूस करते थे । भारतीयता या धर्मनिरपेक्षता पर यदि कहीं चर्चा चल पड़ी तो राही के तेवर आक्रमक हो जाते हैं । वह अपनी बात से सामनेवालों को चूप करा देते हैं । डॉ. राही ने स्वयं को इस मातृभूमि, भारतीय संस्कृति और भारतीयत्व से कभी अलग नहीं माना । उन्होंने समाज में फैली हुई जड़ रूढ़ियों का विरोध करके उसे समूल उखाड़ फेंकने का कार्य किया । जाति-प्रथा, पर्दा प्रथा, स्त्री प्रताड़ना जैसी रूढ़ियों को समाप्त करने हेतु वे स्वयं आगे आये हैं । क्योंकि ऐसा किये बिना स्वस्थ एवं प्रगतिशील समाज का निर्माण करना असंभव हैं । राही ने अपने समय में समाज में फैले अनेक अंधविश्वास और बाह्याचार, हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य, शिक्षा का अभाव, कुरुतियों में जकड़ी भारत की अधिकांश ग्रामवासिनी जनता आदि का वर्णन अपने उपन्यासों में किया हैं । सांप्रदायिकता के विचार से राही हमेशा चिंतित रहते थे । देश की जनता मूल समस्याओं में झूल रही हैं, पचास प्रतिशत लोग अशिक्षित है । लोगों को स्वास्थ्य सेवाएँ भी उपलब्ध नहीं है, फिर भी जनता धर्म के नाम पर मंदिर – मस्जिद के झगड़े से बाहर निकलने का नाम नहीं लेती । ऐसी परिस्थिति में डॉ. राही का मन व्याकुल हो

उठता हैं । ऐसी परिस्थिति में राही ने श्रीराम और अल्लामियाँ से अपील करते हुए कहा है कि “मैं श्रीराम और अल्लामियाँ दोनों से अपील करता हूँ कि वापसी डाक से विश्व हिन्दू परिषद और सैयद शहाबुद्दीन एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड को तार द्वारा सूचना दे कि उनके पास मंदिर, मस्जिद जरूरत से ज्यादा हैं । इसलिए जहाँ श्रीराम जन्मभूमि मंदिर और बाबरी मस्जिद है, वहाँ इस मंदिर और मस्जिद को गिराकर बच्चों के लिए एक पार्क बना दिया जाय, क्योंकि फूलों के बीच खेलते हुए बच्चों से ज्यादा खूबसूरत कोई दृश्य हो ही नहीं सकता ।”<sup>१३</sup>

राही को इस बात का दुःख है कि आज धर्मनिरपेक्षता, देशभक्ति, भावात्मक एकता और राष्ट्रीयता केवल नारे बनकर रह गये हैं । जिस हिन्दुस्तान की उन्नति, विकास और प्राचीन सभ्यता और संस्कृति की जोर-शोर से चर्चा हो रही है, वह हिन्दुस्तान कहां है ? वह तो धीरे-धीरे दिन-प्रतिदिन छोटा होता जा रहा है । इसलिए हिन्दुस्तान को बचाने की आज सबसे बड़ी जरूरत है । राही ने प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने का काम किया है । इसलिए प्रेमचंद के संबंध में यही कहा जाता है कि कबीर के बाद शायद सेक्युलर मानसिकता के हिन्दी के वे पहले और सबसे बड़े कथाकार रहे हैं । सवाल है जिसे हम सेक्युलरिज्म कहते हैं, वह आखिर है क्या ? सेक्युलरिज्म को आज हर तरह के लोग, हर मानसिकता के लोग रामधुन की तरह गा रहे हैं । सेक्युलरिज्म के लिए धर्मनिरपेक्षता शब्द अरसे से सामान्य हो गया है । सेक्युलरिज्म आदमी को सिर्फ आदमी के रूप में देखने और पहचानने की मानसिकता है । वर्ग, वर्ण, धर्म, नस्ल, संप्रदाय से परे आदमी को महज उसकी आदमीयत के नाते देखना । यह वह मानसिकता है, जिसमें महत्त्व अपनी आदमीयत के बजूद के चलते जाता है । इसी मनोभूमि से कभी कबीर ने अपने समय के आदमी को देखा और उसे दूसरे रूपों में देखनेवाली मनोभूमि से जुड़े लोगों को लताड़ा था, उन पर प्रहार किया था ।

राही प्रेमचंद और कबीर की परंपरा के उनकी मानसिकता के वारिस रचनाकार है । डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में ऐसी अनेक भूमिका निभाई है जो हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्म और मजहब के उन्माद से अपनी आदमीयत के साथ हमें मिलते हैं और निजी जिंदगी में भी जो अपने मानवीय चेहरे के साथ अपनी पहचान बनाते हैं, उनके लिए धर्म या मजहब दाढ़ी या चोटी नहीं है, मेहनत और हक की कमाई पर जीना ही जीने का नाम है । राही की मनोभूमि एकदम पारदर्शी है, उसमें कहीं कालिख नहीं है, न छल और न छदम है, राही की यह बैचेनी कबीर की बैचेनी है । राही कबीर की तरह रात-रात भर जागते हुए और रोते हुए जिए ।

डॉ. राही अपने समय में अकेले रहे, राही का समय बदला हुआ था । उनकी बैचेनी और उदासी का साथ देनेवाले लोग राही के साथ थे । परंतु भीतर से राही कहीं अकेले ही थे । कबीर की मस्ती और अक्खंडता के सात पत्तों के भीतर जैसे दर्द का, मानवीय करुणा का एक समंदर उछाल लेता रहता था । ठीक उसी तरह कि उपरी मुस्कुराहट और धारबाजी की सात पत्तों के भीतर भी दर्द का वैसा ही सैलाब मानवीय करुणा से लबालब भरा, अक्षय स्रोत, उमंगे भरत रहता था । करुणा राही के लेखन का बीजभाव था । राही समाज में दिखाई देनेवाली विसंगतियों, रूढ़ियों और परंपरा में फंसे भोले भाले निच्छल लोगों के प्रति अपनी खीज, झल्लाहट को व्यक्त करते हैं । साथ ही समाज में रहनेवाले धर्म के पाखंडी फरेबियों पर कठोर प्रहार करते हुए व्यंग्य के साथ उनकी विद्रुपता को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते हैं । आज के जमाने में अनेक ऐसी रूढ़ियों ने जड़ जमा रखी है, जिनकी आज के परिवेश में कोई उपयोगिता ही शेष नहीं रह गई है । डॉ. राही का संपूर्ण साहित्य मानवतावादी विचारों से अग्रसर है । इस तरह राही एक सच्चे युगचेता साहित्यकार हैं ।



➤ **धर्मनिरपेक्ष राही :**

डॉ. राही मासूम की धार्मिक भावना सर्वधर्म समभाव पर आधारित धर्मनिरपेक्ष है, वे पूर्ण धर्मनिरपेक्षता के पक्षधर एवं दृष्टा थे। उन्होंने ने किसी भी प्रकार के अंधविश्वास को स्वीकार नहीं किया। मानव की सेवा ही उनकी दृष्टि में सहज धर्म हैं। वे ऐसे किसी भी धर्म का स्वीकार नहीं करते, जो इन्सानियत का खून करके धर्मात्मा बनने का स्वांग रचने की छूट देता है। उनकी दृष्टि में मानवता से बड़ा कोई धर्म नहीं है। राही ने धर्म को हिन्दू – मुसलमान, इसाई के रूप में नहीं देखा, जीवन उनके लिए धर्म रहा। राही अपने समूचे जीवन में कर्ममय रहे, इसलिए राही का जीवन सदा मानवमय रहा है। राही की अथाह श्रद्धा और विश्वास तथा दिलचस्पी मानव में रही हैं। जिसके लिए राही ने सोचा है, उसी के लिए लिखा है और उसके लिए ही सबकुछ किया है। अतः मानव की उच्चता में राही ने देवत्व के दर्शन किए। मानव में देवत्व का सर्जन करना राही के जीवन की साधना रही है।

राही मानवता को ही धर्म का मूल तत्व स्वीकार करते हैं, जो आज के समाज की, राष्ट्र की, विश्व की सबसे बड़ी आवश्यकता हैं। समग्र मानवजाति का हित उनकी धार्मिक भावना का केन्द्रीय बिन्दु रहा है। राही के व्यक्तित्व एवं कृतित्व सभी में धर्म के इसी रूप के दर्शन होते हैं। क्योंकि धर्म के साथ मानवीय जीवन भी जुड़ा होता है। राही ने अपने उपन्यासों में धर्म तथा धार्मिक भावना के संबंध में विचार प्रकट किए हैं। वे मानते हैं कि धर्म की बुनियाद प्रेम है, नफरत नहीं। राही की यही इच्छा रही है, कि हिन्दू – मुसलमान दोनों ही धर्म संप्रदाय की संकुचित प्रवृत्तियों से उपर उठकर बंधुभाव से जीवन यापन करें।

धर्मनिरपेक्षता की बातें करना अलग बात है, परंतु यथार्थ रूप में उस पर अमल करना दूसरी बात है। आज धर्मनिरपेक्षता का बुरखा इतना गहरा हो गया है कि उसे पहननेवाले मनुष्य के असली मुखौटे को पहचान करना

मुश्किल बात हो गई हैं। चाहे यह हमारा अपना जीवन हो या दूसरों का। लेकिन हमारे अंदर सांप्रदायिकता का प्रेत कभी भी जाग सकता है, जो धर्मनिरपेक्षता के उजाले को अंदर घूसने नहीं देता। हिन्दू - मुसलमान आज भी एक दूसरे की ओर डर, नफरत और शक की भावना से देखते हैं। भारतीयों की यह मानसिकता को किस प्रकार परिवर्तित किया जाय यह सोच विचार में राही सदा डूबे रहे हैं।

### ➤ सांप्रदायिकता के विरोधी राही :

डॉ. राही मासूम रज़ा हिन्दी के उन महत्त्वपूर्ण उपन्यासकारों में से हैं जिन्होंने सांप्रदायिकता की समस्या को बहुत गहराई से और जिम्मेदारी से कथा साहित्य में निर्वाह किया है। सांप्रदायिकता के सवाल पर राही के तेवर अधिक तीखे बन जाते हैं। राही एक चिंतनशील व्यक्ति थे। अतः समाज, राजनीति, साहित्य, कला, संस्कृति, धर्म, सभ्यता आदि विषयों पर अपने विचार साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से व्यक्त किये हैं। राही प्रांतीयवाद और क्षेत्रीयवाद से क्षुब्ध होकर मूल समस्या पर ऊंगली निर्देश करते हैं।

सांप्रदायिकता का सबसे बुरा असर समाज के निम्न वर्ग पर होता है। महानगरों में जीविका के लिए कमरतोड़ मेहनत करनेवाले लोग इसका शिकार सबसे ज्यादा होते हैं। सांप्रदायिकता का जहर केवल एक दो आदमियों को प्रभावित नहीं करता, बल्कि यह पूरे समुदाय को अपने प्रभाव से प्रभावित करता है। सांप्रदायिकता हमारे दिलों में झल्लाहट और डर के सिवा कुछ पैदा नहीं कर सकती। सांप्रदायिकता फैलानेवाले लोग यह जानते हैं कि मनुष्य अपने धर्म की निन्दा नहीं सुन सकते, क्योंकि धर्म मनुष्य से बड़ा होता है। राही मासूम रज़ा ने अपना पूरा जीवन सांप्रदायिकता से लड़ने में गुजार दिया। उनका संपूर्ण साहित्य ऐसे उदाहरणों से भरा है, जिनमें उनके चरित्र सांप्रदायिक ताकातों से लड़ रहे हैं। इसी संदर्भ में डॉ. नामवरसिंह के शब्दों

में - “हर हर महादेव का नारा लगाकर हमला बोलनेवालों को इस तरह ललकारना हिम्मत का काम हैं और कबीर के बाद ऐसी हिम्मत मुझे सिर्फ राही में दिखाई पड़ी। राही में यह हिम्मत इसलिए है कि वे इसी तरह ‘अल्लाह हो अकबर’ के नारेबाज जेहादियों को भी चुनौती देते हैं, एकदम कबीर की तरह।”<sup>१४</sup> राही ने सांप्रदायिक उन्माद में लहलुहान होती मानवता का मार्मिक चित्र बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया है। इन्सान के खून की प्यासी धर्मान्धों की हकीकत का खुलासा राही ने किया है। समयचेता राही को अपने आनेवाले कल का आभास था। डॉ. राही ने अपने उपन्यास ‘टोपी शुक्ला’ में सांप्रदायिक दंगों का वर्णन किया है। धर्म, जातिवाद, परंपरा, संप्रदाय, राजनीतिकवादों से अलग हटकर व्यक्ति का स्वतंत्र रूप में मूल्यांकन करने का प्रयास राही ने किया है। इसमें राही ने समाज में शिक्षा एवं नौकरी में होनेवाले सांप्रदायिक शोषण पर बड़ा प्रहार किया है। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के बीच हो रहे सांप्रदायिक दंगों के बीच सच्ची इन्सानियत को तलाश करने का कार्य किया है। राही ने हिन्दू-मुसलमान के बीच हो रहे दंगों के बारे में कहा है कि - “हिन्दू मुस्लिम समस्या वास्तव में कुछ नहीं है, यह सिर्फ राजनीति का एक मोहरा है और जो असली चीज है, वह इन्सान के पहलू में घड़कनेवाला दिल और उस दिल में रहनेवाले जज्बात है, और इन दोनों का मजहब और जात से कोई ताल्लुक नहीं।”<sup>१५</sup>

डॉ. राही चिंतनशील व्यक्ति थे। अतः उन्होंने देश विभाजन, हिन्दू मुस्लिम संबंध, सांप्रदायिकता से उत्पन्न दंगे आदि अनेक विषयों पर अपने स्वतंत्र विचार प्रकट किये हैं। सांप्रदायिकता के नाम पर हो रहे दंगों के कारण लोगों में भय का वातावरण छा गया था, इसलिए लोग अपना धर्म छिपाने का प्रयास करते थे। सामाजिक वातावरण में जब इस प्रकार का विष फैल जाता है, तब सबके मनमें अव्यक्त भय समा जाता है। आज एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के खून का प्यासा बन गया है। मनुष्य की मानवीय

संवेदनाएँ समाप्त हो चुकी हैं । वे धर्म और जाति के नाम पर होनेवाले दंगों में दानव बन जाते हैं । आज के इस बदलते परिवेश में मनुष्य की सामाजिक सोच में अंतर आ गया है । डॉ. राही इस समस्या को अपने उपन्यासों में आये प्रसंगों के माध्यम से यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करते हैं । राही के सामाजिक सोच-विचार उनके साहित्य में परिलक्षित होते हैं ।

### ➤ राष्ट्र प्रेमी राही :

राष्ट्रीयता एक मानसिक अनुभूति है । राष्ट्र प्रेम का अर्थ केवल देश की जड़ भौगोलिक सीमाओं की प्रशस्ति ही नहीं, उन भौगोलिक सीमाओं में रहनेवाले और सांस लेनेवाली जनता की अनुभूतियों, आशाओं, आकांक्षाओं के साथ किसी का वास्तविक तादात्म्य है । राष्ट्रीयता एक निश्चित राष्ट्र के प्रति भक्तिभावना है । राष्ट्रीयता का संबंध देश की जड़ भूमि मात्र से न होकर उनके अंतरंग से भी है । राष्ट्रीय भावना का सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह है कि विशाल जनमानस में वह एकता एवं बंधुता की भावना का विकास करती है । स्व की व्यक्तिगत भावना से उपर उठकर जब हम मानवता की क्षितिज को झाँकते हैं, तब राष्ट्रीय भावना का जन्म होता है । राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है, जो देश की जनता को संगठित रखती है ।

डॉ. राही मासूम रज़ा स्वातंत्र्योत्तरकाल के वे साहित्यकार हैं, जिनकी आत्मा दिन-रात राष्ट्र के उत्थान की चिंता करने में, उसे सजाने, सँवारने में तथा निर्माण करने में लगी थी । राही ने अपने साहित्य में देश के प्रति जितनी श्रद्धा और प्रेम व्यक्त किया है, उतना कहीं भी नहीं मिलता । राष्ट्रीयता के बारे में उनकी भावना संकुचित नहीं है । अपनी जन्मभूमि पर जितना प्रेम और श्रद्धा है, उतना ही प्रेम और श्रद्धा विश्वबंधुत्व के प्रति भी है । धर्म और जाति भेद का उनकी राष्ट्रीयता में स्थान नहीं है । वे मानते हैं कि धर्म और जाति का स्थान राष्ट्र के बाद आता है । हम पहले

हिन्दुस्तानी है बाद में हिन्दू या मुसलमान या इसाई है । बाद में ब्राह्मण, जैन या क्षत्रिय हैं । जाति और धर्म राष्ट्र से बड़ा नहीं हो सकता । यही वर्तमान राष्ट्रीयता का प्रधान लक्षण है । वे अपने देश को एक समर्थ, शक्तिमान एवं उन्नत तथा प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे । राही की राष्ट्रीय चेतना अत्यंत प्रखर एवं जागृत थी और वह कई रूपों में प्रस्फुटित भी हुई है । राही अपने देश प्रेम को इस तरह पारिभाषित करते हैं कि – “मेरा देशप्रेम चुनाव जितने के लिए नहीं है । मेरा देशप्रेम हिन्दू मुसलमान दंगे करवाने के लिए नहीं है । मेरा देशप्रेम महाराष्ट्र के मुसलमानों से महाराष्ट्रीय होने का अधिकार छीनने के लिए नहीं है । मेरा देशप्रेम बम्बई या मुंबई में मलियाली या तमील भाषियों की दुकाने जलाने के लिए नहीं है । मेरा देशप्रेम हिन्दी को दूसरे पर लादने या मद्रास में संविधान के पन्ने फाड़ने और हिन्दी फिल्मों की रिलीज रोकने के लिए नहीं है । मेरा देशप्रेम मेरे जीने का ढंग है । मेरे लिए देश केवल एक शब्द नहीं । मेरे सारे उपन्यास मेरे देशप्रेम की परिभाषाएँ हैं ।”<sup>१६</sup>

डॉ. राही के दिल को यह दर्द हमेशा सालता रहा कि बार-बार उनसे एक सच्चा भारतीय होने का प्रमाण मांगा जाता रहा है और उन्हें इस बात को बार-बार कहना पड़ा है कि मैं केवल अपना हक माँगता हूँ कि मैं भी उतना ही हिन्दुस्तानी हूँ, जितने हिन्दुस्तानी गुरु गोबबलकर है । यहाँ इस बात को देखा जा सकता है कि लेखक को अपने हिन्दुस्तानी होने पर गर्व है, लेकिन जब उसका प्रमाण देने की बात आती है, तब राही बैचेन हो उठते हैं । उपन्यासकार राही मासूम रज़ा का यही दर्द उनके द्वारा लिखी वीर अब्दुल हमीद की जीवनी ‘छोटे आदमी की बड़ी कहानी’ में बिखरा पड़ा है । अब्दुल हमीद की जीवनी में केवल घटनाओं का क्रम नहीं, अपितु एक हिन्दुस्तानी होने का जहाँ गर्व झलकता है, वहाँ दूसरी ओर देश की अस्मिता के लिए कुर्बानियों का संकल्प भी झलकता है । आज जब हमारे देश में हिन्दू मुस्लिम कट्टर

पंथियों द्वारा वैमनस्यता का बीज बोया जा रहा है, तब राही का यह पुस्तक आज के समय में प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण हो जाता है, जिसमें राही ने गुरु गोबवलकर और शहाबुदीन दोनों की खबर ली हैं। राही का मानना है कि १७ सितम्बर १९६५ को वीर अब्दुल की कुर्बानी केवल किसी मुसलमान की कुर्बानी नहीं है, बल्कि वह एक हिन्दुस्तानी की कुर्बानी है। उसे इसलिए याद किया जाय कि वह एक हिन्दुस्तानी सिपाही था। वे यही मानते थे कि भारत में रहनेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपने को भारतीय माने तथा मातृभूमि के प्रति आस्था और निष्ठा रखें।

➤ **मातृभूमि के प्रति परम श्रद्धावान राही :**

राही की अपने देश तथा मातृभूमि के प्रति श्रद्धा अत्यंत स्वाभाविक हैं। राही की राष्ट्रीयता में देशप्रेम की भावना निहित हैं। देशप्रेम की भावना मानव की प्रमुख भावना होती है। देशभक्ति की यह प्रबलधारा उनके काव्य में प्रवाहित हुई हैं। राही ने देश की गुलामी के खिलाफ लिखा और उसके आजाद होने के बाद अपने वतन और वहाँ की नदियाँ, पहाड़ों, जंगलों, खेतों, झरनों आदि के गीत गाए हैं। वे जिस जमीन पर खड़े थे या जहाँ जन्मे थे उसकी पुकार वे बराबर सुनते रहे। यही कारण था कि वे बार-बार अपनी जमीन की ओर लौटना चाहते थे। इनसे संबंधित राही की कविताएँ हैं 'अजनबी', 'अम्न तुम्हारे लिए', 'हे गुलाब के फूलों', 'आखिरी पड़ाव' आदि में डॉ. राही ने राष्ट्रीय चेतना को प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। राही को अपने वतन से अधिक प्यार था। वे किसी भी तरह अपने वतन परस्ती को कायम रखना चाहते थे।

राही को अपनी जन्मभूमि प्यारी थी। अतः उसकी ओर बार-बार लौटने के लिए आकांक्षी थी, उन्होंने अपनी भावनाओं को इस तरह व्यक्त किया है -

“हे मेरे शहर, गुलाबों के वतन, मेरे चमन  
लौट आया हूँ मैं फिर मौत के वीरानों से  
फिर कोई शेर, कोई नज्म पुकारे मुझको  
फिर मैं अफसाने बनाऊ तेरे अफसानों से”<sup>१७</sup>

राही ने अपने वतन गाजीपुर के पास बहनेवाली गंगा नदी से भी आत्मीयता व्यक्त की है। गंगा नदी भारतियों के लिए एक भौगोलिक या प्राकृतिक उपादान नहीं है। वह प्रत्येक भारतवासी के लिए एक पवित्र, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मनोभाव है। राही की अंतरात्मा में भी यह पावनता है। वह उनकी माँ है, उनकी अंतिम इच्छा यही थी कि मृत्यु के बाद मैं गंगा किनारे पर दफन किया जाऊ। उन्होंने अपने उपन्यास ‘दिल एक सादा कागज’ में इस तरह व्यक्त किया है –

“वह इसी देश में दम तोड़ना चाहता है  
मेरा फन मर गया यारो  
मैं नीला पड़ गया यारो  
मुझे ले जा के गाजीपुर में गंगा की गोद में सुला देना  
वो मेरी माँ है  
वो मेरे बदन का जहर पी लेंगी.....।”<sup>१८</sup>

राही की इसी भावना से देखा जा सकता है कि राही के मनमें मातृभूमि के प्रति अपार श्रद्धा का भाव भरा हुआ है।

### ➤ राजनीति के बारे में राही के विचार :

राजनीति के क्षेत्र में राही सर्वव्यापी मानवधर्म की स्थापना का स्वप्न देखते थे। राही के विचारों में भारत देश को सच्ची स्वतंत्रता केवल राजनीति के बाहरी हेराफेरी, चक्र कुचक्रों से प्राप्त नहीं होगी, वह तो युग चेता साहित्यकार के विचारों से संभव हो सकती है। राही राजनीति में पूंजीवादी

व्यवस्था के विरोधी थे । राजनीति के नाम पर जनता विभिन्न वर्गों में बँटती जाए, यह उन्हें कभी मान्य न था । राही ने अवसरवादी नेताओं का चित्र उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है । डॉ. राही राजनीति में सच्चे और व्यापक अर्थ में साम्यवाद के समर्थक थे । राही की साम्यवादी राजनीति व्यवस्था का ध्येय वर्गविहीन समाज की स्थापना है । इस विरोधी स्वार्थवाले शोषक और शोषित तथा पीड़ित वर्गों का अंत हो । समाज में सभी की उन्नति हो और सभी सामूहिक रूप से परस्पर उन्नति के लिए जीवन व्यतीत करे ।

स्वतंत्रता के बाद कुछ समय तक प्राचीन मान्यताएँ बनी रही, परंतु आधुनिक युग में भारतीय राजनीति का जो स्वरूप स्पष्ट हो रहा है, वह चिंता का अत्यधिक विषय रहा है । सबको कुर्सी की चाह है, चाहे वह किसी भी ढंग से प्राप्त हो । भारतीय राजनीति की यह विडम्बना रही है कि राजनीतिक दल सिद्धांतों के आधार पर नहीं, बल्कि व्यक्तिगत महत्त्वकांक्षा के आधार पर बनते बिगड़ते हैं । जो नेता धर्मनिरपेक्षता की बात करता है, वही सांप्रदायिक बन जाता है । यहाँ पर नेता राजनीतिक सिद्धांतों पर ध्यान देने से अधिक व्यक्तित्व को विशेष महत्त्व देते हैं । राही ने अपने उपन्यास साहित्य में राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को उठाया है । अतः उन स्थल पर राही का स्वर अधिक राजनीतिक बन गया है । इतिहास में देश विभाजन की घटना ने सारे भारतीय उपखंड की जनता को झकझोर दिया है । डॉ. राही ने देश में होनेवाले चुनाव, दलबदल तथा अवसरवादी स्वार्थी नेताओं का पर्दाफाश किया है । आज के जमाने में सभी क्षेत्रों में राजनीति का प्रभाव देखा जा सकता है । हमारे व्यवहार, व्यवसाय, हमारे समाज यहाँ तक कि हमारी रोजी रोटी भी राजनीति बन गई हैं । राजनीति एक ऐसा धंधा बन गया है, जिसमें सभी अपराधी मौजूद हैं । राही ने राजनीति की कुव्यवस्था पर प्रहार करते हुए कहा है कि “यह अपना देश भी अजीब है कि यहाँ राजनीति विचारों से नहीं



पहचानी जाती, बल्कि टोपियों से पहचानी जाती हैं। अधिकतर लोगों के पास तो कोई विचारधारा होती ही नहीं, केवल टोपियाँ होती हैं और जिनके पास विचारधारा होती भी है, वे भी टोपियों पर ज्यादा भरोसा करते हैं। मैंने जनसंघी कांग्रेसी और मुस्लिमलीगी कम्युनिष्ट देखे हैं। सवाल विचारधारा का नहीं, सवाल टोपियों का है, इसलिए तो लोकसभा में कबड्डी होती रहती है। टोपियाँ उछलती हैं।<sup>१६</sup> राही ने नेताओं की व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ और परिवारवाद की निंदा की है। राजनेता देश और समाज की भलाई की बात करते हैं, लेकिन वास्तव में कार्य दोनों के विरोध में ही करते हैं।

डॉ. राही ने राजनीति में उन लोगों पर कड़ा प्रहार किया है, जो लोगों को गुमराह करते हैं और भोलेभाले इन्सान को अपना मोहरा बनाते हैं। ऐसे लोग राही की निगाह में न हिन्दू हैं, न मुसलमान हैं, वे शैतान के प्रतिनिधि हैं। राही सच्चे एवं व्यापक अर्थों में साम्यवाद के समर्थक थे। राही के विचारों में आजादी का पच्चीसवाँ जश्न पाकिस्तान में भी मनाया गया और हिन्दुस्तान में भी। कौन-सा स्वर्ग पा गए पाकिस्तानी और कौन-सा सुख पा गए हिन्दुस्तानी। आम जनता तो रोटि के लिए परेशान हैं। राही का राजनीतिक चिंतन जहाँ एक ओर परिस्थितियों के गंभीर और सूक्ष्म विश्लेषण से आकार लेता है, वहाँ निर्भीक तटस्थता के साथ वह देशहित को सर्वोपरी महत्त्व देता हुआ दिखाई पड़ता है।

#### ❖ डॉ. राही का कृतित्व :

स्वातंत्र्योत्तर काल के श्रेष्ठ उपन्यासकारों में डॉ. राही का नाम लिया जाता है। डॉ. राही को बचपन से ही साहित्य के प्रति अधिक लगाव रहा है और इसी लगाव के कारण उन्होंने अपना समूचा जीवन साहित्य में समर्पित कर दिया था। आरंभ में उनकी कृतियाँ उर्दू में छपती थी, उनकी समग्र रचनाएँ १९६५ से १९८६ तक प्रकाशित हुई हैं।

डॉ. राही ने निबंधकार, कहानीकार, रेखाचित्रकार, कवि और उपन्यासकार के रूप में अपनी प्रतिभा को विकसित किया है। राही की साहित्यिक गतिविधियाँ विविध पत्रिकाओं के माध्यम से तेज हुईं। राही ने अपनी कविताएँ इलाहाबाद से 'फसाना' नाम की पत्रिका से प्रकाशित की थी। उनकी शायरी उर्दू की उच्च स्तरीय प्रतिष्ठित पत्रिका 'कारवाँ' में छपती थी। जिसके कारण राही को उर्दू शायर 'शाहिर' के रूप में ख्याती प्राप्त हुई। डॉ. राही की साहित्य जगत में पहली शुरुआत उर्दू उपन्यास 'मुहब्बत के सिवा' सईद प्रकाशन के माध्यम से हुई। 'नया साल मौजे गुल मौजे सबा' उर्दू में लिखी उनकी लम्बी कविताएँ १९५४ में प्रकाशित हुई। डॉ. राही साहित्यकार के रूप में अच्छे कवि भी थे। उनकी कविता का पहला संग्रह १९६४ में 'रख्से में' शीर्षक से उर्दू में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह प्रकाशित होने से पहले ही वे एक महाकाव्य 'अठारह सो सत्तावन' लिख चुके थे जो १९६५ में प्रकाशित हुआ। कुल मिलाकर डॉ. राही मासूम रज़ा का साहित्य सृजन निम्नलिखित रहा है।

➤ **निबंध :**

उर्दू की 'शमा' पत्रिका में राही के अनेक निबंध प्रकाशित हुए हैं। जिनमें जीवन, समाज तथा संस्कृति का खुलकर वर्णन किया गया है।

➤ **कहानियाँ :**

डॉ. राही की कहानियाँ मूलतः पत्रिकाओं में छपती थी। उनकी कहानियाँ 'सारिका' पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित हुई हैं। जो निम्नलिखित हैं।

- (१) 'एम.एल.ए. साहब' (मार्च १९७५)
- (२) 'चम्मचभर चीनी' (दिसम्बर १९७६)
- (३) 'खलीफ अहमद बुआ' (दिसम्बर १९७८)
- (४) कहानी संग्रह 'सपनों की रोटी' (नवम्बर १९८०)

➤ **जीवनी :**

डॉ. राही द्वारा लिखी गई 'छोटे आदमी की बड़ी कहानी' १९६५ में लिखी गई, जो उनकी परमवीरचक्र प्राप्त अब्दुल हम्मीद पर लिखी गई जीवनी है। अब्दुल हम्मीद गाजीपुर के निवासी और एक साधारण भारतीय मुसलमान थे। जिन्होंने मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व लुटाकर अपनी देशभक्ति और देशप्रेम से विश्वास किया है। डॉ. राही ने बड़ी दृढ़ता के साथ यह बात कही है कि भारतीय मुसलमान अन्य सभी भारतियों की तरह देशप्रेमी और वतनपरस्ती है। उनकी देशभक्ति पर अविश्वास प्रकट करना मेरी दृष्टि में इस समुदाय के प्रति अन्याय होगा। समसामाजिक परिवेश में हिन्दू मुसलमानों को समझने के लिए यह जीवनी एक दर्पण है।

➤ **कविता :**

उर्दू रचनाएँ

१. नया साल (१९५४)
२. मौजे गुल मौजे सब (१९५४)
३. रख्से मे (१९६४)
४. अजनबी शहर : अजनबी रास्ते (१९६७)

➤ **काव्य संग्रह :**

१. मैं एक फेरीवाला (१९७६)

➤ **महाकाव्य :**

१. अठारह सौ सत्तावन (१९६५)

➤ **उर्दू उपन्यास :**

- (१) मुहब्बत के सिवा (१९४०)
- (२) अजनबी शहर (१९६७)

➤ **हिन्दी उपन्यास :**

- (१) आधा गाँव (१९६६)

- (२) हिम्मत जौनपुरी (१९६६)
- (३) टोपी शुक्ला (१९६७)
- (४) ओस की बूंद (१९७०)
- (५) दिल एक सादा कागज (१९७३)
- (६) सीन-७५ (१९७७)
- (७) कटरा बी आर्जू (१९७८)
- (८) असंतोष के दिन (१९८६)
- (९) नीम का पेड़ (२००३)

➤ **उपन्यासकार के रूप में राही :**

डॉ. राही मासूम रज़ा अपने उपन्यासों के द्वारा हिन्दी साहित्य में अटल स्थान का गौरव प्राप्त किये हुए हैं। उन्होंने ने बहुत से उपन्यास लिखे हैं, अपितु उनका एक ही उपन्यास 'आधा गाँव' उनकी पहचान बन गया है। इस एक उपन्यास के कारण ही राही हिन्दी जगत के चमकते सितारे बन गये हैं। हम उनके सभी उपन्यासों पर संक्षिप्त दृष्टि डालेंगे। यथा -

**(१) आधा गाँव :**

डॉ. राही मासूम रज़ा ने 'आधा गाँव' उपन्यास १९६६ में लिखा है। डॉ. राही को हिन्दी साहित्य में नाम दिलानेवाला कोई उपन्यास है, तो वह है - 'आधा गाँव'। 'आधा गाँव' उपन्यास आँचलिक उपन्यासों की कोटि में आता है। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन का यथार्थ रूप में चित्रण किया गया है।

'आधा गाँव' उपन्यास बहुत चर्चित और विवादास्पद रहा है। उस उपन्यास पर कई टीकाएँ भी हुई हैं, फिर भी राही के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास रहा है। यह उपन्यास मुसलमानों के जीवन पर आधारित है। 'आधा गाँव' ३४४ पृष्ठों का उपन्यास है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने

विविध परिच्छेदों में नामकरण किया हैं, जो ऊँघता शहर, मेरा गाँव मेरे लोग, उद्गम, मियाँलोग, ताना बाना, प्यास और नई पुरानी रेखाएँ आदि । लेखक ने कथानक के बारे में स्वयं वक्तव्य दिया हैं – “यह कहानी न कुछ लोगों की है और न कुछ परिवारों की । यह उस गाँव की कहानी भी नहीं है, जिसमें इस कहानी के भले बुरे पात्र अपने को पूर्ण बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं । यह कहानी न धार्मिक है न राजनीतिक..... और कहानी समय की है ।”<sup>२०</sup>

‘आधा गाँव’ उपन्यास में पूरे गाँव का नहीं, किन्तु मात्र मानसिक यात्राओं का चित्रण किया हैं । यह कहानी गाजीपुर के छोटे से गाँव गंगोली की है, इसलिए उपन्यासकार ने इसे समय की कहानी कहा है । “इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है समयहीनता । इसलिए यह पहला जीवन आँचलिक उपन्यास है इसके सभी पात्र बिना लगाम के हैं और उनकी अभिव्यक्ति सहज, सटीक, और दो हक है, गलियों की हद तक ..... ।”<sup>२१</sup> इस उपन्यास में मुसलमानों द्वारा मनाया जानेवाला मुहर्रम का जिक्र बार-बार आता है । यहाँ के मुसलमान उतरपट्टी के खानदानी झगड़े में बँटे हुए है । गंगोली गाँव में वर्गीय चेतना साफ दिखाई देती हैं । यहाँ हड्डी की शुद्धता का बड़ा महत्त्व है । इस उपन्यास में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक रूप से जो परिवर्तन हुए और उनका लोगों पर जो प्रभाव पड़ा है, उसी का चित्रण बड़े सुंदर ढंग से चित्रित किया गया है । भारत और पाकिस्तान के बँटवारे के बाद जो परिवर्तन हुए उनका बखूबी वर्णन इस उपन्यास में किया गया है । “इन परिवर्तनों का गंगोली के शिआ मुसलमानों पर जो प्रभाव पड़ा और उनके जीवन में कैसे परिवर्तन आये इन्हीं रूपों को चित्रित करने का प्रयत्न राही ने किया हैं ।”<sup>२२</sup>

यहाँ पर मुसलमान भी शिआ और सुन्नी दो विभाग में विभाजित हैं । शिआ मुसलमानों को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । इसमें लेखक ने यथार्थ रूप में ज्यों का त्यों वर्णन किया है । इसलिए उपन्यास के पात्र सजीव, यथार्थ एवं स्वाभाविक मालूम होते हैं ।

उपन्यास के प्रमुख पात्र फुन्ननमियाँ, हाकिम साहब, मिगदाद, हम्मादमियाँ, मुख्तारमियाँ, रसीदमियाँ, हम्मादादा, फूसचाचा आदि हैं । इनमें से कुछ पात्र जमींदारों का प्रतिनिधित्व करते हैं । मुह्ररम के दिनों में यहाँ भरपूर मजलिसे होती हैं । गंगोली में जुलाहे जो धनवान हैं, फिर भी सैयदों के साथ बराबरी में नहीं बैठ सकते । फून्ननमियाँ को जमींदारी का नशा चढ़ा हुआ है । वह करामतअली के घर हुक्का पीने जाता है और उसकी ही ब्याहता कुलसूम को अपनी पत्नी बना लेता है । यहाँ पर स्त्रियों के लिए कोई मान-सम्मान नहीं है । गंगोली के मजदूर दिन-रात सैयदों के घर पर काम करते हैं और उनका शोषण होता है, फिर भी पीढ़ी दर पीढ़ी ऐसा चलता रहता है । लेखक ने बार-बार गंगोली में बसनेवाले लोग, जो सामन्तवादी व्यवस्था के बदलाव को लेकर पीड़ित हैं, उनका वर्णन किया है ।

फुन्नन, पृथ्वीपालसिंह और अशरफुन्नग खाँ अंग्रेजों का विरोध करते हैं, और थाने पर हमला करते हैं । इसी हमले में फुन्नन का लड़का मुन्नाज मारा जाता है । हम्माद का लड़का मिगदाद सूफुनियाँ नाईन से विवाह करके कलकत्ता भागना चाहता है । सैयद घरानों में उन औरतों को पत्नी का दर्जा नहीं दिया जाता, बल्कि रखैल माना जाता था । सैफुनियाँ की माँ जानती है कि वे हम्माद से जन्मी हैं, इसलिए मिगदाद और सैफुनियाँ दोनों का भाई-बहन का रिश्ता होता है । फिर दोनों का विवाह कैसे हो सकता है ? इस बात से परेशान हैं ।

इस उपन्यास का सबसे बड़ा दर्द पाकिस्तान निर्माण है । इन विभाजन के कारण गंगोली निवासियों के दिलों में दरार पड़ गई है । पाकिस्तान के निर्माण के बाद गंगोली के कई मुसलमान पाकिस्तान चल गये, इस बात से लेखक के मनमें बड़ा दुःख होता था । गंगोली से सबसे पहले सफिरवा और बछनियाँ चले गये, बाद में धीरे-धीरे सारा गाँव खाली होने लगा । उन मुसलमानों का मानना था कि हिन्दुस्तान में रहकर उनका विकास नहीं होनेवाला,

इसी मान्यता में जी रहे लोग गंगोली छोड़कर पाकिस्तान चले गये । इसका यह परिणाम हुआ कि हिन्दुस्तान पाकिस्तान ने न केवल हिन्दू-मुसलमान को अलग किया, किन्तु पति-पत्नी, बाप-बेटे को अलग कर दिया ।

इस उपन्यास की कथा में नवीनता यह है कि भूमिका लगभग उपन्यास के अंत में आती है । गंगोली के सैयद यह मानते हैं कि जमींदारी चली जायेगी । पाकिस्तान से वापस आनेवाले नौजवान वहाँ की तारीफ करते हैं । जिसके कारण अन्य नौजवान भी पाकिस्तान चले जाते हैं । स्वतंत्रता के बाद गाँव में एक नये वर्ग का उदय होता है । गंगोली में परिवर्तन की किरणें साफ दिखाई देती हैं । गाँव की सड़क जो कच्ची थी, वह बन गई है, पंचायत की तरफ से रोशनी की जाने लगी है ।

इस प्रकार उपन्यास समाप्त होकर न तो किसी व्यवस्था और न ही किसी जीवन मूल्यों के प्रति आक्रोश जमाता है, क्योंकि इसका कथासूत्र तथा पात्र बिखरे हुए हैं । अंत में निराशा एवं त्रासदी के परिणाम द्वारा उपन्यास को असमाप्त किया जाता है ।

## (२) हिम्मत जौनपुरी :

यह डॉ. राही का लघु उपन्यास है । इस उपन्यास में गाजीपुर के जीवन का चित्रण किया गया है । राही का यह उपन्यास समस्या प्रधान उपन्यास है । इसमें भारतीय मुसलमान की एक जीवन गाथा प्रगट हुई है । मुसलमानों के बारे में राही की जो धारणा है, वही इस उपन्यास में पूर्ण रूप से प्रकट हुई है ।

हिम्मत जौनपुरी एक नायक प्रधान उपन्यास है । इस उपन्यास में लेखक ने ऐसी व्यक्ति के जीवन को विषयवस्तु बनाया है, जो अकेला ही जीवन में संघर्ष करता है । इसमें राही ने नायक का परिचय देते हुए कहा है कि “श्री हिम्मत जौनपुरी की कहानी एक ऐसे निहत्थे की कहानी है जो जीवनभर जीवन

का एक हक माँगता रहा, जो एक सीन से दूसरे सीन में डिजाल्व होता रहा और जो डिजाल्व होने की इसी कोशिश में एक दिन फेड आऊट हो गया।<sup>२३</sup> लेखक ने इस उपन्यास को १२७ पृष्ठों में तीन भागों में विभाजित किया है। पहले भाग में हिम्मत जौनपुरी के पूर्वज के पारिवारिक जीवन का वर्णन मिलता है, जिसमें हिम्मत जौनपुरी के जन्म से लेकर बम्बई आने तक की कहानी मिलती है। दूसरे भाग में हिम्मत जौनपुरी का बम्बई में इधर-उधर भटकना, चाय की दुकानवाले से उसकी दोस्ती, प्लेटफार्म पर रहनेवाली जमुना नामक वेश्या से प्यार आदि का वर्णन किया गया है। तीसरे भाग में हिम्मत जौनपुरी की दुर्घटना में मृत्यु का वर्णन मिलता है।

इस उपन्यास में गाजीपुर और जौनपुर के आपसी संबंधों की चर्चा की गई है। इसमें गाजीपुर गंगा के किनारे है और जौनपुर गोमती के किनारे। पुराने जमाने में किसी भी रचनाकार जिस शहर या गाँव में रहते थे, उसका वर्णन वह अपनी कृति में करते थे। जैसे 'दिलगीर जौनपुरी' ने वर्णन किया है।

*“कुछ इसका मिजाज जोगिया है*

*गंगा के किनारे बस गया है*

*गंगा की तरह सिजिल, सिजिल भी*

*गंगा की तरह ये पाक दिल भी”<sup>२४</sup>*

इस उपन्यास में हिम्मत जौनपुरी अपनी खानदानी परंपरा को तोड़ता है और नौकरानी से प्रेम हो जाता है और इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उसका बेटा 'आरजु' सुकान से निकाह कर लेता है। इस उपन्यास में मध्यमवर्गीय भारतीय नागरिकों की सामाजिक समस्याओं का मार्मिक चित्र पूरुत किया गया है। तलाक जैसी सामाजिक समस्या का सामना छिहतर वर्ष के दिलगीर जौनपुरी को करना पड़ता है, जो इस उपन्यास में देखने को मिलता है। हिम्मत जौनपुरी कुछ काम करने के लिए बम्बई आता है और बम्बई में



दलीमेजन और नामर्दी दूर करने की भस्म बेचकर वह अपने चचा 'बर्क जौनपुरी' की दो मसनबियाँ छापता है। वह एक बड़ी बजट की फिल्म बनाना चाहता है। बम्बई जाकर हिम्मत जौनपुरी को लगता है कि यहाँ आदमी की सारी आदमियत खत्मकर उसे मशीन बना देती हैं।

उपन्यास के अंतिम भाग में हिम्मत जौनपुरी का दर्द बहुत प्रभावित करता है। यह राही मासूम रज़ा की लेखनी का कमाल है कि पाठकों की हमदर्दी हिम्मत के साथ हो जाती है। समग्र कथानक में हिम्मत जौनपुरी आरंभ से अंत तक संघर्ष करता दिखाई देता है। इस उपन्यास में डॉ. राही ने साधारण व्यक्ति के असाधारण सपने की कथा कहने का प्रयास किया है।

### (३) टोपी शुक्ला :

यह उपन्यास राजनीतिक समस्या पर आधारित है। यह उपन्यास 'हिम्मत जौनपुरी' से बड़ा है। यह १६१ पृष्ठों और १८ भागों में विभाजित है। 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में बलभद्र नारायण शुक्ला की जीवनगाथा वर्णित है। अतः उसे उपन्यास न मानकर जीवनी माना जाता है। इस उपन्यास की कथा अलीगढ़ युनिवर्सिटी के आसपास घूमती रहती है। इस उपन्यास में मुख्य तीन पात्र हैं, टोपी शुक्ला, इप्फन और उसकी पत्नी सकीना। इसमें विविध युनिवर्सिटी में चलनेवाली जाति-पाँति, धर्म, संप्रदाय की भावना का पर्दाफाश किया है। टोपी शुक्ला ऐसा व्यक्ति है, जिनके साथ न भाई है, न परिवार है, न समाज, वह बिछड़ा हुआ है। अतः वह घर छोड़कर भाग जाता है।

इस उपन्यास में टोपी शुक्ला और इप्फन दोनों अच्छे दोस्त हैं। टोपी बचपन से ही मुसलमानों का छुआ पानी तक नहीं पीता, किन्तु इप्फन मुसलमान हैं। इसमें दोनों के माध्यम से हिन्दू और मुसलमान के नाम पर उठनेवाली समस्याओं को लेखक ने बड़े तीव्र रूप से प्रस्तुत किया है। स्वतंत्रता के बाद हिन्दू मुसलमानों के बीच गहरी दरार पड़ गई थी। इस

उपन्यास की पृष्ठभूमि में दोनों की मित्रता का वर्णन किया गया है । लेखक को इस बात का दुःख है कि परंपरा ने व्यक्ति को छोटे-छोटे वर्गों में बाँट दिया है । वे अपने दुःख को प्रकट करते हुए लिखते हैं कि “अब केवल कोई शरीफ नहीं रह गया है, हर शरीफ के साथ एक दुमछल्ला लगा हुआ है । हिन्दू शरीफ, मुसलमान शरीफ, उर्दू शरीफ और बिहार शरीफ, दूर दूर तक शरीफों का एक जंगल फैला हुआ है ।”<sup>२५</sup> टोपी इप्फन से जब बनारस से बिछड़ा है, तब उसकी दूसरी बार मुलाकात अलीगढ़ युनिवर्सिटी में होती है । सकीना इप्फन की पत्नी है, बेटी सबनम उनके साथ अलीगढ़ में है । सकीना हिन्दूओं से घृणा करती है, क्योंकि उसके पिता हिन्दू-मुसलमान के दंगों में मारे गये थे, इसलिए वह पूरे हिन्दू समाज से नफरत करती है । टोपी शुक्ला आरंभ से अंत तक मानसिक संघर्ष करता है और उसका जीवन निराशाओं में घिरा है । टोपी जब पीएच.डी. पूरा करके कोई शिक्षण संस्था में अध्यापन के लिए आवेदन करता है, तब साक्षात्कार में उसे कई तरह के बेतुके सवाल पूछे जाते हैं । उसे कहीं हिन्दू होने के कारण तो कहीं मुस्लिम युनिवर्सिटी में पढ़ने के कारण नौकरी नहीं मिलती । जब इप्फन उसको छोड़कर जम्मू चला जाता है, तब टोपी अपने आप को अधुरा समझता है । उसका जीवन निराशाओं से भरा हुआ है और समझता है कि उसके जीवन का एक मात्र समाधान जीवन का अंत है । इसलिए वह आत्महत्या कर लेता है । उसके मृत्यु के दूसरे दिन उसे एक स्थान से नौकरी का पत्र और सकीना द्वारा भेजी गई राखी दोनों एक साथ मिलते हैं । किन्तु तब तक तो टोपी ने अपने प्राण त्याग दिये थे ।

इस उपन्यास में राही ने हिन्दू-मुसलमान के बीच वैमनस्य को मिटाने का प्रयत्न किया है और लेखक ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि किसी समस्या का समाधान आत्महत्या नहीं है ।

#### (४) ओस की बूंद :

ओस की बूंद डॉ. राही का सशक्त उपन्यास है, जो हिन्दू-मुसलमान समस्याओं को लेकर शुरू होता है, किन्तु उसका संबंध मनुष्य के दिलों दिमाग से हैं । यह उपन्यास सांप्रदायिक दंगों के बीच सच्ची इन्सानियत की तलाश करनेवाला हैं ।

यह उपन्यास ११३ पृष्ठों और छः अध्याय में विभाजित है । राही ने इस उपन्यास के प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है “यह बहुचर्चित उपन्यास हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिकता को बेहद यथार्थवादी धरातल पर विश्लेषित करता हैं । हमारे अटूट इन्सानी रिश्तों और समान सामाजिक सरोकारों को फूटी आँखो न देखनेवाली शैली हैं – राजनीति और इसके गर्भ से पैदा हुआ साँप है – सांप्रदायिकता । दूसरे शब्दों में हिन्दू-मुस्लिम समस्या राजनीति का ही एक मोहरा है, जिसे यह जब चाहे अपने हक में इस्तेमाल करता हैं । सांप्रदायिक दंगों के बीच सच्ची इन्सानियत की तलाश करनेवाला यह उपन्यास एक शहर और एक मजहब का होते हुए भी हर शहर और हर मजहब का है । इसके माध्यम से लेखक ने दो संप्रदायों में बीज की तरह डाले गये संदेह, अविश्वास, अलगाव और विद्वेष के उपर मानवमन की सच्चाई, सौहार्द और पारस्परिक समझदारी को स्थापित किया हैं । निसंदेह राही का यह उपन्यास एक जिन्दगी की दर्दभरी दास्तान है – ओस की बूंद की तरह ही पवित्र और चमकदार ।”<sup>२६</sup> ‘ओस की बूंद’ उपन्यास में लेखक ने गाजीपुर के उन मुस्लिम परिवारों की कथा कही है, जो मुस्लिम लोगों के माध्यम से भारतीय राजनीति में आते हैं । इस उपन्यास के पात्रों में से वजीर हसन और हयातुल्ला ऐसे पात्र है, जो पाकिस्तान निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । वजीर हसन जो पाकिस्तान निर्माण के बाद पाकिस्तान नहीं जाता, किन्तु उसका पुत्र अलीबाबा उसे छोड़कर पाकिस्तान चला जाता है । पाकिस्तान निर्माण के बाद कई ऐसे मुसलमान थे, जो भारत छोड़कर नहीं गये । हयातुल्ला

अंसारी राजनीति के माध्यम से हाइस्कूल को हायर सेकन्दरी करवाने की सोच रहा हैं । यह उपन्यास सांप्रदायिकता पर आधारित हैं ।

वजीर हसन के मकान के पीछे एक पुराना मंदिर है । इसकी पूजा करने के विषय को लेकर झगड़ा हो जाता है । उसी समय वजीर हसन पुलिस की गोली से मारा जाता है । तब वजीर हसन की कब्र उसकी मृत्यु के स्थान पर बनाने का निश्चय किया जाता है, लेकिन हिन्दू लोग इसका विरोध करते है । तभी वजीर हसन की पत्नी शकला मुकदमा दाखिल करती है । दहशत अंसारी वकील है । उसको शकला का केस लड़ने से यह भय है कि सारे हिन्दू मुकदमे मेरे हाथ से चले जायेंगे । शिवनारायणसिंह शकला का केस इसलिए लेता है कि सारे मुस्लिम केस इसे मिले । दोनों को अपनी केरीयर की चिंता हैं ।

इस उपन्यास में अंधविश्वास का खुलकर पर्दाफाश किया हैं । वजीर हसन की पत्नी अपने बेटे के वियोग में बेहोश हो जाती है । तब लोगों में यह हवा फैल जाती है कि उस पर जिन सवार हुआ है । अंधविश्वास का ऐसा चित्रण प्रस्तुत करके लेखक यह बताना चाहते है कि यह समस्या पहले से ही चली आ रही है । यहाँ पर धर्म के नाम पर हो रहे अंधविश्वास पर करारा व्यंग्य किया हैं । 'ओस की बूंद' उपन्यास में आन्तर्जातीय विवाह का स्पष्ट चित्रण किया है, इसमें दोनों में से एक को धर्म परिवर्तन करना पड़ता है । इसमें हिन्दू मुसलमानों के बीच विवाह से परिणत न होते हुए दिखाकर भारतवासियों के संस्कारबद्ध स्वभाव की ओर लेखकने संकेत किया हैं । इस तरह इस उपन्यास की कथा आज के समाज की बदलती मानसिकता में सहायक होती है ।

### (५) दिल एक सादा कागज :

यह उपन्यास २११ पृष्ठ एवं ग्यारह अध्यायों में विभाजित है । इस उपन्यासमें लेखक ने अपने जीवन में जो अनुभव किया उसका वर्णन किया गया है । इसमें लेखक ने फिल्मी लोगों पर करारा व्यंग्य किया है । इसमें रफन के जीवन के माध्यम से एक प्रतिनिधि फिल्मों की कहानियों के लेखक के जीवन की गतिविधियाँ और आशा-निराशाओं का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया है ।

इस उपन्यास में जैदिविला जो रफन के पूर्वजों का मकान है, इस जैदिविला के भूत की कहानी है । राम अवतार और रफन दोनों दोस्त हैं और अलिगढ़ युनिवर्सिटी में साथ पढ़ते हैं, लेकिन दोनों नौकरी में आगे सामने हैं । रामअवतार की जगह रफन को नौकरी मिल जाती है । रामअवतार मार्क्सवाद को मानता है और रफन पूंजीवादी व्यवस्था का शिकार हुआ है । रफन का विवाह उसकी प्रेमिका जन्नत के साथ होता है और वह मस्जिद की एक कोठरी में किरायेदार बनता है । वह इस किराये की कोठरी से जैदिविला को तोड़ता है और जब उसे लगता है कि यह कोठरी जैदिविला के गोल कमरे में समा जा रही है तो वह बहुत दुःखी होता है कि पाकिस्तान विभाजन के बाद परिवार के सारे सदस्य पाकिस्तान चले गये हैं । जुदाई का यह दर्द उसके लिए बड़ा जानलेवा है । रफन अपने परिचित लड़कियों से भेट करता है, तब उसकी पत्नी उस पर शक करती है कि उसने शारदा नामक एक युवती का बलात्कार किया है और उसके पति के विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा दाखिल करती है । जिसके कारण उसे स्कूल से निकाल दिया जाता है ।

इस उपन्यास में रफन के जीवन की घटनाओं का वर्णन किया गया है । इस उपन्यास में धर्म से ज्यादा जीवन महत्वपूर्ण है । इस उपन्यास का आरंभ गाजीपुर से होता है, किन्तु इसके पात्र जिला स्तर से लेकर महानगरी

बम्बई तक फैले हुए हैं । इसमें फिल्मी दुनिया पर करारा व्यंग्य किया है । इसमें फिल्मों को सही दिशा देने का प्रयास किया गया है, लेकिन यह बात भी बताना चाहते हैं कि आज की हिन्दी फिल्मों द्वारा समाज को सुधारा नहीं जा सकता ।

#### (६) सीन ७५ :

सीन ७५ डॉ. राही मासूम रज़ा का ऐसा उपन्यास है, जिसका विषय फिल्मी दुनिया से सम्बंधित हैं । हमारे देश में फिल्में केवल मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह गई है, जिसके कारण भारतीय संस्कृति का उपहास हो रहा है । इस उपन्यास के अधिकांश पात्र किसी न किसी रूप में फिल्मी दुनिया से जुड़े हैं, लेकिन यह कहना कठिन है कि यह बम्बई के फिल्मी जीवन की कहानी है । यह एक साथ कई पात्रों को समेटे चलती है, इसलिए यह कहना भी सरल नहीं कि इसमें प्रमुख पात्र कौन-सा हैं ।

इस उपन्यास में बम्बई के जीवन को विविध कोणों से देखने का प्रयत्न किया गया है । इसमें अली अमजद की कहानी है । अली अमजद मध्यमवर्गीय लेखक है । वह फिल्मी लेखक है । वह बम्बई नगरी की एक बिल्डिंग के कमरे में बैठा सीन ७५ का डायलोग लिखने की कोशिश कर रहा है, किन्तु वह अपनी सोच से संवाद नहीं लिखता, क्योंकि ऐसा करने पर डायरेक्टर उसे अमान्य करेंगे । सीन ७५ उपन्यास में इस बात का चित्रण हुआ है कि आज के युग में हमारे जीवन मूल्य टूट रहे हैं, इसमें पश्चिमी सभ्यता का बिगड़ा रूप किस कदर हमारे समाज को दबोचता जा रहा है, इसकी चर्चा हुई है । यहाँ पर फिल्मों में काम करने आती स्त्रियों का शोषण होता है और हिरोइन बनने के लिए आई लड़कियाँ वेश्या बन जाती हैं ।

सीन ७५ में बम्बई नगरी में हो रही समस्या का चित्रण किया गया है । यहाँ रहने के लिए मकान नहीं मिल रहा है, इसलिए अली अमजद को

किराये के घर के लिए भटकना पड़ता है, क्योंकि वह मुसलमान है और फिल्मों में काम करता है। यहाँ के लोगों को यह डर है कि फिल्मवालों के कारण उनकी बहू-बेटियाँ बिगड़ जाती है। अली अमजद मुसलमान होते हुए भी रोजा, नमाज आदि में विश्वास नहीं करता, किन्तु मुसलमान होने के कारण लोग उस पर हमेशा शक करते हैं। लेखक मानते हैं कि मुसलमानों पर शक करना हिन्दुओं का फेशन हो गया है।

सीन ७५ में युवानों की बेरोजगारी की समस्या का चित्रण हुआ है। इसका उदाहरण है वी.डी., जिसको कोई नाम नहीं मिलता तो भिखमंगों का युनियन बनाता है। अली अमजद सीन ७५ लिखने के बाद अपने जीवन से उब जाता है, और वह नींद की गोलियाँ खाकर सो जाता है। दूसरे दिन वह मरा हुआ पाया जाता है। हरीशराय अली अमजद की लाश का पोष्टमार्टम करवाना चाहता है, क्योंकि तब तक उसकी फिल्म का प्रिमियर शो समाप्त हो जायेगा। उसकी मृत्यु से हरीशराय की फिल्म के प्रिमियर शो के कार्यक्रम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उस प्रिमियर शो में जब अली मुल्लाह ने हरीशराय से पूछा कि अली अमजद क्यों नहीं आया, तब वह अत्यंत भावमुद्रा के साथ कहता है “कल रात किसी वक़्त वह मर गया। यह कहते कहते वह एकदम से मुस्करा दिया, क्योंकि एक फोटोग्राफर पास खड़ी हुई हेमामालिनी के साथ उसकी तसवीर ले रहा था।”<sup>२७</sup> उपन्यास की कथा में डॉ. राही कहना चाहते हैं कि आज की जो फिल्म बन रही है, वह लेखक की मर्जी से नहीं, किन्तु हिरो की मर्जी से बन रही है। इसी कारण आज समाज में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव देखा जाता है। इसी कारण आज युवक-युवतियाँ असंस्कृति के शिकार हो रहे हैं। इस प्रकार लेखक ने फिल्मी दुनिया से सम्बंधित व्यक्तियों की हृदयहीनता का सजीव चित्रण किया है।

(७) कटरा बी आर्जू :

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास की कथा राजनीतिक समस्या पर आधारित है। इसमें इलाहाबाद के एक महोल्ले कटरा मीर बुलाकी की कल्पना की है। इसमें इमरजेन्सी के कारण जो घटनाएँ होती हैं, उनका वर्णन किया गया है। भोलू पहलवान, देशराज, बिल्लो, आशाराम, शाहनाज आदि एक ही कटरे के निवासी हैं। इसमें गरीबों की कहानी का वर्णन किया गया है। गरीब रात दिन एक करके घर बनाने के सपने देखते हैं और उनके सपने चकनाचूर हो जाते हैं। इसमें कटरा बी आर्जू लेखक द्वारा दिया गया नाम है। सामाजिक संबंधों की दृष्टि से यह मुहल्ला बहुत ही समृद्ध है। यहाँ पर हिन्दू मुसलमान के बीच कोई भेदभाव नहीं है।

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में सामाजिक सम्बन्धों के साथ-साथ पारिवारिक एवं मैत्रीगत सम्बन्ध भी बहुत मूल्यवान एवं मानवीय दिखाई देते हैं। इसमें पहलवान अपनी दिवंगत बहन की बेटी बिल्लो और मित्र के लड़के देशराज को न सिर्फ प्यार से पालते हैं, बल्कि उनके लिए अपनी शादी भी नहीं करते। शाहनाज और मास्टर बदलल हसन के सम्बन्धों में भी मानवीय भावना दिखाई देती है। इसमें जीवन का दूसरा पहलू राजनीति का व्यापक दबाव पड़ता है और फिर धीरे-धीरे इमरजेन्सी की सीमा में सीमट जाता है।

इस उपन्यास में सरकारी अधिकारियों द्वारा हो रहे अत्याचार और भारतीय न्यायालयों में मिलनेवाले न्याय पर ऊँगली उठायी है। इसमें मजदूर, छोटे लोग और व्यापारियों को अन्याय होता है, उसका उदाहरण है – देशराज और उसकी पत्नी बिल्लो। जिसका सपना एक घर है, इसी कारण वह शादी नहीं करते। इसमें पुलिस द्वारा भी अत्याचार होता है। इस उपन्यास में इमरजेन्सी का कारण इंदिरा गांधी को बताया गया है। वह अपनी महत्त्वाकांक्षा के लिए इमरजेन्सी लाद देती है। इसमें लेखक ने राजनीति के सामने विद्रोह किया है। संजय गांधी के स्वागत के लिए गली को चौड़ी करने के लिए



बिल्लो को अपना घर छोड़ने के लिए मजबूर किया जाता है और वह बुलडोजर की टक्कर से घायल होकर मर जाती है और वहाँ की स्थानीय एम. पी. पाण्डेय के स्वागत के लिए आयोजित जुलूस में ट्रक की दुर्घटना से देशराज की मृत्यु हो जाती है ।

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में देशराज और बिल्लो की कहानी के साथ-साथ शम्शूमियाँ की कहानी भी चलती है । इमरजेन्सी में गरीब लोगों से सरकार अपनी तारीफ करवाती है कि इमरजेन्सी से सबका भला हो रहा है । इस तरह से सबको प्रभावित नहीं किया जा सकता । इसके माध्यम से लेखक यह बताना चाहते हैं कि गरीबी का कारण है हमारी अज्ञानता, क्योंकि हमको ऐसा लगता है कि हमारे बीच का आदमी है, वह हमारी भलाई करेगा, लेकिन इससे ही सबसे ज्यादा खतरा होता है । इस उपन्यास की सफलता यह है कि घटनाएँ और पात्र अभिन्न हैं । चरित्र प्राणवान होने के कारण ही पाठक के मन पर गहरा प्रभाव डालते हैं ।

#### (८) असंतोष के दिन :

‘असंतोष के दिन’ डॉ. राही का सांप्रदायिक समस्याओं को लेकर लिखा गया एक सशक्त उपन्यास है । यह उपन्यास सांप्रदायिकता को फैलानेवाले जहर को पूरी तरह से उजागर करता है, और उस पर गहरी चोट करता है, साथ ही धर्म, संप्रदाय, जातिपाँति के झूठे मुखोटों के पीछे धूर्त, अपराधियों की भयानक धिनौनी हरकतों का पर्दाफाश करता है । यहाँ पर यह बताने का प्रयास किया गया है कि मानों सांप्रदायिकता हमारे देश में जीवन का एक हिस्सा बन गई है ।

‘असंतोष के दिन’ में बम्बई के सांप्रदायिक दंगों का वर्णन किया गया है । इसके साथ-साथ सरकार द्वारा हो रहे भ्रष्टाचार, समाचारपत्र आदि पर व्यंग्य किया गया है । इस उपन्यास में घटनाएँ महत्वपूर्ण न होकर घटनाओं

से उत्पन्न स्थितियाँ महत्वपूर्ण है । देश विभाजन के बाद सांप्रदायिक दंगों का क्रम जारी रहता है । ऐसा एक भी वर्ष नहीं बिता, जिस वर्ष देश में सांप्रदायिक दंगे नहीं हुए । सदियों से एक साथ रहते आये हिन्दू - मुसलमान एक दूसरे के कट्टर दुश्मन बन गये । हजारों लोग बेघर हो गये, जिन्हें अपने वतन से प्यार था, अपने गाँव से प्यार था, ऐसे लाखों मुसलमान अपना देश छोड़कर नया देश पाकिस्तान नहीं गये, लेकिन उनकी दशा बहुत बुरी हुई । वे अपने ही वतन में अजनबी बनकर रह गये । इसमें कथा क्रमबद्ध नहीं चलती बीच-बीच में खण्डित हो जाती है ।

‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में बिन सांप्रदायिकता का प्रतीक है - अब्बास का लड़का रज़ो, जो संगीता से प्यार करता है । संगीता हिन्दू लड़की है । इसमें दो स्त्री-पुरुष के बीच प्यार नहीं है, किन्तु दो धर्मों के बीच प्यार है । किन्तु दोनों का प्यार टिकता नहीं है और आत्महत्या कर लेते हैं । यहाँ गंदी राजनीति ने अपना जाल बिछाकर रखा हुआ है । जो इसका विरोध करता है, उसे मार दिया जाता है । बम्बई जैसे शहर में एक ओर दंगे फैले हुए हैं और एक ओर लोग भूखे मरे जा रहे हैं । इस उपन्यास में देखा जा सकता है कि हिन्दू - मुसलमान एक दूसरे को मारने पर तुले हुए हैं, तो कई ऐसे हैं जो एक दूसरे को बचाने में हैं । इसमें आम जनता के हाथ में कुछ भी नहीं आता । दंगों के माध्यम से कई लोग अपना मनचाहा करते हैं । कई तरह की अफवाहें भी फैलाई जाती हैं, जिसके कारण लोगों में डर का माहौल छाया रहता है ।

डॉ. राही ने अपनी आंतरिक वेदना को विविध पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है और भारत की धर्मनिरपेक्षता की भावना और सांप्रदायिकता पर करारा व्यंग्य भी किया है ।

### (६) नीम का पेड़ :

यह उपन्यास ६२ पृष्ठों और ११ अध्याय में विभाजित है । इस उपन्यास में डॉ. राही ने नीम के पेड़ के माध्यम से समग्र घटना का वर्णन किया है । समग्र कथा इसके आसपास धुमती रहती है । कथा का आरंभ मदरसा खुर्द के जमींदार अली जामिन खाँ और उनके खालाभाई मुसलिम मियाँ के संघर्ष से होता है । अली जामीन खाँ बुधई को मुसलिम मियाँ के यहाँ भेजता है । बुधई जामीन खाँ के यहाँ, अपने यहाँ बेटे के जन्म होने की खुश खबर देने आया है और साथ ही यह भी बताता है कि उन्होंने ने नीम का पेड़ भी बोया है । साथ में रामबहादुर यादव की कहानी चलती है, जो कांग्रेस में शामिल हैं । इनकी हत्या हो जाती है । इस केस में बुधीराम को गवाह बनाया जाता है, जो मुसलिम मियाँ के विरुद्ध में गवाही दे । इन दोनों भाईयों के झगड़ों को मिटाने के लिए दोनों की माँ प्रयत्न करती है और मन ही मन दुःखी होती हैं । इधर बुधीराम अपने बेटे सुखीराम के भविष्य के बारे में सोचता रहता है । रामबहादुर यादव के खून के केस में जामिन खाँ गिरफ्तार हो गये । इधर मुसलिम मियाँ बुधीराम को जामिन मियाँ के खिलाफ गवाही देने के लिए प्रलोभन देते हैं । “क्या करे बुधई मुसलिम मियाँ गाँव में आए तो अपनी दुखतरीवाली जमीन देखने भी निकल पड़े । बुधई की जमीन पर नीम का पेड़ देखा और पटवारी से कह दिया कि इस नीम की छाँव जहाँ तक जाती है वहाँ तक की जमीन बुधई की हुई ।”<sup>२८</sup>

बुधीराम अपने बेटे सुखीराम के भविष्य के बारे में सोचता रहता था । कितने भी प्रयत्न करने पर भी बुधीराम ने जामिन मियाँ के विरुद्ध अपना बयान नहीं दिया और उसकी गवाही से जामिन खाँ रिहा हो जाते हैं । इसका जश्न मदरसा खुर्द में मनाया गया ।

मुसलिम मियाँ भी जमींदारी और सियासत के सारे तौर तरीके जानते हैं । वह बुधीराम को बुलाकर बताता है “आसानी मेरा और गवाही दे जामिन

अली खाँ की तरफ से बोल रामबहादुर का कत्ल कहाँ हुआ था, बोल बुधई चप्पियाँ में उनका गुस्सा और अपना दर्द बर्दाश्त करता रहा ।”<sup>२६</sup> इससे बुधीराम ने अपना बयान बदल दिया कि जामिन मियाँ के कहने पर बजरंगी ने रामबहादुर का कत्ल कर दिया । इसकी गवाही से जामिन खाँ को उम्रकेद और बजरंगी को सात साल की सजा हुई । जामिन खाँ जेल जाते ही जमींदारी खत्म हो गई । बुधीराम का बेटा सुखीराम एम.एल.ए. बन गया । इधर जामिन मियाँ सजा पूरी होने पर बाहर आते हैं, तब उनकी बेगम का देहांत हो जाता है । जामिन मियाँ की बेगम के चालीसवाँ पर मुसलिम मियाँ अपने परिवार के साथ आते हैं, लेकिन अपनी राजनीति के दावपेच में लग जाते हैं । इन सब घटनाओं को घर के आँगन में लगाया गया नीम का पेड़ चुपचाप देखता रहता है । वह जमींदारी प्रथा से लेकर जमींदारी उन्मूलन की परिस्थितियों का साक्षी हैं । जामिन खाँ का लड़का सामिन मियाँ है, जो राजनीति से दूर रहकर समाज सेवा करता है । इधर बुधीराम सुखीराम के ऐशो आराम की जिन्दगी से परेशान है, वह बार-बार समझाने का प्रयत्न करता है ।

गाँव में चुनाव में सब अपनी-अपनी जगह पक्की करने में लग जाते हैं । किन्तु मुसलिम मियाँ के स्थान पर रामबहादुर के लड़के रामखिलावन को एम.पी. का टिकट दिया जाता है । परिणाम यह आता है कि रामखिलावन यादव एम.पी. और सामिन मियाँ एम.एल.ए. बन जाते हैं । सारे गाँव में फिर से जश्न का माहौल बनता है । मदरसा खुर्द में रामखिलावन मियाँ स्कूल का नाम वापस दिलाने में हैं । सुखीराम कमलिनी के खून केस में फँस जाते हैं । जामिन मियाँ का देहांत मदरसा खुर्द में होता है और उनकी यह अंतिम इच्छा पूरी हुई और बड़े शान से मियाँ का जनाजा निकला ।

कमलिनी हत्याकांड में दारोगा हरामत खान मुसलिम मियाँ की पूछताछ करते हैं । दारोगा को हटाने के लिए दारोगा का मुकाबला प्रसिद्ध डाकू बच्चू

आहिर से होता है और दारोगा की मृत्यु होती हैं । समग्र उपन्यास में राजनीतिक दाँवपेच, न्यायालय के चक्कर तथा भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं को उठाया है । उपन्यास में आम आदमी की समस्याओं को लेकर कई सवाल उठाये हैं । उपन्यास के सभी पात्र किसी-न-किसी रूप में संघर्ष करते दिखाई पड़ते हैं और इसी संघर्ष में अपना जीवन समाप्त करते हैं । डॉ. राही ने मानव जीवन का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करके एक नयी दिशा दी है ।

➤ **सफल पटकथा-संवाद लेखक के रूप में राही :**

डॉ. राही मासूम रज़ा एक अत्यंत संवेदनशील व्यक्ति थे । उनको बचपन से ही पढ़ने के साथ-साथ फिल्म देखने का भी शौख था । राही को बचपन से ही इन दोनों के प्रति ज्यादा लगाव रहा था । डॉ. राही ने अलीगढ़ युनिवर्सिटी में पढ़ाते हुए 'आधा गाँव' उपन्यास लिखा । उनको 'आधा गाँव' उपन्यास के कारण बहुत ज्यादा प्रसिद्धि मिली । इसलिए साहित्य अकादमी के तत्कालीन सचिव डॉ. प्रभाकर माँचवे ने आजादी के बाद लिखे भारतीय साहित्य पर एक लम्बा निबंध लिखा था, उसमें उन्होंने ने कहा था कि समस्त भारतीय भाषाओं में से यदि केवल दश उपन्यास चुने जाए तो हिन्दी का प्रतिनिधित्व केवल 'आधा गाँव' ही कर सकता है ।

डॉ. राही को कुछ प्रसिद्धि 'आधा गाँव' के माध्यम से मिली और कुछ नैयर के साथ शादी करने से खुशी मिली थी । किन्तु ये खुशी ज्यादा दिन टिक न सकी और डॉ. राही को अलीगढ़ युनिवर्सिटी में से निकाल दिया गया । इस बात से राही के जीवन में अंधेरा सा आ गया । राही ने कुछ काम करना चाहा, अतः बम्बई को अपना कार्यक्षेत्र बनाया । उस समय 'बरसात की रात' नाम की फिल्म बनानेवाले आर. चन्द्रा अलीगढ़ के थे । वे जान पहचान वाले थे, इसलिए आर. चन्द्रा ने अपनी नयी फिल्म 'मुशायरा' लिखवाने के लिए डॉ. राही को बम्बई बुलाया । फिल्मी जीवन में आने से

राही के व्यक्तित्व में परिवर्तन आ गया और उनकी अभिलाषाएँ दब गई, क्योंकि फिल्मी जगत में उनका कोई मूल्य न था। राही आकर्षक व्यक्तित्ववाले, मीठे बोल बोलनेवाले और एक प्रतिभाशाली कलाकार होने के नाते अपनी सृजनात्मक शक्ति फिल्मी संसार के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए अपनी नींव मजबूत करने लगे। फिल्मों के लिए लेखन कार्य करना स्वयं राही को पसंद था। इस काम को वे पूरी लगन के साथ करते थे। इस समय फिल्मी जगत में अपने अस्तित्व के लिए जगह बनाना आसान न था। बम्बई में राही के मित्रों तथा साहित्यिक मित्र परिवार ने उनकी सहायता की। राही फिल्मी जगत में महान हस्तियों के परिचय में आने लगे। राही ने तीन सौ से अधिक फिल्मों के लिए संवाद लेखन, पटकथा तथा गीत लिखे हैं। जिनमें से पच्चीस जैसी फिल्म सिल्वर ज्युबिली मनाकर हिट हो चुकी है। बम्बई आने के बाद राजखोसला और टी. एन. अरोरा ने अपनी फिल्मों की स्क्रिप्ट इन्हीं से लिखवाई। राज खोसला ने 'रास्ते का पत्थर' फिल्म की स्क्रिप्ट इन्हीं से लिखवाई थी। उस समय अमिताभ इतने प्रसिद्ध स्टार नहीं थे, इसलिए यह फिल्म नहीं चली। फिर भी राजखोसलाने इन पर विश्वास करते हुए 'मैं तुलसी तेरे आँगन की' फिल्म के संवाद लिखवाये। राही की 'अंधा कानून', 'बेमिसाल', 'प्रेम कहानी', 'तवायफ', 'लम्हे', सब फिल्में हिट रही। बी. आर. चौपरा ने राही की लेखनी पर विश्वास करके 'इंसाफ का तराजु', फिल्म के संवाद लिखवाये। फिल्म के अंत में जिन्नत अमान के संवाद सुनने योग्य है। ऋषिकेश मुखर्जी की 'मिली' और 'गोलमाल' तथा यश चौपरा की 'लम्हे' ऐसी फिल्में हैं, जिन्हें लिखकर खूद राही को तसल्ली मिली है। 'लम्हे' राही की आखरी फिल्म रही, जिसे फिल्मी एवोर्ड प्रदान किया गया।

राही ने फिल्मों में 'गोलमाल' जैसी कोमेडी से भरपूर पिक्चर भी लिखी है और करुण रस से भरपूर 'मिली' भी लिखी है। 'मिली' में राही ने अपनी बीमारी की व्यथा को दिखाने का प्रयास किया है। डॉ. राही

प्रतिभाशाली, सृजनशील साहित्यकार थे, किन्तु फिल्म उद्योग से जुड़ने से उनके अन्तर्मन में बसा हुआ एक संवेदनशील लेखक कसमसाकर रह गया । राही फिल्मी संसार से हटकर दर्शकों के लिए लिखना चाहते थे । वह फिल्म को सामान्य जनता तक पहुँचने का माध्यम मानते थे । राही के मतानुसार फिल्म ही वह माध्यम है, जिनके माध्यम से सर्व सामान्य जनता तक पहुँचा जायेगा । इसी कारण राही ने अपने पटकथा संवादों के माध्यम से दर्शकों के साथ इमानदारी से अपना दायित्व निभाया हैं । राही फिल्म में काम करने को घटिया काम नहीं मानते । वह फिल्म के लिए अपना योगदान महत्त्वपूर्ण मानते हैं, इसलिए इस व्यवसाय को वे ‘सेमी क्रियेटिव’ मानते थे । अपने कार्य में व्यस्त होने के बावजूद यदि कोई इन कृतियों पर टिका करता है, तो उनका मन भावुक हो जाता है । राही की फिल्मों के बारे में लिखा है कि “केवल हिन्दी नहीं केवल उर्दू ही नहीं, समस्त भारतीय भाषाओं में राही मासूम रज़ा नाम का व्यक्ति अपने किस्म का अकेला था । इतना बेबाक, इतना साफगो, इतना बड़े दिल का इंसा कि उसमें समूचा हिन्दुस्तान समा सकता था । भाषा, धर्म प्रदेश की सीमाओं से बहुत-बहुत ऊपर एक निपट हिन्दुस्तानी जिसे जिन्दगी भर एक ही अफसोस रहा कि इस देश में हिन्दू मुसलमान सब बहुसंख्यक है । सचमुच में अल्प संख्यक कोई है, तो केवल वह आदमी जो अपने को केवल हिन्दुस्तानी मानता है । कबीर की परंपरा के इस जागरूक लेखक ने समय-समय सबकी खबर ली । भारत की सही संस्कृति यानी मिलीजुली संस्कृति को जिसने एक नया संस्कार दिया और बिरासत में दी एक परम्परा ।”<sup>३०</sup> राही का फिल्मों में आना एक संयोग था । वह किसी भी बंधन में रहना नहीं चाहते थे । उनका फिल्मों में आने का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण बंधन से मुक्ति था । इस सम्बन्ध में वह स्वयं कहते हैं कि “फिल्मों के बारे में तो पहले मैंने सोचा भी नहीं था, इतफाकन से मेरी नौकरी चली गई । ऑल इंडिया रेडियो से नौकरी का ओफर मिला, वह भी मैंने छोड़ दिया ।

इसलिए छोड़ दिया कि मैं बंधन नहीं चाहता था, बंधन में क्यों जीना तुम्ही बताओं ।”<sup>३१</sup> फिल्म इन्डस्ट्री में प्रायः संघर्ष करना पड़ता है । महान से महान व्यक्ति को भी संघर्ष करना पड़ता है । जो भी हो, लेकिन फिल्मों में प्रवेश करने से पहले व्यक्ति को ‘स्ट्रगल’ नाम की चीज से गुजरना पड़ता है । राही के मतानुसार यदि किसी फिल्म में सफलता पानी है, तो उस फिल्म की कहानी को महत्त्व देना पड़ता है । इसलिए वे कहानी को फिल्म की रीढ़ मानते हैं । वे मानते हैं कि कहानी मजबूत है, तो पटकथा मजबूत होगी, और पटकथा मजबूत हो तो संवाद भी मजबूत होंगे । डॉ. राही के मतानुसार लेखकों की दो श्रेणियाँ होती हैं । एक वे होते हैं जो लिखने के लिए लिखते हैं, दूसरे वे जो अपनी बात मनवाने के लिए लिखते हैं । राही बिल्कुल अलग किस्म के लेखक हैं, वो अपनी बात को रचना के माध्यम से बिना डर के कहते हैं ।

डॉ. राही ने हिन्दुओं के धार्मिक ग्रंथ महाभारत पर बनी टी.वी. धारावाहिक ‘महाभारत’ के संवाद लिखे हैं । ‘महाभारत’ टी.वी. सीरियल के संवाद लिखने से उनकी लोकप्रियता का ग्राफ हिन्दी क्षेत्रों में तो उपर गया ही, वे हिन्दी-तत्तर क्षेत्रों में भी घर-घर में सराहे और चाहे जाने लगे । ‘महाभारत’ टी.वी. सीरियल से राही का नाम भारत के कौने-कौने में फैल गया था राही महाभारत को हिन्दुस्तान के तमाम लोगों की साक्षी धरोहर मानते थे । उनके अनुसार महाभारत भारतीय सभ्यता, संस्कृति और नैतिक मूल्यों का अमूल्य खजाना है । देश के करोड़ों लोगों ने महाभारत के प्रसंग सुने थे । अर्थात् राही ने महाभारत सीरियल की चुनौती को पूरी गंभीरता से लिखा, उससे निपटने में कामयाब हुए और कई तरीकों की कई आयामोवाली लोकप्रियता भी पायी । राही के महाभारत सीरियल के संवाद लिखने के कारण हिन्दू और मुसलमान दोनों ने इसका विरोध किया । मुसलमान कहते थे कि मुसलमान होकर ‘महाभारत’ के संवाद लिख रहा है, क्या राही हिन्दू हो गया है ? हिन्दू यह बात बताकर विरोध करते थे कि एक मुसलमान हिन्दुओं के ग्रंथ के संवाद



कैसे लिख सकता हैं । इस सीरियल में राही ने कई संवाद लिखे हैं, किन्तु अपना विवेक नहीं खोया है । द्रौपदी वस्त्राहरण का संवाद हो, या श्रीकृष्ण का जीवन दर्शन । संवाद से पता चलता है कि राही मासूम रज़ा ने 'गीता' और 'महाभारत' का कितने मनोयोग से अध्ययन किया था । इनमें संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के साथ उर्दू की मिठाशभरी रवानगी ने संवादों में चार चाँद लगा दिया है । इस सम्बन्ध में साप्ताहिक हिन्दुस्तान का विचार इस प्रकार हैं । “छोटे परदे की महाभारत ने राही मासूम रज़ा को इस रवि, कवि से एक कदम आगे की राह दिखा दी है और वे सचमुच हमेशा-हमेशा के लिए सबके लाड़ले रचनाकार बन चुके हैं ।”<sup>३२</sup> डॉ. राही अपनी फिल्मों एवं सीरियल के माध्यम से समग्र भारत में अपना नाम छोड़ गये ।

#### ❖ निष्कर्ष :

डॉ. राही का व्यक्तित्व आकर्षक एवं अत्यंत प्रभावशाली था । उनमें नीडरता, धर्मनिरपेक्षता, बिनसांप्रदायिकता, राष्ट्र प्रेम आदि गुण देखने को मिलते हैं । राही को अपनी मातृभूमि के प्रति अपार प्रेम था, इसलिए वह उनका बार-बार उल्लेख करते रहे । राही का समूचा जीवन संघर्षमय रहा है, फिर भी उन्होंने उन समस्याओं का डटकर मुकाबला किया । वे कभी हिम्मत नहीं हारे । राही ने जो भी बात कही वह डंके की चोट पर कहीं, उन्होंने कभी भी किसी की परवाह नहीं की । इस तरह वह स्पष्ट एवं निर्भीक वक्ता भी थे ।

डॉ. राही का स्थान हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण रहा हैं । डॉ. राही ने समाज में जो भी विसंगतियाँ देखी, उन सब का खुलकर वर्णन अपने साहित्य में किया । उनका मानना था कि यदि समाज को सुधारने का जो कोई माध्यम है तो वह है साहित्य । साहित्य के माध्यम से ही समाज में जागरूकता लाई जा सकती हैं । उन्होंने अपने जीवन में जो देखा उनका वास्तविक चित्रण

किया हैं । राही ने काव्य, महाकाव्य, जीवनी, उपन्यास, सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई हैं । उनके साहित्य की एक विशेषता यह रही हैं कि उन्होंने जीवन में जो अनुभव किया उनके आधार पर रचना की, उन्होंने किसी पुस्तक का सहारा नहीं लिया । इसलिए डॉ. राही का समग्र साहित्य आज भी इतना ही महत्व रखता हैं ।

❖ सन्दर्भ सूची :

१. राही मासूम रज़ा एक अध्ययन - डॉ. जिलेदार सिंह, पृ. ८
२. 'आधा गाँव' - डॉ. राही मासूम रज़ा - भूमिका, पृ. ५२
३. 'सीन ७५' - डॉ. राही मासूम रज़ा वसीयत , पृ. ५२
४. 'धर्म युग' - १ मार्च १९६२, पृ. ४६
५. 'धर्म युग' - १ मार्च १९६२, पृ. ४८
६. राही मासूम रज़ा एक अध्ययन - डॉ. जिलेदार सिंह, पृ. १३
७. डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में व्यक्त जीवन दर्शन - डॉ. सुनंदा मग्गीरवार, पृ. ५२
८. डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में व्यक्त जीवन दर्शन - डॉ. सुनंदा मग्गीरवार, पृ. ५३
९. नालंदा शब्द सागर - श्री नवलजी, पृ. १३०६
१०. आचार्य क्षेमेन्द्र 'सुमन' व्यक्तित्व कृतित्व - डॉ. आशा अग्रवाल, पृ. ४४
११. डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में व्यक्त जीवन दर्शन - डॉ. सुनंदा मग्गीरवार, पृ. ३४-३५
१२. डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में व्यक्त जीवन दर्शन - डॉ. सुनंदा मग्गीरवार, पृ. ४५
१३. राही मासूम रज़ा एक अध्ययन - डॉ. जिलेदार सिंह, पृ. १३
१४. 'सीन ७५' - डॉ. राही मासूम रज़ा वसीयत , पृ. ७५-७६
१५. 'ओस की बूंद' - डॉ. राही मासूम रज़ा, आवरण पृष्ठ पर, पृ. ७२
१६. 'धर्म युग' - २५ जनवरी १९६७, पृ. ६
१७. 'मैं एक फेरीवाला' - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. २३
१८. 'दिल एक सादा कागज' - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १२६-१२७
१९. डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में व्यक्त जीवन दर्शन - डॉ. सुनंदा मग्गीरवार, पृ. २११

२०. 'आधा गाँव' – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ११
२१. 'आधा गाँव' – डॉ. राही मासूम रज़ा, प्रकाशकीय पृष्ठ, पृ. ५२
२२. हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य – डॉ. इन्द्रप्रकाश पाण्डेय, पृ. २२५
२३. 'हिम्मत जौनपुरी' – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ५१
२४. 'हिम्मत जौनपुरी' – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १०
२५. 'टोपी शुक्ला' – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १०-११
२६. 'ओस की बूंद' – डॉ. राही मासूम रज़ा, प्रकाशकीय पृष्ठ पर, पृ. ५२
२७. 'सीन ७५' – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १३०
२८. 'नीम का पेड़' – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. २३
२९. 'नीम का पेड़' – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ३१
३०. साप्ताहिक हिन्दुस्तान ५ अप्रैल १९६२, पृ. ५२
३१. धर्मयुग, १ मार्च १९६२, पृ. ४८
३२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान ५ अप्रैल १९६२, पृ. ५४

अध्याय - ३  
“डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में  
सामाजिक चेतना”

- ❖ विषय प्रवेश
- ❖ समाज की संकल्पना
- ❖ सामाजिक चेतना परिभाषा
- ❖ सामाजिक चेतना स्वरूप
- ❖ साहित्यकार की सामाजिक चेतना
- ❖ उपन्यास और सामाजिक चेतना
- ❖ डॉ. राही के उपन्यासों में सामाजिक चेतना
- (क) नारी की विवाहजन्य व अन्य समस्याएँ
  - आंतरजातीय विवाह
  - दहेज प्रथा
  - विधवाओं की दयनीय स्थिति
  - बहुपत्नित्व
  - अनमेल विवाह
  - तलाक की समस्या
- (ख) यौन चेतना
  - स्त्री-पुरुष यौन संबंध
  - अप्राकृतिक यौन संबंध
  - वेश्यावृत्ति

(ग) संबंधों में तनाव और विघटन

- आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व
- असफल दाम्पत्य जीवन
- माता-पिता और संतान
- संतानों के प्रति माता-पिता का अलगाव
- संयुक्त परिवार का विघटन

(घ) नारी का स्वरूप

- शिक्षित आधुनिक नारी
- भोगवादी नारी
- पूरातन विचारोंवाली नारी
- औद्योगिक सभ्यता में शोषित नारी
- विधवाओं की दयनीय स्थिति
- नारी की परंपरागत एवं परिवर्तित सामाजिक स्थिति

(च) अन्य समस्याएँ

- मानव जीवन में मूल्य विघटन
- जातिप्रथा का भेदभाव
- बढ़ती जन संख्या
- पुलिस द्वारा हो रहे भ्रष्टाचार
- महानगरों में फिल्मी जीवन की विकृतियाँ

❖ निष्कर्ष

❖ संदर्भ सूची

## अध्याय - ३

### “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना”

#### ❖ विषय प्रवेश :

साहित्य मनुष्य जीवन की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति हैं । अतः इस अभिव्यक्ति के साथ समसामयिक युगीन एवं भौगोलिक परिवेश साहित्यकार के व्यक्तित्व को प्रभावित करता हैं । साहित्यकार एक प्रबुद्ध, जागरूक व संवेदनशील प्राणी है । वह अपने युग में जीता हैं और युग की अनुभूतियों को अपने ढंग से अभिव्यक्त करता हैं । साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों को देखता हैं एवं युगीन समस्याओं से परिचित होता है और समस्या के समाधान के रूप में नये निष्कर्ष निकालता हैं । उसके लिए सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों से अलग होकर साहित्य रचना उनके लिए अत्यंत दुष्कर कार्य हैं । किसी व्यक्ति के निर्माण में युगीन परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण व सहायक सिद्ध होती हैं । साहित्य के सृजन में साहित्यकार के संस्कार, पारिवारिक वातावरण, उसके मानसपटल पर अंकित प्रभाव तथा उस प्रभाव के द्वारा निर्मित विचारधारा और मान्यताओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है ।

आज के युग में समाज कई समस्याओं का सामना कर रहा हैं । वैसे आपसी कलह, सांप्रदायिक संघर्षों एवं राजनीतिक नेताओं की अनैतिक महत्त्वकांक्षाओं की क्रीडास्थली में सुरक्षा और सामाजिक भलाई के प्रति आशावान बन जाने का साहस कम व्यक्तियों ने किया है । हालांकि मुंशी प्रेमचंद आदि साहित्यकारों ने समाजोन्मुखी जीवन दृष्टि में उपयोगी एवं हितकर साहित्य की रचना की है । उनके मतानुसार साहित्य समाज परिवर्तन और समाज विकास

का श्रेष्ठ साधन हैं । तात्पर्य यह हैं कि साहित्य ज्ञानवर्धक हैं तथा जीवन को परिष्कृत करने की भावना मात्र से पैदा होता है । साहित्यकार समाज की विभिन्न समस्याओं को जानने का प्रयास करता हैं । समाज में फैली हुई विभिन्न समस्याओं का हल वह साहित्य के माध्यम से ढूँढ़ता हैं । इसलिए साहित्यकार को प्रजापति जैसा दरज्जा प्राप्त हुआ हैं । वस्तुतः साहित्य का उद्देश्य सामाजिक अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, बल्कि साहित्य समाज के लिए एक प्रेरणा शक्ति भी है । साहित्यकार समकालीन समाज की विचारधाराओं का मंथन कर अपने साहित्य में समाज के लिए जीवन दृष्टि प्रस्तुत करता है । डॉ. रजनीकांत के अनुसार “ऐसी रचनाएँ खंड-खंड को अवश्य प्रभावित करती है, लेकिन उनसे पाठकों – दर्शकों की चेतना का विकास नहीं हो पाता ।”<sup>१</sup> सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन लाने की क्षमता साहित्यकार में होती हैं । आज के युग में सामाजिक जीवन खतरों में पड़ गया है, इसलिए भारतियों की सामाजिक चेतना के बारे में सोचने की विवशता भी बढ़ गई हैं ।

आज की सामाजिक व्यवस्था और नियमन पर कई प्रकार के खतरों समय-समय पर पड़ रहे हैं । इन खतरों से बचने के लिए सामाजिक मूल्यों और सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन आता रहा हैं । इस परिवर्तन को सामाजिक चेतना का परिणाम माना जाता हैं । इस संबंध में डॉ. सच्चिदानंद रोय का कथन दृष्टव्य है कि “हर पुरानी व्यवस्था जड़ और निष्क्रिय हो जाने पर बदल कर नई व्यवस्था का रूप ले लेती हैं । अगर ऐसा न हो तो अच्छी व्यवस्था दुनिया का नाश कर दे । व्यक्ति को विकास की ओर उन्मुख नहीं किया जा सकता ।”<sup>२</sup> सामाजिक चेतना को समझने से पूर्व समाज का अर्थ स्वरूप पर प्रकाश डालना आवश्यक हैं ।



### ❖ समाज की संकल्पना :

समाज की संकल्पना पर विचार करते हुए मानव की दृष्टि और मनोभावना पर सोचना आवश्यक हैं। 'समाज' का अर्थ सम-आज के रूप में माना जाता हैं। यानि जो आज 'सम' है अर्थात् बराबर। बराबर का रूप किन्हीं दो तत्वों के युग्म से बनता है। 'समाज' शब्द की उत्पत्ति लेटीन भाषा के 'Societies' धातु से हुई हैं। जिसका अर्थ समाज, संगति, संस्था हैं। भाषा शब्दकोश के अनुसार समाज के अर्थ "समूह, सभा, समिति, दल, वृंद, संस्था, एक स्थान पर रहनेवाला समुदाय।"<sup>३</sup> आदि है। इस तरह "समाज एक स्थान पर रहनेवाला अथवा एक ही प्रकार के कार्य करनेवाले लोगों का दल, किसी विशिष्ट उद्देश्य से स्थापित समूह।"<sup>४</sup> आदि भिन्न अर्थ प्रचलित हैं। समाज विकासशील है, क्योंकि मनुष्य का जीवन ही गतिशील तथा प्रगतिशील हैं। व्यक्ति की तरह समाज भी अपनी केंचुल बदलता रहता हैं और उसका विकास होता रहता हैं।

मानवीय समाज का जाति एवं व्यक्ति से निरपेक्ष अस्तित्व संभव नहीं हैं। अर्थात् जाति और व्यक्ति से समाज का अस्तित्व बनता है। समाज की व्यापकता एवं स्थितियों के अनुसार निरंतर परिवर्तनशीलता आवश्यक प्रक्रिया हैं। परिणाम स्वरूप आधुनिक युग में परिवर्तनशीलता समाज की जरूरत बन गयी हैं। समाज के जो स्थिति हैं, उसकी परिभाषा कठिनाई से ही स्थिर रूप में दी जा सकती हैं। डॉ. पुरुषोत्तम दुबे ने समाज की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कहा है "एक दूसरे के सहारे प्रगतिपथ पर अग्रसर होनेवाले व्यक्तियों का समूह समाज।"<sup>५</sup> इस परिभाषा का संबंध समाज नर-नारी के दाम्पत्य भाव से युक्त परिवारों का समुच्चय हैं। पर परिवार अपने नाते-रिश्ते संबंधों को विकसित करता हुआ एक ओर मानवता को प्रसारित करता हैं, दूसरी ओर मनुष्य द्वारा निर्मित सभ्यता, संस्कृति का निर्वाह करता है। समाज में स्त्री-पुरुष अपनी आवश्यकताओं की पूर्णता के लिए परस्पर एक दूसरे का

सहयोग लेते हैं। इसी आधार पर समाज की परंपरा को अग्रसर करने एवं प्रजोत्पादन के लिए उनकी जरूरत होती है। समाज मानवीय संबंधों का तानाबाना है। जिसके अंदर रहते हुए मनुष्य कभी सहयोग और कभी संघर्ष के द्वारा एक दूसरे से जुड़ जाते हैं, एक दूसरे का आश्रय और सहायता के बिना मनुष्य का अस्तित्व ही नहीं होता। मानव समुदाय के निश्चित संगठन से समाज का निर्माण होता है। समाज मानव की सामूहिक प्रज्ञा की विकसित भौतिक स्थिति का रूप है। समाज का निर्माण करना मनुष्य का नैषर्गिक स्वभाव है। समाज में विभिन्न प्रणाली के कारण समाज विकासशील बनता है। समाज स्वयं में एक विशाल परिवार है। वह केवल व्यक्तियों का संकलन मात्र नहीं है, बल्कि उन व्यक्तियों के समुदाय में परस्पर सहयोग, व्यवहार, भाषा, संस्कृति आदि संपन्न होते हैं। शरीर में विभिन्न अंगों से मिलकर एक शरीर का निर्माण होता है। शरीर के अवयवों में भिन्नता होते हुए भी संबंध हैं, उसी तरह समाज के सारे व्यक्ति स्वतंत्र होते हुए भी परस्पराश्रित हैं और इस स्वस्थ संबंध पर ही समाज का विकास निर्भर है। समाज मनुष्यों के समूह का नाम नहीं, वह मनुष्य के आंतर संबंधों की जटिल व्यवस्था है। जिसके अंतर्गत सामूहिक जीवन की गतिविधियाँ एवं व्यवहार बने रहते हैं। समाज का संबंध चेतन मनुष्य के साथ रहा है। समाज सामाजिक संबंधों का प्राश्न है। मनुष्य की पारस्परिक क्रियाएँ, अंतःक्रियाएँ एवं प्रतिक्रियाएँ ही समाज का निर्माण एवं विकास करती हैं। इसके माध्यम से ही समाज की एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को उसके कल्याण के लिए अपने अनुभव हस्तांतरित करती है।

#### ❖ सामाजिक चेतना-परिभाषा :

सामाजिक चेतना की कोई निश्चित परिभाषा देना संभव नहीं है। सामान्यतः सामाजिक चेतना का अर्थ सामाजिक जागरूकता, विकास एवं

सामाजिक उन्नति के संदर्भ में प्रयोग किया जा सकता है । सामाजिक चेतना को आत्मा का पर्याय माना जाता है । सामाजिक चेतना से अभिप्राय हुआ सामाजिकता की आत्मा अर्थात् उसके वे मूलभूत गुण जिनके कारण सामाजिक चेतना इस संज्ञा से अभिहित होती है । जातीयता, सार्वजनिकता, युग की संघर्षपूर्ण स्थिति की व्यंजकता सबको एक साथ मिलाकर सामाजिक चेतना का नाम दिया जा सकता है । परंपरागत आचार विचारों का परिष्कार कर उन्हें युगीन रूप में प्रस्तुत करने में सामाजिक चेतना निहित है । सामाजिक चेतना सामाजिक बीमारी का निदान कर समाज को सचेत बनाने का प्रयास करती है ।

सामाजिक चेतना अभावात्मक या नकारात्मक नहीं होती । व्यक्ति मात्र में चैतन्य विद्यमान है, किन्तुं रूढ़ि, अशिक्षा, परंपरा के कारण यह दुष्प्रभावित या कुंठित हो जाता है । उस दुष्प्रभाव से दूर रहना और कुंठा को अपनी अंतःवृत्तियों से तिरोहित बनाये रखना ही सामाजिक चेतना है । “समाज की प्रतिकूल परिस्थितियों में जो प्रतिभा आकर्षण दीप्ति बनकर चमक उठे और जिसके प्रभाव से समस्त समाज में जन जागरण की कहर व्याप्त हो उठे उसी को सामाजिक चेतना का वाहक समझना चाहिए ।”<sup>६</sup> जब किसी समाज में परंपरागत मूल धारणाओं में किसी विशेष कारणों से परिवर्तन होता है, उन्हीं विचारधाराओं के आधार पर यह कहा जाता है कि अमुक समाज में एक नवीन चेतना आई है । जब कोई समाज अपने रूढ़िगत विचारों, प्रणालियों को छोड़कर नई दिशाओं में अग्रसर होता है, तब कहा जाता है कि समाज में जागृति आई है । इसलिए सामाजिक चेतना को सामाजिक जागृति भी कहा जाता है । “जब कोई नवीन विचारधारा समाज में प्रवेश करती है और निश्चय सुधार के लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है, तो सामाजिक विचारधारा जागृत होती है । इसी जागृति को सामाजिक चेतना कहा जाता है ।”<sup>७</sup> सामाजिक चेतना अपने से भिन्न अन्य पदार्थों का ज्ञान या संवेदना कराती

है । सामाजिक चेतना का धर्म समस्त मानव समाज का एक सबल हैं । सामाजिक चेतना मनुष्यों की आत्मिक एवं सत्तात्मक एकता का धर्म हैं । वह चेतना सभी में है, इसलिए संपूर्ण मानव समाज इस मूल चेतना का सूचक है । इसलिए आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक शक्तियों तथा समाज के प्रचलित परंपरागत मूल्यों के परस्पर संयोग से जो नयी-नयी स्थितियाँ उत्पन्न होती है, उनकी समझ और विश्लेषणात्मक शक्ति ही सामाजिक चेतना हैं । सामाजिक चेतना समाज में परंपरा से चली आ रही मान्यताओं, रूढ़ियों एवं संस्कारों के कारण कुण्ठाग्रस्त जनता के जीवन में आशा, प्रेरणा, एवं आस्था का दिप प्रज्वलित करने का कार्य करती हैं । सामाजिक चेतना समाज की जागरूकता, विद्रोह निर्माण होने की एक प्रेरणा है । डॉ. सुरेश बत्रा ने साहित्य की सामाजिक चेतना के संबंध में मत प्रतिपादित करते हुए कहा है कि “जब वर्ग वैषम्य इस समाज को पंगु बना दे, परिस्थितियाँ इन्सान को स्वार्थ, साधनहीन बना दे, तब पाप पुण्य की सीमारेखा से परे एवं संवेदनशील आदर्शवादी मानवताप्रिय उपन्यासकार बौद्धिक चेतना से झकझोर उठता हैं ।”<sup>८</sup> इस प्रकार मानवता विरोधी स्थितियों में साहित्यकार की सामाजिक चेतना एक सामान्य अंतः प्रक्रिया हैं । जिसके लिए कम से कम दो व्यक्तियों का होना अनिवार्य हैं । नरेन्द्रकुमार सिंधी ने कहा हैं कि “समाज में अंतःक्रिया एक स्वभाविक घटना है । जब कभी भी दो व्यक्ति आपस में मिलते हैं, वे एक दूसरे का अभिवादन करते हैं तो यह अंतःक्रिया हैं ।”<sup>९</sup> चेतना एक स्थायी चीज हैं । वह काल एवं समय के अनुरूप अपना स्वरूप बदलती हैं । जैसे-जैसे सामाजिक परिवर्तन होगा, परिस्थितियाँ नया रूप धारणकर विडंबनाओं को जानने समझने और तोड़ने की प्रक्रिया सामाजिक चेतना करती है । इसलिए ‘सामाजिक चेतना’ सामाजिक संबंधों तथा सामूहिक अनुभवों की जागरूकता हैं । कोई व्यक्ति जितने अंशों में सामाजिक चेतना को ग्रहण करता है, उतना ही उनका जीवन समाज सापेक्ष होता है । जिस समाज में मनुष्य

अपनी सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक नहीं होते वह समाज प्रगति से ही जैसे पलायन करता हैं ।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता हैं कि आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आंतरराष्ट्रीय शक्तियों तथा समाज के प्रचलित परंपरागत मूल्यों के परस्पर जोड़ने से जो नयी-नयी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उनकी समझ और विश्लेषणात्मक शक्ति 'सामाजिक चेतना' है । सामाजिक चेतना केवल समझ ही नहीं देती, अपितु वह सामाजिक उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती हैं । सामाजिक भिन्नता के कारण सामाजिक चेतना भी भिन्न-भिन्न प्रकार की हो सकती हैं । किन्तु उसमें मूलतः समाज सुधार, सामाजिक प्रगति और सामाजिक उत्थान का ही प्राधान्य रहता हैं ।

#### ❖ सामाजिक चेतना स्वरूप :

चेतना के माध्यम से मनुष्य के बाह्य जगत की वस्तुओं की अनुभूति होती हैं । बाह्य जगत के अंतर्गत पशु, पक्षी, पेड़, पौधे तथा अन्य जीव होते हैं, इसके अलावा मानव की चेतना को निर्धारित करने का वह सबसे प्रबल तत्त्व हैं । मानव मन से उद्भवित चेतना सामाजिक वातावरण में विकसित होती हैं ।

हम जानते हैं कि मानव पहले वृक्षों आदि पर निवास करता था, धीरे-धीरे अनेक आविष्कार हुए । इन सबके पीछे मूलतः सामाजिक चेतना का हाथ रहा हैं । समाज में अपनी सीमाओं में रहते हुए मानव ने अपनी आवश्यकताओं को समझा, उसने अपने आस-पास के वातावरण का भी अध्ययन किया, इससे जो सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक आदि सूझ-बूझ दिखाई दी उसका दूसरा नाम सामाजिक चेतना है । इसके बारे में काल मार्क्स ने कहा हैं “चेतना आरंभ से ही एक सामाजिक उपज है और वह तब तक

ऐसी बनी रहेगी । निःसंदेह चेतना प्रथमतः तत्कालीन इन्द्रिय ग्राह्य परिवेश से सारोकार रखनेवाली चेतना मात्र है और अन्य व्यक्तियों तथा आमचेतना विकसित करनेवाले व्यक्तियों के बहिर्गत के साथ सीमित संबंध की चेतना है । साथ ही वह प्रकृति की चेतना है, जो आरंभ में अनुष्यों के सामने ही सर्वथा विजातीय सर्वशक्तिशाली अविजेय शक्ति के रूप में प्रगट होती हैं ।”<sup>१०</sup> यह बात निःसंदेह है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी बनकर समाज की परंपरा को चुपचाप स्वीकार करके समाज की भलाई नहीं कर सकता । ऐसा व्यक्ति सामाजिक चेतना जागृत करने में असमर्थ हो जायेगा । साहित्यकार साहित्य के माध्यम से सामाजिक विडंबनाओं को पहचान कर उस विडंबनाओं का वर्णन साहित्य में करता है, जिसके माध्यम से सामाजिक चेतना जागरूक होती हैं । एक जागरूक और सचेत साहित्यकार इस कार्य को कर सकता है । सामाजिक चेतना वैयक्तिक और सामाजिक इन दोनों आयामों को उभारने की क्षमता की उम्मीद रखती हैं ।

सामाजिक चेतना के लिए कोई निश्चित मापदंड नहीं है, क्योंकि वह परिवर्तनशील हैं । सामाजिक चेतना का मूलतः अर्थ होता है, मनुष्य के सामूहिक व्यवहार में परंपरा प्राप्त मूल्यों से भिन्न मूल्यों की प्रतिष्ठा जो सामाजिक प्रगति में सहायक बन जाए । जिससे काल विशेष की जीवन संबंधी परिस्थितियों के कारण व्यक्ति के सामाजिक जीवन और सामाजिक समस्याओं के प्रति जो रुख बदलती हैं, वही ‘सामाजिक चेतना’ हैं । सामाजिक चेतना समसामयिक सामाजिक समस्याओं से अनिवार्यतः संबंध रखती है । इस सामाजिक चेतना में व्यक्ति की वैयक्तिक चेतना भी शामिल रहती हैं । सामाजिक चेतना का निर्माण और विकास में काफी समय लगता है । किसी भी प्रकार के सुधार को आसानी से स्वीकार करने के लिए समाज भी तैयार नहीं होता, लेकिन जब ऐसे सुधार से प्रभावित होता है, तब वह ‘सामाजिक चेतना’ के रूप में प्रकट होती हैं ।

चेतना एक स्थायी चीज नहीं है, वह काल और समाज की गति के साथ अपना स्वरूप बदलती रहती है। हम जानते हैं कि प्राचीन समय में नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। उनको कई समस्याओं का सामना करना पड़ता था, जैसे कि सतीप्रथा आदि। किन्तु आज हम जानते हैं कि उसमें परिवर्तन आया है। आज की नारी कमजोर नहीं है, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं, जहाँ नारी न हो, वही 'युग चेतना' है। आजकल सामाजिकता और सामाजिक चेतना का कोई निश्चित प्रतिमान नहीं है। क्योंकि सामाजिक चेतना एक ऐसी भावना है, जिसके साथ व्यक्ति शांतिपूर्वक अपना जीवन बिता नहीं पाता, लेकिन इस भावना के बिना तो व्यक्ति रह ही नहीं सकता।

#### ❖ साहित्यकार की सामाजिक चेतना :

साहित्यकार समाज का सदस्य होता है। स्वयं से संबंधित देशकाल गत भीतरी एवं बाहरी परिस्थितियों का वह भोक्ता होता है। जीवन यापन करते हुए कुछ जो भी संघर्षमय अनुभव प्राप्त करता है, उसका बोध के माध्यम से, साहित्य के माध्यम से वह सर्जन करता है। डॉ. रामजी तिवारे के अनुसार 'समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी-से छोटी चेतन क्रिया किसी न किसी रूप में सामाजिक हुआ करती है।'<sup>99</sup> साहित्यकार का समाज के साथ किसी न किसी रूप में संबंध होता है। साहित्यकार समाज से प्रभावित होता है, वह समाज को जाँचता है, परखता है और अध्ययन करता है। जीवन के प्रत्येक लघु-बृहत पक्ष एवं भाग पर गहन विचार चिंतन करते हुए साहित्यकार इन स्थितियों से टकराकर सर्वकालिक जीवन मूल्यों अथवा सत्यों का अन्वेषण करता है।

साहित्य सर्जन के मुख्य हेतु के रूप में सामाजिक चेतना उसे झँकझोरती है, उसे द्वंद्वग्रस्त करती है, उसे चिंतनशील भी बनाती है और वही उसके सर्जन की ताकात बन जाती है। इसी सजग सामाजिक चेतना के सहयोग से

वह साहित्य में बाह्य जीवन के पदार्थ को अधिक सुधार के साथ व्यवस्थित और जीवनोपयोगी रूप में चित्रित करता है। साहित्य सृजन में साहित्यकार की समाज चेतना की भूमिका को समझने में आचार्य शुक्ला की साहित्य के विकासशील रूप को सामाजिक विकास की परिणति के रूप में सामने लानेवाली धारणा दृष्टव्य है। उनके शब्दों में “प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है। तब वह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है ..... जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनैतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है। अतः कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का दिग्दर्शन भी आवश्यक होता है।”<sup>92</sup> साहित्य में जनता की चित्तवृत्ति के दोनों पक्ष व्यक्त होते हैं। इस तरह साहित्य के विकास में समाज और चेतना के विकास के साथ-साथ निरंतरता की भी अभिव्यक्ति होती है और इस प्रकार साहित्यकार की चेतना को अभिप्रेरित एवं अनुप्राणित करने में व्यक्तिगत अनुभव के साथ-साथ समाज, परिवेश व परिस्थितियों के साथ-साथ परंपरा और इतिहास का भी प्रभाव रहता है, इसकी अभिव्यक्ति ही किसी साहित्यकार की समाज चेतना कही जा सकती है।

साहित्य समाज की अक्षय धरोहर है। वह चिरस्थायी है। डॉ. भगीरथ मिश्र की दृष्टि से “समाज की जीवनधारा में साहित्य का विकास कमलवत् होता है, समाज के तत्त्व का परिणाम साहित्य का नवनीत है। समाज में शरीर का मुख साहित्य है। ..... वह समाज की धरती पर उगनेवाले जीवन का फूल है। वह समाज की बुद्धि का परिणाम और अनुभव अनुभूति का सार है। साहित्य समाज की सृष्टि होता हुआ भी अपने निजी समाज की सृष्टि करता है।”<sup>93</sup> इस प्रकार साहित्यकार समाज जीवन को अनुभूत करते हुए समाज से सामाजिक बोध ग्रहण करता है। यह बोध जब विशिष्ट विचारधारा, विशेष चिंतन, विशिष्ट दृष्टिकोण तथा महत्तम सौन्दर्यबोध, सौन्दर्य



चेतना के अर्थ में अभिव्यक्त होता है, तो उसे साहित्यकार की 'सामाजिक चेतना' कहा जाता है ।

साहित्यकार का कार्य यथार्थ जीवन को प्रतिबिम्बित करना है, इसलिए उसे प्रजापति माना जाता है । वस्तुतः साहित्य का उद्देश्य सामाजिक अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, बल्कि साहित्य समाज के लिए प्रेरणा शक्ति है । जो साहित्यकार जीवन दृष्टि के निर्माण एवं संघर्ष पर बल नहीं देता, उसकी रचना में प्रस्तुत जीवन मांस के लोथड़े के समान होता है, जिसमें चेतना नहीं होती । सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन लाने की क्षमता साहित्यकार में होती है । सामाजिक चेतना का एक कारण अर्थ की प्रधानता और जीवन की दयनीयता है ।

#### ❖ उपन्यास और सामाजिक चेतना :

उपन्यास सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साहित्य विधा है । उपन्यास तत्कालीन समाज का युग की परिस्थितियों तथा जन जीवन के चित्रण का सर्वश्रेष्ठ साधन तथा माध्यम हैं । उपन्यास में जीवनगत सबकी अवधारणा ठीक-ठीक संभव हैं । उपन्यास अपने एक कलेवर में मानव जीवन की संपूर्णता तथा समग्रता की हर दृष्टि से अभिव्यक्ति प्रदान कर सकता है । उपन्यास में किसी के जीवन की सभी घटनाओं या किसी एक घटना का वर्णन किया जाता है । उपन्यास समाज का चित्र प्रस्तुत करता है । वह मानव मन की गहराईयों में, मस्तिष्क की प्रत्येक परत में होनेवाली क्रियाओं को भी पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत करता है । उपन्यास की इसी शक्ति और व्याप के क्षेत्र के कारण हम 'चन्द्रकान्ता संतति' को भी उपन्यास मानते हैं । उपन्यास समाज की वास्तविक समस्याओं को पहचानकर, उन समस्याओं से समाज को अवगत कराकर, समाज का पथदर्शन करता है । आज के आधुनिक युग में मनुष्य का जीवन वेग-सा हो गया है । ऐसी स्थिति में लेखकों का धर्म होता है कि वह व्यक्ति में मूल्यों की चेतना का प्रसार करे । सामाजिक चेतना को सुदृढ़ करने की रीति

उपन्यास के माध्यम से संभव हो सकती है। उपन्यास युगीन परिस्थितियों का चित्रण कर सकता है। नवल किशोर ने ठीक ही लिखा है कि “उपन्यास आधुनिक युग की वास्तविकता के चित्रण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है।”<sup>१४</sup> किसी देशकाल की संस्कृति की झलक तत्कालीन प्रणीत साहित्य में स्पष्ट देखी जा सकती है।

साहित्य हमारे जीवन का, मानव समाज का, यथार्थ एवं जीवन्त इतिहास है। निःसंदेह एक साहित्य विधा के रूप में उपन्यास मानव जीवन के निकटतम होने से समाज जीवन को अधिक यथार्थता से प्रस्तुत करता है। उसमें जीवन के विभिन्न अंगों का सूक्ष्म विवेचन रहता है। अपनी भिन्न रुचि और योग्यता के अनुसार ही पाठक उपन्यासों का चुनाव करता है, लेकिन अतित की अपेक्षा वर्तमान का चित्रण करने से उपन्यासों में सामाजिकता की दृष्टि होती है। सामाजिक मूल्यों का आस्थापरक चित्रण करने से ही उपन्यासकार अभिमुख होता है। उपन्यासों में समकालीन मनुष्य को उसकी जिन्दगी की हकीकत समेत ग्रहण करके चित्रण किया जाता है। इस प्रकार के रचनाकारों को लगता है कि मनुष्य की गहरी पीड़ाओं से ही मनुष्य का कल्याणकारी रास्ता निकलता है और वह निरंतर ऐसे रास्तों का अन्वेषण करता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कहा जाता है कि “आज का उपन्यासकार ऐतिहासिक, सामाजिक या राजनीतिक उपन्यास नहीं लिखता, वह उनके माध्यम से आधुनिक, सामाजिक व्यक्ति चेतना को परखता, प्रतिष्ठित करता और उनका मूल्यांकन करता है।”<sup>१५</sup> हिन्दी उपन्यास में परंपरागत जीवन मूल्यों के विघटन की आवाज सुनाई पड़ती है। संयुक्त परिवार का विघटन इत्यादि जीवन मूल्य-संघर्ष से उपन्यास में बड़ा परिवर्तन नजर आता है। हिन्दी उपन्यास की सामाजिक चेतना और प्रबल होने के कारण उनमें परंपरागत मूल्यों की स्थापना पर बल दिया जाता है, तो कहीं इन मूल्यों के प्रति विद्रोहात्मक भावना भी दिखाई देती है। सामाजिक चेतना के सानिध्य से ही

उपन्यास जनता का साहित्य बन जाता हैं । उपन्यास में सामाजिक चेतना का महत्त्व बताते हुए बसन्ती पंत ने लिखा है कि “आधुनिक साहित्य की विभिन्न विधाओं में सामाजिक चेतना और युगबोध की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति उपन्यास के माध्यम से हुई है । प्राचीनकाल में व्यक्ति जीवन की निष्ठाओं, सामाजिक जीवन के उदात्त संकल्पों, राष्ट्रीय जीवन के विकासशील चेतन स्तरों और विश्वजनित, सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना का कार्य महाकाव्यों के माध्यम होता था, किन्तु आज ये सभी कार्य उपन्यास की रचना द्वारा सम्पन्न होते हैं । इसलिए उपन्यास को गद्ययुग का महाकाव्य कहा जाता है ।”<sup>96</sup> हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना युगानुरूप परिवर्तित होती रही हैं । स्वतंत्रता के पूर्व उपन्यासों की ‘सामाजिक चेतना’ समाज या व्यक्ति के अंधविश्वासों और अत्याचारों पर आधारित थी, किन्तु स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक भ्रष्टाचारों से भी जुड़ गई । इसलिए इसका चित्रण तत्कालीन उपन्यासों में हुआ है । इसका कारण यही कि “सामाजिक चेतना से युक्त उपन्यासों में प्रायः समाज की अभिव्यक्ति व्यक्ति के माध्यम से ही की जाती है, व्यक्ति विशेष का चित्रण करते हुए भी लेखक का ध्यान समाज चित्रण पर केन्द्रित रहता है ।”<sup>99</sup> किसी भी उपन्यास में उपन्यासकार प्रत्येक पहलू का आत्मीयता से चित्रण करता है, तभी उपन्यास गंभीर और रचनात्मक होता हैं ।

सामाजिक चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों में व्यक्ति समस्या को समाज के परिप्रेक्ष्य में देखने से कृति में सामाजिक चेतना की उपस्थिति होती है । ऐसे उपन्यासों में व्यक्ति की किसी एक समस्या का या जीवन के किसी एक पहलू का चित्रण नहीं किया जाता, इसमें विभिन्न समस्या का समावेश होता है । ऐसे उपन्यासों में समाज की विकृतियों को उभारने और सुधारने का सफल प्रयास होता है । सामाजिक चेतना से युक्त लेखकों का सच्चा कर्तव्य जनसाधारण को असामाजिक विचारधाराओं के घेरे से बाहर रखना होता हैं । उनका कथ्य क्या होता है – इस सम्बन्ध में यह मत स्वीकार्य रहेगा ।

“सामाजिक चेतना युक्त उपन्यासों का कथ्य जीवन को सामाजिक दृष्टि से देखना है, जीवन का विवेचन विश्लेषण सामाजिक दृष्टि से करना है और जीवन मूल्यों की स्थापना समाज के माध्यम से करना है।”<sup>95</sup> साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा उपन्यासों में जीवन की यथार्थता, सत्यता, आवश्यकताओं और संभावनाओं तथा नैतिक मूल्यों का निरूपण ज्यादा रहता है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में सामाजिक जीवन के अनेक आयामों की अभिव्यक्ति हुई है। विचारों को कथा के जरिए प्रकट करने से भावसंसार का स्पर्श उपन्यास को संप्रेषणीय बना देता है।

#### ❖ डॉ. राही के उपन्यासों में सामाजिक चेतना :

साहित्यकार समाज का सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी है। इसलिए वह अपने युग की विचारधाराओं से जल्दी ही परिचय प्राप्त कर लेता है। युगीन विचारधारा और युगीन परिस्थितियों के बीच गहरा संबंध होने के कारण साहित्यकार के लिए सामाजिक परिस्थितियों की उपेक्षा करना नितान्त असंभव बन जाता है। सामाजिक चेतना में संपूर्ण समाज की आस्थाएँ, विश्वासों, आचार-विचारों और कमजोरियों के सहज दर्शन होते हैं। साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक चेतना को लोगों तक पहुँचा देता है। वह बदलती हुई सामाजिक चेतना का वाहक बनता है।

किसी भी रचनाकार की सामाजिक चेतना का महत्वपूर्ण आधार समसामयिकता तथा यथार्थता की पहचान है। समसामयिक जीवन यथार्थ की पहचान रखनेवाला रचनाकार जनजीवन को उसके व्यापक रूप में देखता है, समझता है और अभिव्यक्त करता है। ऐसी अभिव्यक्ति के लिए उसे समाज की पूरी और गहरी जानकारी की आवश्यकता रहती है। ऐसी अभिव्यक्ति का उद्देश्य सामाजिक जीवन की अव्यवस्था, संघर्ष और असहयोग को दूर करके व्यवस्था, सामंजस्य एवं सहयोग उत्पन्न करना है। सामाजिक चेतना से

प्रभावित साहित्यकार निजी अनुभवों के आधार पर सामाजिक दबावों, परिवर्तन की गतिविधियों और सामाजिक ढाँचे की पारस्परिकता के साथ अभिव्यक्त करता है। सामाजिक स्थितियाँ और समस्याओं का चित्रण करनेवाले लेखक समाज की पूरी प्रगति को ध्यान में रखकर आगे बढ़ता हैं।

डॉ. राही मासूम रज़ा ने अपने साहित्य में और खास करके उपन्यासों में सामाजिक चेतना को उभारने का प्रयत्न किया है। डॉ. राही ने समाज की परिस्थितियाँ, परंपरा आदि का बखूबी देखा और उसके आधार पर उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से उन सब परिस्थितियों, समस्याओं, समाज की विडंबनाओं आदि को समाज तक साहित्य के माध्यम से पहुँचाने का कार्य किया है। डॉ. राही ने अपने समूचे जीवन में कई संघर्षों को स्वयं झेला है। उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियाँ, मान्यताएँ, लेखकीय अभिरूचि तथा अनुभूतियों के आधार पर ही उनकी सामाजिक चेतना को रूपायित किया हैं। डॉ. राही के अधिकतर उपन्यास सामाजिक चेतना से ओतप्रोत है। इसका मूल कारण समाज में जन-जीवन में काफी परिवर्तन आया है, इसी परिवर्तन ने उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति दी। वे समाज में दिखाई देनेवाली समस्याओं, घटनाओं के बारे में सोचते हैं और एक संवेदनशील लेखक की दृष्टि से उन सारे विषयों पर लिखते भी हैं और अपनी बात को आम जनता तक पहुँचाते हैं। राही के उपन्यासों में सामाजिक चेतना निम्नांकित रूप में देखी जा सकती है। यथा –

**(क) नारी की विवाहजन्य व अन्य समस्याएँ :**

नारी परिवार व समाज की रीढ़ होती है। अतः सामाजिक दृष्टि से उसका स्थान श्रेष्ठ माना जाना चाहिए, लेकिन भारतीय समाज में नारी की स्थिति दयनीय हैं। समाज के सारे नीति-नियम, धर्म-कानून व प्रतिबन्ध केवल नारी के लिए बने हुए हैं। परिणाम स्वरूप भारतीय समाज में नारी

अनेकानेक समस्याओं से ग्रस्त रही है । एक ओर पुरुषों को स्वच्छंद जीवन भोगने के लिए अनेक सामाजिक सुविधाएँ उपलब्ध रही, दूसरी तरफ नारी घर की कारा में बंध पुरुषों के हाथ की कठपुतली बना दी गई । प्राचीन धर्म-शास्त्रों ने तो नारी के अस्तित्व को मिटाकर उसके साथ कम अन्याय नहीं किया । समाज तथा परिवार में नारी को पुरुषों की तुलना में हेय समझकर उन्हें समानाधिकारों से वंचित रखा गया । फलतः उनमें हीन-भावना सम्पूर्ण जीवन बनी रही और सामाजिक अत्याचार मौन रूप से सहती रही । अज्ञान व अंधकार की चार दीवारी में बंद नारी बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, दहेज प्रथा जैसी कुत्सित सामाजिक बुराइयों के नीचे दबी हुई हैं । भारतीय समाज में नारी एक ऐसे संदर्भ के रूप में समझी जाती है, जो अपने चारों ओर की विभिन्न समस्याओं, अनुत्तरित प्रश्नों एवं ढेर सारी यातनाओं से ग्रस्त है । नारी की समस्याओं में ज्यादातर विवाहजन्य समस्याएँ अधिक हैं । जैसे -

### ➤ **आंतर्जातीय विवाह :**

आंतर्जातीय विवाह लड़का-लड़की के परस्पर भावात्मक संबंधों का परिणाम होता है । शहरों में शैक्षणिक चेतना के परिणाम स्वरूप ऐसे विवाह सम्पन्न होने लगे हैं । गाँवों में ऐसे संबंधों पर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है, क्योंकि यहाँ अभी परंपरागत और रूढ़िवादी मानसिकता के लोग एक जाति से दूसरी जाति में विवाह को सामाजिक स्वीकृति नहीं देते, भले ही लड़के-लड़की में प्रेम हो ।

आंतर्जातीय विवाह आधुनिक सामाजिक चेतना का एक महत्वपूर्ण पहलू है । बीसवीं शताब्दी के आरंभिक चरण में इस प्रकार के वैवाहिक संबंध सामाजिक दृष्टि से पाप समझे जाते थे । परंतु अब समाज बहुत बदल गया है । समाज में जागरूकता आ गई है । आंतर्जातीय विवाह अब बुरे नहीं माने

जाते । हिन्दू, मुसलमान या इसाई पत्नी, इसाई या मुसलमान पति और हिन्दू पत्नी ऐसे जोड़े अब दिनोंदिन क्रमशः बढ़ रहे हैं और उनमें अधिकांश सुखी-संतुष्ट और आबरुदार, बाल-बच्चेदार हैं । लेकिन समस्या यह है कि समाज अभी पूर्ण रूप से स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाया है । आज भारत का आधुनिक समाज विधवा विवाह और आंतरजातीय विवाह को सिद्धांत रूप में ही स्वीकार कर रहा है, पर व्यवहारिक रूप में समाज में उसकी प्रतिक्रिया सामान्य नहीं होती । वर्तमान सामाजिक संदर्भ में आंतरजातीय विवाह की स्थिति पर डॉ. राही ने अपने उपन्यासों के माध्यम से चेतना लाने का प्रयास किया है । ‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में हिन्दू-मुसलमान के बीच के आंतरजातीय विवाहों का बखूबी वर्णन किया है । डॉ. राही अपने उपन्यासों से समाज को बताना चाहते हैं कि विवाह के लिए किसी भी प्रकार के बंधन नहीं होते हैं । उनके लिए प्रेम ही महत्वपूर्ण होते हैं । उनके उपन्यासों में कई पात्र हैं, जो आंतरजातीय विवाह करते हैं । जिससे समाज में नवजागृति लाने का प्रयास किया गया है । ‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में सलमा का विवाह रेवती से होता है । दोनों आपस में प्रेम करते हैं, किन्तु दोनों के बीच में जातिवाद का भेदभाव दिवार रूप बनता है । किन्तु अब्बास के विवाह के प्रति दृष्टिकोण से दोनों का विवाह संपन्न होता है । अब्बास समाज की परवाह किये बिना दोनों के प्रेम को स्वीकार करके आंतरजातीय विवाह का उदाहरण प्रस्तुत करता है । वह प्रेम और विवाह को कुदरत निर्मित मानता है । उसके लिए प्रेम किसी भी प्रकार का बंधन स्वीकार नहीं करता, वह बताता है कि – “उसके लिए इश्क सबसे बड़ा था और जहाँ तक इश्क का सवाल है अब्बास जानता था कि इश्क पोस्टल ऐड्रेस नहीं पूछता पर वह हमेशा ठीक पते पर पहुँच जाता है ।”<sup>१६</sup> इसके साथ-साथ राही की ‘बर्क औरंगाबादकर’ की कहानी में भी इस तरह के आंतरजातीय विवाह देखे गये हैं । बर्क औरंगाबादकर की माँ वैष्णव थी, किन्तु पिता मुसलमान था और दोनों का दाम्पत्य जीवन सुखमय रहा था

। इसका कारण यही था कि दोनों में से किसी के मन में धर्म परिवर्तन करने का ख्याल नहीं आता और न किसी ने एक दूसरे पर दबाव डाला । डॉ. राही के पात्रों में आंतरजातीय विवाह के प्रति हकारात्मक दृष्टिकोण है । समाज में इस तरह के विवाह के लिए राही ने समाज में एक चेतना लाने का कार्य किया है । साथ ही साथ कई ऐसे पात्र भी हैं, जो इस तरह के आंतरजातीय विवाह के पश्चात कई संघर्षों का सामना करते हैं इसमें तुकाराम और जन्नत भटियारी एक दूसरे से प्रेम करते हैं, किन्तु दोनों की अपनी जाति अलग है इस बात से अपरिचित है । विवाह के बाद पता चलने पर दोनों के बीच तनाव सा आ जाता है । आंतरजातीय विवाह के कारण आजकल की नयी पीढ़ी को किस तरह का संघर्ष करना पड़ता है – वह इन दो पात्रों के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया है । तुकाराम मराठा है और जन्नत मुसलमान हैं । किन्तु दोनों ही समाज से डरते हैं, क्योंकि यदि समाज में इस बात का पता चलेगा तो इज्जत मिट्टी में मिल जायेगी । इससे दोनों जीवन में संघर्ष करते हैं । “न वह मुसलमान पत्नी को लेकर अपने गाँव जा सकते थे और न जन्नत आगरे को यह बता सकती थी कि उसका पति एक मराठा हिन्दू है ।”<sup>२०</sup> इस तरह की व्यथा के बावजूद दोनों ही अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं और एक दूसरे से प्रेम करते हैं । जन्नत के मन में शंका रहती है कि मुसलमानों को पता चल गया तो क्या होगा ? यदि पता चल गया तो नाक कट जायेगी । किन्तु तुकाराम जन्नत से सच्चा प्रेम करता है । इसलिए वह नहीं चाहता था कि जन्नत की नाक कट जाये और जन्नत की बेइज्जती हो । दोनों ही अपनी तरह से जिन्दगी जी रहे हैं, दोनों ही इस तरह के धार्मिक बंधनों को तोड़ने की कोशीश करते हैं । यहाँ तक कि उनकी औलाद को मुसलमान का ही दरज्जा मिलता है । यहाँ डॉ. राही का आंतरजातीय विवाह के प्रति उदार दृष्टिकोण देखने को मिलता है ।



‘हिम्मत जौनपुरी’ उपन्यास में भी हिम्मत के परदादा ने मुसलमान बेगम बीबी के साथ शादी की थी। बेगम निम्नजाति की थी, फिर भी उन्होंने शादी की। बेगम निम्नजाति की पहली औरत थी, जिनको बीबी का दरज्जा मिला था। आन्तर्जातीय विवाहों की परंपरा पहले से ही चली आ रही है और समाज अब उनको स्वीकारने लगा है। आन्तर्जातीय विवाह संबंधी विविध पक्ष को स्पष्ट करके बताया गया है कि ऐसे विवाह में पति-पत्नी दोनों ही अपने इस तरह के धार्मिक बंधनों को नजर अंदाज करके अपना सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। ‘ओस की बूँद’ उपन्यास में शिवनारायण जो विवाहित है, किन्तु पहली पत्नी का निधन हो जाने के बाद पुनः विवाह करना चाहता है। वह ‘शहला’ से विवाह का प्रस्ताव रखता है। किन्तु ‘शहला’ मुसलमान है। इसलिए इन दोनों का विवाह नहीं हो सकता था, अपितु शिवनारायण ‘शहला’ से शादी करने के लिए अपना सबकुछ छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है, उनके शब्दों में “मैं तुम्हारे लिए घर-बार, माता-पिता, बाल-बच्चे सबको छोड़ दूँगा।”<sup>२१</sup> यहाँ पर शिवनारायण को ‘शहला’ के प्रति प्रेम कम और वासना का भाव ज्यादा दिखाई देता है। वह ‘शहला’ के लिए अपना सबकुछ छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है। यहाँ दोनों का धर्म अलग होने के बावजूद शादी करने की सोच रहा है। किन्तु शहला बताती है कि समाज हम दोनों का रिश्ता कैसे स्वीकार करेगा। इस संदर्भ में वह शिवनारायण से प्रश्न करती है “वह हमारे किस मुल्क की रीत है ठाकुर साहब कि लड़कियाँ बिदा होकर दिल में नहीं जाती घर में जाती हैं। आप अपने घर की ईंट है। सिर्फ एक ईंट। और एक घर में हजारों – हजारों ईंट होती हैं, दादा, परदादा, माँ-बाप, चाचा, मामू, भाई, फेमिली, फ्रेंड्स क्या आप के घर की हर ईंट मुझे कबुल करेगी?”<sup>२२</sup> शहला इस तरह विवाह करने के लिए तैयार है, किन्तु उन्हें डर समाज का रहता है, क्योंकि समाज इस रिश्ते को स्वीकार नहीं करेगा। ‘शहला’ के इस प्रश्न में कई तथ्यों पर प्रश्न किया गया है। समाज

की परंपराएँ आंतर्जातीय विवाहों में बाधक होती हैं । परिणाम स्वरूप ऐसे विवाह को विवाह न मानकर इसे स्वीकारा नहीं जाता ।

‘आधा गाँव’ उपन्यास में मजले दादा के अब्बाने जुलाहिन से निकाह किया था, हालांकि मुसलमानों में जुलाहों की निम्नजाति मानी जाती है । इसलिए शिया मुसलमान जुलाहों के साथ नहीं बैठते और यहाँ तक कि उनका छुआ हुआ खाना भी नहीं खाते और नईमा जुलाहिन थी, इसलिए वह सैदानियाँ के साथ नहीं बैठ सकती । ‘नईमा दादी बहरहाल जुलाहिन थी और सैदानियाँ के साथ नहीं रह सकती थी । पुराने जमाने के लोग इसका बड़ा ख्याल रखा करते थे कि कौन कहाँ बैठ सकता है और कहाँ नहीं ।’<sup>२३</sup> आज आंतर्जातीय विवाह हो जाने के बाद भी समाज की रूढ़ियों के कारण स्त्री और पुरुष दोनों को शोषित होना पड़ता है और इसी कारण आज के नवयुवकों में निराशा आ जाती है । डॉ. राही समाज की ऐसी खोखली परंपरा पर करारा व्यंग्य करते हैं । विवाह जैसे पवित्र बंधन के बीच में इस तरह के बंधन से समाज में जागरूकता नहीं आ सकती । जब तक समाज की सोच गलत है, तब तक वह उस बात को कभी भी स्वीकार नहीं करेगा । जमरुद मियाँ ने एक रंडी के साथ विवाह कर लिया था । मिगदाद जमींदार खानदान का लड़का है और वह सैफुनियाँ नाईन से प्रेम करता है । किन्तु इन दोनों के संबंध को उनके घरवाले स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं, क्योंकि दोनों के बीच जातिगत भेदभाव है । सैफुनियाँ नाईन है, इसलिए उनका विवाह नहीं हो सकता । उन दोनों के विवाह में रुकावट लानेवाले वही लोग थे, जिन्होंने आंतर्जातीय विवाह किये थे । फिर भी वही लोग उन विवाह को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं । डॉ. राही ने इस तरह के कथानक के द्वारा आंतर्जातीय विवाह प्रथा पर प्रकाश डाला है । आज के बदलते युग में समाज ने आंतर्जातीय विवाह को स्वीकार किया है । जिससे निम्नजाति के समाज का उत्थान हो रहा है ।

### ➤ दहेज प्रथा :

दहेज प्रथा समाज की एक दीर्घकालीन समस्या है। प्राचीनकाल में दहेज प्रथा को अच्छे रूप में ग्रहण किया जाता था। वे सभी उपहार, धनराशि व वस्तुओं को कन्यापक्ष द्वारा स्वेच्छा से वरपक्ष को बिना किसी दबाव के प्रदान किये जाते थे। वे दहेज की श्रेणी में आते थे, किन्तु आजकल दहेज की इस संकल्पना को बदलते देखा जाता है। आज वह मूल्य वरपक्ष की ओर से तय किया जाता है। विडम्बना यह है कि आज शिक्षा के इतने व्याप के होते हुए भी दहेज प्रथा प्रचलित है। जो लोग अनपढ़ हैं, उसमें इस प्रथा का होना स्वाभाविक है। क्योंकि उनको इसका कोई ज्ञान नहीं है, किन्तु आज पढ़े लिखे लोग भी दहेज प्रथा के प्रति आस्था रखते हैं। आज का बदलता युग भी प्रवर्तमान समय की नयी पीढ़ी में फैले इस दूषण को हटा नहीं सका। दहेज प्रथा से बचने के लिए देश के कई भागों में माँ-बाप बच्ची के जन्म लेते ही मार डालने को बाध्य बन जाते हैं। आर्थिक दृष्टि से व्यक्तियों और संस्थाओं का मूल्यांकन करनेवाले वर्तमान समाज में दहेज की प्रथा अधिक से अधिक मजबूत बनती जा रही है यह आश्चर्य की बात नहीं है। आधुनिक शिक्षित मध्यमवर्ग में जबकि अन्य सभी रुढ़ियाँ अप्रत्यक्ष हो रही हैं, तो दहेज प्रथा भीषण सामाजिक अन्याय होते हुए भी पनप रही है। इसका मुख्य कारण मध्यमवर्ग में दिखाई देनेवाली आर्थिक सुरक्षा की ललक है। उनके पास सिर्फ सीमित आय है। सुख साधनों का अभाव रहता है। फिर भी उनकी अभिलाषाओं की कोई सीमा नहीं रहती। उसकी आर्थिक स्थिति उसे सर्वहारा वर्ग की ओर खींचती है। लेकिन उसकी अभिलाषाएँ उच्चवर्गीय जीवन की होती हैं। ऐसी स्थिति में मध्यमवर्ग अपनी यथार्थ सामाजिक स्थिति की उपेक्षा करके ऐसी सामाजिक प्रथाओं का आधार और भी मजबूत बनाना चाहता है, जिसमें व्यक्ति सुविधानुसार लाभ उठा सके। ऐसी स्थिति में मध्यमवर्गीय व्यक्ति सामाजिक भलाई के बजाय वैयक्तिक लाभ की दृष्टि से सामाजिक संस्थाओं तथा

प्रथाओं का मूल्यांकन करने लगता हैं । इस प्रकार दहेज प्रथा कुप्रथा होते हुए भी अनुप्राणित उपन्यासों में दहेज की इस कुप्रथा का विरोध किए बिना रहना संवेदनशील रचनाकार के लिए संभव नहीं हैं ।

आज मध्यमवर्गीय परिवारों में लड़कियों का विवाह एक विकट आर्थिक समस्या बन गया हैं । कितनी ही युवतियों को इस कुत्सित प्रथा के कारण अपना जीवन नष्ट कर देना पड़ता है । दहेज प्रथा भारतीय समाज के लिए कलंक है । इस कुप्रथा के कारण पारिवारिक एवं सामाजिक संबंधों में गहरी दरारे पड़ती है । आजकल विवाह एक व्यापार बन गया है । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में गुलाम हुसैन लड़की के लिए दहेज की तैयारीयाँ शुरू करते हैं । “सुन त रही कि पाँच थान सोने का और दश थान चाँदी का गहना दे रहे । कपड़बे में परेशानी है । एक दम्में से न उड़ गवा है । परमिट अरमिट बनवाइन न हुए । बाकी देख जुऊन बन जाय तुअन गनीमत है । का जमाना या गवा है ।”<sup>२४</sup> लड़की के पिता होने के नाते इन सब की तैयारीयाँ करनी पड़ती है । गुलाम हुसैन भी दहेज के लिए दूसरे व्यक्तियों की मदद लेता है और दहेज की व्यवस्था करता है । आजकल कई परिवारों में ऐसा भी देखा गया है कि वरपक्ष की ओर से दहेज के लिए कुछ रुपये दिए जाते हैं । जिसके कारण कुछ रुपये के लिए लड़की का सौदा किया जाता है । क्योंकि लड़के में यदि कोई खराबी हो और शादी होना मुश्किल सा हो जाता है, तब इस प्रकार का सौदा किया जाता है और कई लड़कियों के जीवन बर्बाद किये जाते हैं । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में मुइनुद्दीन ऐसा ही पात्र है, जो लड़ाई में अपनी एक टाँग खो देता है और बैसाखियों के सहारे चलता है । मुइनुद्दीन की शादी ५०० अशर्फियों के दहेज में एक जवान लड़की से की जाती हैं । यहाँ पर शादी नहीं, किन्तु ५०० अशर्फियों में एक लड़की का सौदा किया जाता हैं । उसकी पसंद ना पसंद, उम्र आदि का कोई ख्याल नहीं रखा जाता । लड़की के इस दुर्भाग्य को उसकी किस्मत माना जाता है । वह

समझते हैं कि उसकी किस्मत में यही लिखा है । “ऊकी किस्मत में लँगड़े लिखा है त हम कौन खुदा के कारखाने में दखल देनेवाले ?”<sup>२५</sup> समाज की यही परंपरा किसी लड़की की जिंदगी तबाह कर देती है । और फिर भी जो भी कुछ हो रहा है, वह खुदा की इच्छा से हो रहा है । ऐसी सोच से अपने आप को बचाते चलते हैं । डॉ. राही ने ऐसी कुरीतियों का विवरण अपने उपन्यासों में किया है ।

‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में मून्नीबाबू के विवाह का वर्णन करते हुए बताने का प्रयास किया गया है कि यदि माता-पिता के पास दहेज देने के लिए धन हो, तो अनेक त्रुटियाँ के बावजूद भी विवाह हो जाता है । जब मून्नीबाबू की इच्छा न होने पर भी उनको विवाह के लिए दबाव डाला जाता है और दहेज की लालच के कारण उनको मनाने का प्रयास किया जाता है । “डाक्टर साहब बहुत परेशान हुए क्योंकि लड़कीवाले तगड़े आसामी थे । एक लाख नकद, एक मोटर, पाँच शेर सोना, तीन शेर चांदी, डाक्टर साहब ने ऊंच-नीच पर विचार किया और मून्नीबाबू को समझाने का फैसला किया ।”<sup>२६</sup> विवाह की इच्छा न होते हुए भी मून्नीबाबू का विवाह पंडित सुधाकरलाल की इकलौती लड़की लजवन्ती के साथ तय होता है । मून्नीबाबू को केवल दहेज की लालच देकर विवाह के लिए तैयार किया जाता है । उसकी पसंद-नापसंद की किसी को परवाह नहीं है । दहेज के कारण कई स्त्री-पुरुषों का जीवन छिन्न भिन्न हो जाता है । शादी ब्याह, विवाह, एक पारिवारिक एवं सामाजिक व्यवस्था है । किन्तु आर्थिक अभावों के कारण जब कोई परिवार दहेज देने में अक्षम बनता है, तब लड़कीवालों के लिए यही व्यवस्था अभिशाप बन जाती है । ‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में ऐसे परिवार का डॉ. राही ने चित्रण किया है, जो आर्थिक अभावों के कारण अपनी लड़की का विवाह नहीं कर सकता । शम्सू मियाँ जो अपनी लड़की की शादी के लिए परेशान हैं, क्योंकि उनके लिए सबसे बड़ी समस्या है – दहेज । शम्सू मियाँ अपनी बेटी को दहेज के तौर

पर साईकिल, घड़ी, रेडियो आदि देने में असमर्थ पाते हैं। यहाँ पर दहेज के लिए सिर्फ लड़केवालों का परिवार ही कसूरवार नहीं हैं। लड़कीवालों की तरफ से भी प्रोत्साहित किया जाता है। इसका उदाहरण सी.आई.डी. इन्स्पेक्टर अशरफुल्लाह खाँ की पत्नी आलमारा बेगम अपनी इकलौती बेटी शेला के लिए शादी धूम-धाम से करना चाहती हैं और इसका यह सपना पूरा भी होता है। “एक सो दस तो जोड़े दिये। कोई जोड़ा पाँच सो से कम का नहीं था। पन्द्रह सेट गहनों के कि कोई सेट महीने में दोबारा न पहनना पड़े। फिर पुरानी तर्जवाले खानदानी जेवर अलग कि फिर उनका फैशन आ गया है। तो आलमआरा बेगम की दुदिया सासवाला तौरल, गुलूबन्द, पाकृतवाला जौशन और दस्तबन्द जड़ाऊ पात-बालियाँ और कंगन, मोतियों का सतलड़ा.... चाँदी के सब बर्तन तो खैर दिये ही जायेंगे। इल्हा को एक बार और प्लेटिनम का सिगरेटकेस तो देना ही पड़ेगा। फिर बारातवालों का जोड़ा। बर-बिरादरी, पुराने नौकर-चाकर सात आँठ लाख से कम खर्च नहीं होगा।”<sup>२७</sup> यहाँ दहेज की परंपरा को बढ़ावा देनेवाले ऐसे परिवारों के कारण अन्य को भी दहेज प्राप्त करने की लालसा लगती है। परिणाम स्वरूप समाज के सभी वर्गों को इस समस्या का सामना करने के लिए विवश होना पड़ता है।

दहेज की समस्या समाज के लिए अभिशाप समान है। दहेज के कारण निम्नवर्ग के जो परिवार हैं, वो अपनी बेटियाँ शादी करने की उम्र की हो जाने के बावजूद भी दहेज के कारण शादी करना असंभव सा हो जाता है। ‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में डॉ. राही ने ऐसे ही पिता की व्यथा का वर्णन किया है। शम्सू मियाँ मध्यमवर्ग के व्यक्ति हैं। उनकी एक बेटी महनाज छोटी-सी उम्र में विधवा हो जाती है। महनाज का इस तरह का दुःख देखा नहीं जाता। अतः वह उनका पुनः विवाह करने की सोच रहे हैं। किन्तु उनके पास दहेज देने के लिए कुछ भी नहीं और बिना दहेज महनाज की शादी होना असंभव है। “लड़की पसन्द आयी, लड़की का बाप पसंद न आया। उन

सभन का कहना भी ठीक है । कुंआरी लड़कियाँ रद्दी के भाव मिल रही तो, बेवा लड़की और ऊ भी इ बच्चे की माँ से कोई काहे को मुफ्त में बिआह करे ? और भैया, हम हथघड़ी-रेड़ियो कहाँ से दे दहेज में ?”<sup>२८</sup> शम्सू मियाँ इसी मानसिक द्वन्द्व में जी रहे हैं कि दहेज के लिए ये सब चीजें कहाँ से लाये । शम्सू मियाँ जैसे ऐसे कई पिता हैं, जो समाज की इस तरह की खोखली परंपरा के आगे विवश हो जाते हैं ।

### ➤ *विधवाओं की दयनीय स्थिति :*

भारत देश परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है । लेकिन कुछ परंपराएँ ऐसी हैं, जो समाज की प्रगति में बाधक हैं । सतीप्रथा, विधवा समस्या, बाल विवाह आदि प्रथाएँ ऐसी ही हैं, जो नारी जीवन के लिए अभिशाप हैं । आज समाज में किसी भी स्त्री के लिए विधवा होकर जीना कष्टदायक बन गया है । कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकांश विधवाएँ बड़ा ही संतुष्ट व नारकीय जीवन जीने को विवश होकर मूक बनकर अंदर ही अंदर घूटती रहती हैं । विधवाओं से समाज के जो हक्क होते हैं, वह छीन लिये जाते हैं । उनका घर से बाहर निकलना वर्जित हो जाता है । विधवा स्त्री को कुसगुनी माना जाता है । अतः किसी भी शुभ कार्य में विधवाओं को शरीफ नहीं किया जाता । ‘आधा गाँव’ उपन्यास की उन्मूल हबीबा शादी के तीसरे दिन ही विधवा हो जाती है । विधवा होने के साथ ही समाज की झूठी परंपरा उन पर थोप दी जाती है । ‘उन्मूल हबीबा शादी ब्याह के मौको पर अछूत हो जाती थी । कँदूरी के फर्श पर उसकी परछाई नहीं पड़ सकती थी । दुल्हन के कपड़ों को वह छू नहीं सकती थी । यहाँ तक कि दूसरों की शादी के गीत सुनते-सुनते उसके बाल कब्ल-अज-वक्त सफेद हो गये थे ।”<sup>२९</sup> नारी के लिए विधवा होना गुनाह माना जाता है और विधवाओं के साथ जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता है । शरूआत में उन्मूल को उम्र छोटी होने के कारण समाज की इस परंपरा का

ख्याल नहीं आता था और उसे अपमान का सामना करना पड़ता है । किन्तु धीरे-धीरे बात समझ में आ जाने के बाद वह स्वयं को रोक लेती है । समाज की परंपरा को न मानते हुए भी इस तरह परिस्थिति से विवश होकर अनुकूलन करना पड़ता है ।

विधवाओं को समाज से प्रेम, सहानुभूति आदि से वंचित रखा जाता है । नारी को विधवा होने से समाज द्वारा तिरस्कृत किया जाता है । ऐसी परिस्थिति में विधवाओं के लिए अपने मायके के सिवा दूसरा कोई आश्रय स्थान नहीं रह पाता । ‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास की महनाज जो छोटी-सी उम्र में विधवा हो जाती है । उनका विधवा हो जाने से ससुराल वाले उनको घर से निकाल देते हैं । महनाज के लिए दो बेटीयाँ और उनका पेट भरना मुश्किल हो जाता है । अंत में महनाज को अपने पिता के यहाँ सहारा लेना पड़ता है । डॉ. राही ने ऐसी विधवाओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है और अपने पात्रों के माध्यम से समाज की यही विडंबनाओं को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है ।

### ➤ **बहुपत्नित्व :**

भारतीय समाज में बहुपत्नित्व के प्रचलन से नारी की पारिवारिक स्थिति में जटिलता उत्पन्न हुई, क्योंकि प्रश्न पति-पत्नी का नहीं रहा, अपितु परिवार में एक पुरुष का अनेक पत्नीओं से अधिकारों का प्रश्न उभरकर सामने आया । इस प्रकार नई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं । नये चित्र बनते बिगड़ते हैं और स्थिति की गंभीरता बढ़ती जाती है । बहुविवाह प्रथा भारतीय समाज में युगों से चली आ रही है । मुस्लिम समाज में कम-से कम चार विवाह कुरान में स्वीकार किए गए हैं, लेकिन हिन्दू धर्म में ऐसा कोई विधान नहीं है । बहुपत्नित्व अथवा एक पुरुष द्वारा एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह करना हिन्दुस्तान में हिन्दुओं के लिए कानूनी पाबंदी है ।



‘आधा गाँव’ उपन्यास में डॉ. राही ने मुसलमानों की जीवन शैली का वर्णन किया है। मुसलमानों में कई पात्र ऐसे हैं, जो एक से ज्यादा पत्नी रखते हैं। स्त्री के लिए कोई विधान नहीं है, किन्तु पुरुष एक से ज्यादा ब्याह कर सकता हैं। समीऊदीन खाँ मुसलमान है। किन्तु वह ठाकुर दारोगा के साथ बहुविवाह को लेकर चर्चा करता है। “वाह, यह भी कोई मजहब हुआ कि खुद तो पैगंबर साहबने नो-नो ब्याह कर डाले और बाकी मुसलमानों को चार शादीयों पर टरका दिया।”<sup>३०</sup> समीऊदीन उन बहुपत्नी प्रथा को बढ़ावा देने की कोशीश करता है। उनके ख्याल से चार से ज्यादा पत्नी रखने की परंपरा होनी चाहिए। इसके लिए वह पैगंबर साहब को दोषित मानता है। समीऊदीन उनके तीन भाईयों के बीच सात बीवियाँ हैं। जिससे हमें बहुपत्नी प्रथा का दृष्टांत देखने को मिलता है। मुसलमानों में कुरान में चार पत्नी के लिए कहा गया है। किन्तु हिन्दू समाज में ऐसी कोई परंपरा नहीं है, फिर भी ऐसे विवाह होते रहते हैं। जिसमें पुरुष एक से ज्यादा विवाह करता है। हिन्दू समाज में उसे अफैर माना जाता है। समाज इन रिश्तों को स्वीकार नहीं करता, फिर भी ऐसे विवाह करके दूसरी पत्नी को ‘रखैल’ मानकर रखा जाता है। ‘नीम का पेड़’ उपन्यास में सुखीराम अलीगढ़ जाकर कमलिनी नामक लड़की से विवाह करता है। किन्तु गाँव में भी उनकी एक पत्नी है, जिसका नाम शारदा था। इस तरह के रिश्ते चोरी छूपी निभाये जाते हैं। सुखीराम भी यही करता है। अपने परिवार से छिपाकर रिश्ता जोड़ता है और इसका परिणाम भुगतना पड़ता है। और वह अफसोस व्यक्त करता है। “उन्हें इस बात का पछतावा हो रहा था कि इस तरह से शादी करना मूर्खता थी उनकी। अरे, रखैल तो सब रखते हैं, उन्होंने भी वही बनाकर रखा होता तो अच्छा था। पर तब तो पावर थी और सचमुच पावर आदमी को अन्धा बना देती है।”<sup>३१</sup> सुखीराम के इन्ही पछतावे के कारण परिवार में अपना स्थान खो बैठता है। वह कानूनी विवादों में फँस जाता है। परिवारवालों को

मालूम होने पर उसकी माँ दुःखीयों सुखीराम से कहती है कि “इ हम का सुनित है सुखीराम । तू दूसर विवाह कर लिए ? सुना है इहाँ आ भी गई ।”<sup>३२</sup> पुरुष इस तरह के विवाद से अपने परिवारवालों की नजर से गिर जाता है और उनकी यही प्रवृत्ति उनको पतन की ओर ले जाती है ।

### ➤ अनमेल विवाह :

अनमेल विवाह एक भयंकर सामाजिक समस्या है । सुयोग्य वर न मिलने पर लड़कियों के माता-पिता उसकी किसी तरह शादी करके अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाना चाहते हैं । लेकिन विवाह के बाद लड़कियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । विवाह जैसे धार्मिक कृत्य में नारी जाति का बहुत शोषण हुआ है, क्योंकि हमारा समाज उसे ‘अबला’ मानता चला आ रहा है । भारतीय समाज में इसका मूल कारण ‘दहेज’ और निर्धनता को माना जाता है । इस परंपरा में पुरुष के अस्तित्व पर ही नारी का अस्तित्व अवलम्बित हैं । अतः पति के मृत्यु के बाद नारी का जीवन विकट हो जाता है । अनमेल विवाह की अंतिम परिणति दुःखद होती है । इसके फलस्वरूप परिवार में तनाव, धृणा, कलह, पापाचार, अनाचार जैसी प्रवृत्तियाँ निरंतर पनपती है ।

अनमेल विवाह शब्द का प्रयोग प्रायः आयु की असमानता के अर्थ में ही किया जाता है । लेकिन इसके अतिरिक्त रुचियों एवं विचारों की भिन्नता को भी अनमेल विवाह कहा जाता है । डॉ. राही के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के विवाह में अनमेल दिखाने का प्रयास किया हैं । डॉ. राही समाज में ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते हैं । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में अतहर मियाँ और रब्बन बी इस समस्या से पीड़ित है । यहाँ पर अतहर मियाँ चंदे आफताब थे और रब्बन बी कानी थी । जिसके कारण दोनों के विवाहित जीवन में कटूता आ जाती है । इसके अलावा ‘बदरुन’ की शादी समीनुदीन खाँ के लड़के

मुइनुदीन के साथ तय की जाती है । किन्तु बारात आने पर पता चलता है कि मइनुदीन की एक टाँग नहीं हैं । जिससे उनकी विकलांगता का पता चलता है । तब बड़ी कानाफूसी होने लगती है, क्योंकि 'बदरुन' के परिवारवालों को इस बात का पता न था, फिर भी गुलाम हुसैन बारात को वापस करने में नहीं है । 'बदरुन' और मुइनुदीन की इस अनमेल विवाह को लेकर करामत खाँ बताते हैं कि "हमारी लड़की काँ लँगड़ी लूली है ? समीऊदीन खाँ की ऐसी की तैसी । हम इतनी सारी दीवानी उभई निकाल देते हैं । भैया बदरुन के वास्ते कोनों लड़कों की कमी ना हैं ।"<sup>३३</sup> अनमेल विवाह की इस तरह की प्रस्तुति करने पर डॉ. राही ने समाज की ऐसी विसंगतीयता को परखा हैं ।

'कटरा बी आर्जू' उपन्यास में दहेज के अभाव के कारण अनमेल विवाह का मार्मिक चित्रण किया गया है । लड़की के पिता की उम्र की व्यक्ति के साथ लड़की का विवाह किया जाता है । इन अनमेल विवाह के पिछे पिता की दरिद्रता कारणभूत मानी जाती है । क्योंकि पिता दहेज देने में असमर्थ है, इसलिए वह अपनी लड़की का विवाह किसी भी लड़के के साथ कर डालता है । इसमें देशराज जो ऐसे विवाह का विरोध करता है । किन्तु वह शम्सू मियाँ को लड़की का विवाह करने से रोक नहीं सकता । देशराज का लड़के के बारे में पूछने पर बताता हैं कि "नौकरी खोजे का काम कर रहा है आजकल । हेड कानिसटिबली से रिटायर भया है दू बरस पहले ।"<sup>३४</sup> शम्सू मियाँ के इस कथन से लड़के की उम्र का अंदाजा लगाया जा सकता है । आधुनिक समाज की व्यवस्था इतनी दोषपूर्ण है कि नारी का कोई अस्तित्व नहीं होता । उनको पुरुष पर अवलम्ब रहना पड़ता है । यहाँ पर आर्थिक अभावों के कारण लड़की का विवाह बूढ़े व्यक्ति से करना पड़ता है । जिसका दुःख लड़की को सहन करना पड़ता है ।

### ➤ तलाक की समस्या :

आज के युग में तलाक एवं तलाक पीड़ित नारियों के संबंध में अनेक लेखकों ने अपनी रचनाएँ दी हैं। नारी सुधार एवं वैज्ञानिक चिंतन से धर्मांध, प्राचीन रूढ़ियों के जर्जर एवं क्षीण होने में विवाह विच्छेद की समस्या उत्पन्न होती हैं।

‘तलाक’ का अर्थ है – सामाजिक तथा वैधानिक दृष्टि से पति-पत्नी के संबंधों का अंत हो जाना। तलाक की समस्या वैदिक काल से चली आ रही है। भारतीय समाज में स्त्री के सामने पतिव्रता का आदर्श रखा जाता है। पति चाहे जैसा भी हो, पत्नी के लिए वह देवता है। विवाह-विच्छेद पति-पत्नी के लिए कलंक माना जाता है, परंतु वर्तमान युग में पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव तथा विभिन्न सामाजिक आंदोलनों के कारण स्त्री पुरुष दोनों को समान अधिकार की व्यवस्था हुई। डॉ. राही ने दाम्पत्य जीवन में उत्पन्न समस्या का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया है। आज पति-पत्नी के संबंधों में स्थायित्व समाप्त होता जा रहा है। परिवार में छोटी-छोटी बातों को लेकर समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। परिवार की इन समस्याओं का अंत तलाक तक पहुँच जाता है। ‘तलाक’ स्त्री या पुरुष के अपने अहं के कारण भी दिए जाते हैं। ‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में बच्चों के विवाह संबंधी बातों को लेकर अब्बास और सैयदा का सुखमय दाम्पत्य जीवन तलाक तक पहुँच जाता है। सैयदा अपने बच्चों की शादी किसी हिन्दू के साथ होने का विरोध करती है। अतः दोनों पति-पत्नी में कड़वाहट उत्पन्न हो जाती है। अब्बास समझता है कि प्यार में इस तरह के भेदभाव नहीं होते, किन्तु फिर भी बात तलाक तक पहुँच जाती है। “कान्ता महरोत्रा बोली, मूसवी भाई साहब से डाइवोर्स लेके सैयदा पीलीभीत चली गई। वहाँ उनका भाई डी. एम. हैं।”<sup>३५</sup> तलाक के कारण अब्बास का परिवार टूट जाता है। पति-पत्नी एक दूसरे को एडजेस्टमेंट नहीं कर सकते, किन्तु अपने अहं के कारण इस समस्या का

सामना करना पड़ता है । किसी भी व्यक्ति के जीवन में किसी एक बात को लेकर संघर्ष नहीं होता । इसके पिछे कई कारण होते हैं । अब्बास और सैयदा के बीच केवल बच्चों की शादी के लिए तनाव के कारण बात तलाक तक नहीं पहुँची । इसके पिछे व्यक्ति के आंतरिक मनोवृत्तियाँ भी असर करती हैं । अब्बास अपने बच्चों को बताता है । “हम दोनों के रिश्ते की नब्ज पर सिर्फ़ तुम दोनों के इश्क ही का दबाव नहीं था । सैंकड़ों हजारों दबाव हैं ।”<sup>२६</sup> इससे अब्बास अपनी वेदना को स्पष्ट करता है ।

तलाक आजकल समाज में किसी भी व्यक्ति किसी भी उम्र में देता है । मनुष्य जीवन के अंतिम समय यानि कि वृद्धावस्था में भी तलाक होते हैं । जो व्यक्ति अपना समूचा जीवन अपने जीवनसाथी के साथ व्यतित करता है और जीवन के अंतिम समय में जब एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता होती है, तब अपनी समस्याओं को लेकर बात तलाक तक पहुँच जाती है । “हिम्मत जौनपुरी” उपन्यास में दिलगीर जौनपुरी और उनकी बेगम के बीच तलाक हो जाता है । उसका कारण दिलगीर को बेगम के मायकेवाले स्वीकार नहीं करते थे । अतः दिलगीर को बेगम का बार-बार मायके जाना अच्छा नहीं लगता था । और आखिर दोनों के बीच तलाक हो जाता है । “आखिर एक दिन बात इतनी बढ़ी कि छिहतर बरस के दिलगीर जौनपुरी ने चौसठ बरस की बेगम को तलाक दे दी ।”<sup>२७</sup> समाज में तलाक जैसी गंभीर समस्या का उदभव होने का कारण व्यक्ति की अहं भावना है, जो वास्तविक परिस्थिति को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होता और अपने सुखमय जीवन में तलाक के कारण अंत आ जाता है । मनुष्य में आज मूल्यों का पतन हो रहा है । आज आधुनिक युग में तलाक की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है । इसका मुख्य कारण सुधारवादी, आधुनिकतावादी विचार ही प्रमुख है । आज के युवा मानस में परिस्थिति के सामने संघर्ष करने की क्षमता का अभाव देखने को मिलता है और अपने आप को अन्य व्यक्ति के साथ एडजेस्टमेंट नहीं

कर पाते और तलाक की समस्या बढ़ती जाती है । डॉ. राही ने अपने जीवन में भी इस समस्या को सहन किया है और उन्होंने भी अपनी पत्नी को तलाक दिया था । तलाक किसी भी समस्या का अंतिम समाधान नहीं है, क्योंकि जीवन में किसी भी बात को लेकर एक दूसरे से मनमिटाव हो सकता है । तलाक किसी के लिए हितकर नहीं होता । इस बात को स्पष्ट करने के लिए डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में इस समस्या का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया है और समाज के सामने तलाक की समस्या की गम्भीरता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है ।

### (ख) यौन चेतना :

यौन-वृत्ति मनुष्य जीवन की मूलभूत एवं शाश्वत आवश्यकता हैं । यौन-भावना मनुष्य जीवन की प्राकृतिक भूख है, जिसकी अत्यंत आवश्यकता हैं । फ्रायडने तो काम को जगत की सभी प्रवृत्तियों का मूल कहा है । जिस प्रकार व्यक्ति भूखा नहीं रह सकता उसी प्रकार वह अपनी यौन आवश्यकताओं की पूर्ति किये बगैर नहीं रह सकता । भूख की तृप्ति भोजन में हैं, तो यौन की तृप्ति प्रेम में अर्थात् शारीरिक संबंध निर्वाह में । स्त्री-पुरुष दोनों में ही यह यौन आवश्यकता स्वाभाविक रूप से उनके अंतर में समाहित होती है । यह वस्तुतः एक मनोवृत्ति है । इन्हीं यौन संबंधों एवं स्थितियों से उत्पन्न मानसिकता यौन-चेतना है । यदि यौन आवश्यकताओं की अपूर्ति सामाजिक मान्यता के अनुसार हो, तब तो समाज में संगति बनी रहती है, लेकिन सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर यदि कोई व्यक्ति यौन संबंध स्थापित करे तो यौन संबंधों की विसंगति होती है । “स्वाभाविक यौन वृत्ति और यौन व्यापार के स्थान पर अत्यंत अस्वाभाविक रूप में यदि मनुष्य यौन-तृप्ति पाये, तो वही यौन विकृति है । ये विकृतियाँ एक ओर तो दमन, वर्जना और अवरोध का परिणाम है और दूसरी ओर स्वाभाविक विकास की वियोजित या

विभिन्न अवस्थाएँ हैं ।”<sup>२८</sup> आज समाज में शहरी सभ्यता के संक्रमण एवं जीवन मूल्यों की टूटन से यौन संबंधों की नैतिकता स्वलित हुई है । डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में समाज में आई इस विकृति को बड़ी प्रामाणिकता से प्रस्तुत किया है । जैसे –

### ➤ स्त्री-पुरुष यौन संबंध :

मनुष्य के संबंध में समय के साथ-साथ बदलाव आया है । भारतीय संस्कृति में स्त्री-पुरुष संबंध सदा से ही अत्याधिक मर्यादित रहे हैं । भारतीय संस्कृति में जहाँ विवाह से पूर्व या विवाह के बाद किसी स्त्री को परपुरुष के साथ बोलना तक भी पाप माना जाता रहा है । वहाँ स्वच्छंद यौन संबंधों को अनैतिक, अवैध तथा समाज विरोधी माना गया है । इन मान्यताओं के होते हुए भी सब कुछ होता था । हर प्रकार के यौन तथा प्रेम संबंध हमारे समाज में रहे हैं । हाँ इतना अवश्य था कि तब ये संबंध छिपकर होते थे । आज यह सब खुल्लम खुल्ला होता है ।

यौन संबंध विषयक नैतिकता के संदर्भ में समाज में यही यथार्थ दृष्टिगोचर है कि इस प्रकार के यौन संबंधों में अनैतिकता का आधिपत्य है । समाज में यौन संबंध परंपरागत रूप से पवित्र भावना हैं । परंतु आधुनिक भौतिक, भोगवादी वृत्ति ने नैतिक को अनैतिक बना दिया । मनुष्य के जीवन में यौन अत्यंत आवश्यक तथा प्राकृतिक वृत्ति है । वह यौन आवश्यकता मनुष्य में भूख की तरह होती है । यौन आवश्यकता स्त्री और पुरुष दोनों में स्वाभाविक रूप से होती है जैसे “मनुष्य आदिम स्थिति का पुनः उपभोग करना चाहता है प्रेम और सेक्स में स्वेच्छाचार को प्रश्न दिया जा रहा है । अब समाज में पत्नीव्रत या पतिव्रत का खोखला मूल्य माना जाने लगा है । एकचार की भावना से मनुष्य उब गया है । वह परिवर्तन चाहता है । आधुनिक युग में नाईट क्लबों में रोक-एन-रोल इसीलिए लोकप्रिय होते जा रहे हैं, मनुष्य को

गति चाहिए । इस नपुंसक सभ्यता से वह ऊबने लगा है स्वभावगत । इसलिए वह 'बी सेक्सी' जैसे नारे लगा रहे हैं ।<sup>३६</sup> आज का मानव एक ही व्यक्ति से संबंध स्थापित करके ऊब और घुटन महसूस कर रहा है । हमें आधुनिक वैवाहिक जीवन में अधिक ऊब और एकरसता दिखाई देती है । आज स्त्री और पुरुष के संबंध अधिक स्वाभाविक और यथार्थ बनते जा रहे हैं । आज स्त्री केवल स्त्री है । वह पुरुष की चित्ता में जलकर सती होनेवाली नहीं है, बल्कि वह भी पुरुष की तरह यौन संबंध के बारे में स्वच्छंद विचार रखनेवाली हैं ।

'ओस की बूँद' उपन्यास में शाहनाज विवाहित होते हुए भी यौन संबंध स्थापित करती है । इस उपन्यास में पत्नी के रहते हुए पुरुष अन्य स्त्री के साथ यौन संबंध स्थापित करता है या पति के रहते हुए भी स्त्री द्वारा अन्य पुरुष के साथ यौन संबंध स्थापित किया जाता है । इसमें छोटी ममानी अपनी वासनाओं को तृप्त करने के लिए गुल्लू के साथ यौन संबंध स्थापित करती है । गुल्लू का साथ अवैध यौन संबंध रखने के कारण छोटी ममानी को बच्चा ठहर जाता है और बाद में वह गिरवाने की कोशिश में मर जाती है । भारतीय समाज में इस तरह के यौन संबंध आजकल पनपते जाते रहे हैं । स्त्री-पुरुष अपने नैतिक मूल्यों को त्यागकर अपनी कामेच्छा को तृप्त करते हैं और बाद में उनका परिणाम भुगतना पड़ता है । 'सीन ७५' उपन्यास में माँ और बेटी एक ही पुरुष के साथ यौन संबंध रखती है । इसमें राधिका अपनी माँ को उसके प्रेमी रामनाथ के साथ अपने बेडरूम में देखती है । राधिका की बेटी पुष्पलता भी अपनी कामेच्छा पूरी करने के लिए रामनाथ का सहारा लेती है । यहाँ माँ और बेटी दोनों का आशिक एक ही है, रामनाथ भी दोनों के साथ यौन संबंध रखता है और साथ ही साथ लिजा को भी शादी करने के चक्कर में फँसाता है । लिजा के शादी करने के प्रस्ताव पर रामनाथ बताता है कि "देखता है कि सब खैरियत है कि नहीं ऊरे ऊ साला



लोग का कोई ठीक है, तुम साफ-साफ बोल द्यो कि अपन से कल शादी बनायेगा । हम सारा तुम्हारा ब्लाऊज का वास्ते इहाँ नहीं आया है । फन्दाजी के फ्लेट में दू-दू ब्लाऊज था ।”<sup>४०</sup> यहाँ रामनाथ के पात्र से पुरुष के द्वारा अन्य स्त्रियों के साथ हो रहे यौन संबंध को बताया गया है । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में कई पुरुष नीच जातियों की स्त्रियों के साथ अनैतिक यौन संबंध रखते हैं । कामुकता के वश में आकर फुन्नन मियाँ, जवाद मियाँ, जैसे सय्यद जिन्हें अपनी पाक हड्डी पर गर्व है । वे भी दूसरों की बीवियों को घर में निकाह के बिना रख लेते हैं । हम्माद मियाँ जैसे विवाहित पुरुष भी अपना अनैतिक संबंध मेहरुनियाँ नाईन से रखता है । इस तरह के अनैतिक संबंधों को वह अपनी खानदानी परंपरा मानते हैं । “यह बात ताज्जुबखेज नहीं थी कि कोई सय्यदजादा किसी नाइन की लड़की से फँस गया हैं । यह तो जमींदारी के लटके हैं ।”<sup>४१</sup> यौन वासना को पूरी करने के लिए व्यक्ति समाज के सभी बंधनों को तोड़ डालता है । कोई व्यक्ति वेश्याओं के साथ भी अनैतिक यौन संबंध रखते हैं । इसमें ठाकुर हरनारायण प्रसाद गुलाबीजान नाम की रखैल से यौन संबंध रखता है । यौन संबंधों में धार्मिक व्यक्ति जिनको पवित्र माना जाता है वह भी फँसे हुए है । मुहर्रम के त्योहार में सुलेमान-चामजलिस में न जाकर सैफुनियाँ की माँ को एकांत में सीने से चिपकाते हैं । यहाँ पर निम्नजाती की स्त्रियाँ को छुआ भी नहीं जाता, ऐसा करने पर उनका धर्म भ्रष्ट हो जाता है । किन्तु चमारिन जैसी निम्नजाती की स्त्री से बच्चे पैदा किये जाते हैं । जिस तरह पुरुष अन्य स्त्रियों के साथ यौन संबंध रखता है । उसी प्रकार स्त्रियाँ भी अन्य पुरुषों से इस तरह के संबंध रखती हैं ।

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में भाग्यवती ऐसी ही स्त्री है, जो अपनी यौन वासना को तृप्त करने के लिए अन्य स्त्रियों का सहारा लेती है और अपनी यौन वासना को तृप्त करती है । यहाँ भाग्यवती के चरित्र के संदर्भ में उपन्यास में वर्णन करते हुए लिखा है कि “वह पढ़ी लिखी थी, दिल्ली

युनिवर्सिटी में अंग्रेजी साहित्य पढ़ाया करती थी । अपनी तन्हाई के अंधे कुए में कैद थी । उसे जिस लड़की से प्यार था, उसकी शादी हो गई और उसने उस लड़की को कत्ल कर दिया । अदालत में उसे पागल साबित न किया जा सका । उम्र केद की सजा हुई । उम्र केद की सजा काट रही थी । जब कोई नयी कैदी आती तो वह दीवानी हो जाती और इसमें बला की ताकात आ जाती और यह उस नयी कैदी को दूसरी कैदी औरतो के सामने रेप करती और फिर बिल्कुल सीधी हो जाती ।”<sup>४२</sup> समाज में इस तरह के यौन संबंधों के पिछे आज के समाज की परंपरा कारणभूत है । आज समाज में किसी भी विवाहित स्त्री को यदि विवाह के बाद बच्चा नहीं होता, तो वह समाज में निंदा का पात्र बन जाती है । कई स्त्रियाँ संतान सुख प्राप्त करने के लिए दूसरे पुरुषों के साथ संबंध रखने के लिए मजबूर हो जाती है । ‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में गुलबहरी ऐसी स्त्री है, जो धर्म में श्रद्धा रखती है । अतः तरह-तरह की मन्नते रखती है । किन्तु फिर भी संतान न होने पर उन्हें भाइजानू के साथ अनैतिक संबंध रखना पड़ता है । भाइजानू के शब्दों में “अरे गुलबहरी हुआ तावीज से नहीं होनेवाला है तेरा यहाँ बच्चा । अनाज की कोठरी में चल । अभी डाल देता हूँ तेरे पेट में बच्चा ।”<sup>४३</sup> यहाँ परिस्थिति से विवश होकर गुलबहरी को संबंध रखना पड़ता है । इस तरह के संबंधों से बच्चों के मानस पर भी विपरित असर होती है । ‘रक्कन’ भी ऐसा ही बालक है, जो इन विकृतियों को अपनी नजर से देखता है । जिससे यह सोचने के लिए मजबूर हो जाता है । विवाह के पूर्व के यौन संबंधों का परिचय भाईजानू और जन्नत के अनैतिक संबंध से परिवार वाले अपरिचित है । जब मालूम होता है तब परिवार में सन्नाटा-सा आ जाता है । “तीन-चार दिन तक जैदी विला में गजब का सन्नाटा रहा । कोई जोर से बोला ही नहीं । फप्फू जा नमाज बिछाये, अल्लाह मियाँ से खुसुर-पुसर करती रही । जैदी साहब और बेगम जैदी में कानाफूसी होती रही । भाईजानू ने

अंदर आना ही छोड़ दिया । जन्नत अपने कमरे से बिल्कुल ही बन्द हो गई ।”<sup>४४</sup> कभी-कभी इस समस्या के कारण समाज में मुँह दिखाने लायक नहीं रहा जाता । इन अवैध संबंध को लेकर परिवार वाले दोनों की शादी तय करने की सोचते हैं और दोनों की शादी कर डालते हैं ।

यौन संबंध इस तरह समाज में पनपते जाते हैं और इसके कारण आज कई समस्या खड़ी हो जाती है । फिर भी वासना ने मनुष्य को अंधा कर डाला है और वह अपना सबकुछ न्यौछावर करके भी अपने आपको रोकने में असमर्थ होता है ।

### ➤ **अप्राकृतिक यौन संबंध :**

अप्राकृतिक यौन संबंध आजकल समाज में इस तरह पनप रहा है कि इसका शिकार मूलतः ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो किसी भी प्रकार से शोषित होते हैं । अप्राकृतिक यौन संबंध ऐसे संबंध हैं, जो प्रकृति के विरुद्ध हों, अमानवीय हों, फिर भी किसी के द्वारा इस तरह के संबंध होते हैं । डॉ. राही ने समाज की इसी विडंबनाओं का वर्णन किया है । डॉ. राही ने समाज में फैले इस दूषण को पनपते देखा और उसे साहित्य के माध्यम से समाज के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया ।

‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में डॉ. राही ने इस तरह के संबंधों का पर्दाफाश किया है । इसमें मौलवी तकी हैदर जो कुरान की शिक्षा पढ़ाता है, उनके सिर पर वासना का भूत सवार हो जाता है । वह अपनी वासना का शिकार बच्चों को बनाता है । मौलवी तकी हैदर ऐसा पात्र है, जो बच्चों के साथ अप्राकृतिक यौन संबंध बनाने की कोशिश करता है । मौलवी रफ्कन को कुरान की शिक्षा पढ़ाने के लिए आता हैं । किन्तु वह छोटे बच्चों के साथ बलात्कार करता है । वह रफ्कन के साथ भी इस तरह का व्यवहार करता हैं । “वह गर्मियों के दिनों में अपना कमरा बन्द करके उसका पाजामा उतारने

की कोशिश किया करते थे । पहले दिन तो वह हक्का-बक्का देखता रह गया कि मौलवी साहब क्या कर रहे हैं ..... शायद कुरान पढ़ाने का यही तरीका हो ।”<sup>४५</sup> शिक्षा जैसे क्षेत्र में इस तरह का अत्याचार होता है । इस अत्याचार के भोग इन मासूम बच्चे बनते हैं, जो इस तरह की हरकतों से अंजान हैं, जिसके कारण उनका शारीरिक शोषण होता है । अब्दुस्समद जो कर्नल साहब के यहाँ रसोई घर में खाना बनाने का काम करता है, उनके साथ शफूला नाम का लड़का भी काम करता है, वह उस लड़के पर आशिक हो जाते हैं । “अब्दुस्समद शफूला पर बड़ी धुमधाम से आशिक हुए । यहाँ तक की अब्दुस्समद खाँ ने उसे फूलाँ सूप और ढिमकी पुर्डिंग तक बनाना सिखा दिया था ।”<sup>४६</sup> अप्राकृतिक यौन संबंध में समलैंगिक यौनाचार भी होता है, जो पुरुष-पुरुष और स्त्री-स्त्री के बीच में स्थापित होता है । यहाँ पर परिस्थिति से वशीभूत होकर समलैंगिक यौन संबंध की ओर व्यक्ति आकर्षित होता है । डॉ. राही ने ऐसे पात्रों का वर्णन भी किया है, जो अपना जीवन इसमें व्यतीत करते हैं । ‘दिल एक सादा कागज’ में चंचल जो अपनी वासना को इस तरह तृप्त करता है । “चंचल बेचारे की ट्रेजिडी यह थी कि वह केवल जवानी इश्क कर सकता था और अब भी बाथरूमों में गुजर रहा हैं ।”<sup>४७</sup> तिरछे खाँ भी ऐसी मानसिकता के शिकार हैं कि अपनी हवस को मिटाने के लिए उसका रास्ता अपने आप ही निकालना चाहिए और इसके लिए वह अल्लाह मियाँ का भी आभार मानता है । “तिरछे खाँ तो बाथरूम लवर है । कहते हैं कि आदमी को अपना काम अपने हाथों से करना चाहिए । नहीं तो अल्लाहमियाँ ने हाथ दिये क्यों हैं ?”<sup>४८</sup> तिरछे खाँ की इस बात को डॉ. राही ने व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है । इस समस्या के लिए समाज को भी दोषित माना जाता है, क्योंकि समाज की जो सोच है, वह इतनी हीन है कि मनुष्य को मुक्त वातावरण प्रदान नहीं किया जाता । वह अंदर से घूटन महसूस करता रहता है । ‘सेक्स’ के संबंध में समाज में ऐसी मान्यता है कि

वह खराब है और इनकी चर्चा करने से बच्चों के मानस पर इसका असर पड़ता है । किन्तु आज के युग में बच्चों को भी इस जानकारी से अवगत कराना चाहिए । जिससे उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियों का सामना किया जाता है । इसके लिए समाज में जागरूकता आना आवश्यक है । डॉ. राही का यही आशय रहा कि अपनी इस बात को समाज तक पहुँचा सके और वह उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से सिद्ध कर दिया हैं ।

### ➤ **वेश्यावृत्ति :**

वेश्यावृत्ति नारी जीवन से जुड़ी ऐसी समस्या है, जो प्रत्येक युग की ज्वलंत समस्या है । विश्व प्रसिद्ध पाश्चात्य समीक्षक बटूंडे रसेल ने वेश्यावृत्ति से संबंधित विचारों का समर्थन करते हुए लिखा है कि “पुरुष की भोगवादी दृष्टि ही नारी को वेश्या बनाती है । कोई भी नारी अपनी इच्छा से वेश्या का रूप स्वीकार नहीं करती, उसके पीछे पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक कारण कार्य करते हैं या पुरुष का मात्र उपभोग करके छोड़ देना ।”<sup>४६</sup> वेश्याओं की जिन्दगी आर्थिक तंगी, दुःखों, सिसकियों से भरी होती है । अधिकतर निम्नवर्ग से ही महिलाएँ अनेकानेक मजबूरियों से अथवा आर्थिक समस्याओं से त्रस्त होकर ऐसे घृणित पेशे में आती हैं । वेश्याओं के दुःखात्मक जीवन एवं पीड़ाओं का वर्णन करती हुई नारियों की हिमायती पाश्चात्य लेखिका सीमोन द बोऊवर कहती है कि “चाहे वेश्या वैध रूप से पुलिस की देख-रेख में रहे, चाहे अवैध रूप से छिपकर अपना कार्य करे, उसे हमेशा अछूत की तरह ही देखा जा सकता है ।”<sup>४७</sup> वेश्याएँ अपनी दयनीय स्थिति के कारण मजबूर होकर इस व्यवसाय को अपनाती हैं । डॉ. राही ने इन वेश्याओं के जीवन में झाँकने का प्रयास किया है ।

‘आधा गाँव’ उपन्यास में डॉ. राही ने वेश्या जीवन व्यतीत कर रही महिलाओं के जीवन को प्रकट किया है । इसमें गुलाबीजान जो वेश्या है, वह

दारोगा हरनारायण ठाकुर के साथ सोती है । उनके लिए वेश्यावृत्ति मजबूरी है । वह जानती है कि इस तरह का कार्य करना गुनाह है, किन्तु फिर भी करना पड़ता है । जिससे वह अल्लाह मियाँ से माफी भी माँगती है । “यह गुलाबीजान बड़ी कट्टर मुसलमान थी । ठाकुर साहब के कमरे में जाकर वह फौरन नहाती थी और अल्लाह मियाँ से माफी माँगती थी कि पेट की वजह से उसे एक काफिर के साथ सोना पड़ता है ।”<sup>५१</sup> वेश्याएँ समाज में जन्म नहीं लेती, किन्तु परिस्थिति से विवश होकर उनको वेश्या बनना पड़ता है । भारतीय नारी को वेश्यावृत्ति अपनाने के पीछे चारित्रिक दुर्बलता एवं नैतिक अधःपतन की अपेक्षा आर्थिक पराधिनता ही महत्वपूर्ण घटक है । ‘हिम्मत जौनपुरी’ उपन्यास में डॉ. राही ने जुबैदा उर्फ जमुना नाम की वेश्या की परिस्थिति का वर्णन किया है । वह मंदिर में बैठकर भगवान से ग्राहक माँगती है । वह कहती है कि “इ भगवान बड़ा चार सो बीस है, हिम्मत जमुना बोली माँगने ही नहीं देता । रोज का यही लफड़ा है । अब अपन जाते है वह दरवाजे से हाथ निकालकर एक ग्राहक फैंक देता हैं अपन की झोली में । तू भी कभी भगवान हो गया तो यूँ ही जमुना को धिक्कार देगा ना ।”<sup>५२</sup> जमुना भगवान से हमेशा शिकायत करती रहती है । वेश्यावृत्ति का व्यवसाय समाज की नजर में गंदा समझा जाता है । किन्तु वेश्याओं के लिए वह व्यवसाय अपने जीवन के लिए जरूरी बन जाता है । समाज में वेश्याओं की कोई प्रतिष्ठा नहीं होती उनको काला धंधा माना जाता है । उन्हें हराम की कमाई समझी जाती है । जमुना इन समाज को बताती है कि “इ अपन के गाढे पसीने की कमाई है हिम्मत चचा से बोल कि इ पय्यसा अपने हज फंड में डाल ले या तो इ पय्यसा अपनी बी के पास भेज दे तो जमुना आज ही धंधा छोड़ दे ।”<sup>५३</sup> यहाँ डॉ. राही ने बम्बई के सड़कों पर घूमनेवाली वेश्याओं के जीवन का सूक्ष्म अध्ययन करके उनके मन की व्यथा एवं समाज द्वारा उनके साथ किये गये क्रूर एवं घृणित व्यवहार को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है । वेश्याओं की

समस्याओं के विविध पहलुओं को प्रस्तुत करते हुए भारतीय समाज में व्याप्त भीषणता को व्यक्त किया है ।

समाज में वेश्याओं का व्यवसाय बुरा माना जाता है, उनकी निंदा होती है । समाज की यही सोच के कारण वेश्याओं को शोषित होना पड़ता है । आज समाज में कई धंधे ऐसे होते हैं, जिनको गैरकानूनी नहीं मानते और वेश्याओं के धंधे को गैरकानूनी माना जाता है । ‘सीन ७५’ उपन्यास में ‘नज्मा’ एक ऐसी वेश्या है, जो फिल्मों में हीरोइन का काम भी करती है और अपना व्यवसाय भी करती है । यहाँ इन वेश्याओं के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है । “यह तुम्हारी तरह असली डिबियों में नकली बूट पालिश का धंधा तो नहीं करती । दूध में पानी तो नहीं मिलाती । चावल में कंकर – पत्थर तो नहीं डालती । नकली दवा, नकली दारु, नकली रुपये, नकली भविष्य तो नहीं बेचती । बिना किसी मिलावट, बिना किसी भूमिका, बिना किसी भाषण के अपना बदन बेचती है । यह इसकी बेइज्जती नहीं, इज्जत के दाम है ।”<sup>५४</sup> यहाँ पर वेश्याओं की जीवन की करुणता को व्यक्त किया है । ‘हिम्मत जौनपुरी’ उपन्यास में डॉ. राही ने भारतीय वेश्याओं की स्थिति पर दबी कलम से ही सही, एक इशारा अवश्य किया है । वेश्याओं की स्थिति का उदाहरण इमाम बाँदी, नासिरी बाई आदि कई स्त्री पात्रों के द्वारा प्रस्तुत किया है । लेखक के मन में अहोभाव है, फिर भी ऐसी स्त्री पात्र पाठकों के मन पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ते हैं ।

#### (ग) संबंधों में तनाव और विघटन :

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में संबंधों का तनाव, नये संबंधों की खोज एवं पुरानी और नई पीढ़ियों के बीच संघर्ष नये सामाजिक मूल्यों के रूप में उभर रहे हैं । सामान्यतः पारिवारिक संघर्ष सनातन काल से चले आ रहे हैं । परन्तु आज सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में जो संघर्ष उभर रहे हैं,

उनका धरातल सर्वथा नवीन है । व्यक्ति अपनी सत्ता के लिए यथार्थ और आदर्श के बीच पिसता जा रहा है । जनता एकता-अनेकता में विभाजित होती जा रही है । संबंध बदलते रहे हैं । माता-पिता और संतान, पति-पत्नी जैसे रिश्तों के बीच खाई बढ़ती जा रही है । व्यक्ति तनावों में घिरा हुआ है । कही अर्थ-विषमता उसे तोड़ रही है, तो कहीं जड़ परिपाटियाँ उसे कुंठित कर रही हैं । प्राचीन मूल्य पूर्णतः टूट नहीं रहे हैं और न ही आधुनिकता का प्रसार या प्रचार हो रहा है । सामाजिक जीवन के पारस्परिक संबंध उलझते जा रहे हैं और कठोर यथार्थ की भयानक आँच में झुलस रहे हैं । मनुष्य जीवन को प्रभावित करनेवाले अनेकानेक तत्त्व हैं । सामाजिक जीवन को इन नये पारीवारिक संबंधों ने कई मानसिकता प्रदान की है । इसका लेखा-जोखा हमें डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में प्राप्त है । पारीवारिक संबंधों, उनमें आये तनावों एवं मूल्य - विघटनों आदि को समग्रता की दृष्टि से निम्न बिन्दुओं के आधार पर विवेचित किया जा सकता है ।

### ➤ **आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व :**

समग्र भारत में किसी भी समाज में व्यक्ति आज अपनी वैयक्तिक स्थिति समझने लगा है । अकेलापन उसकी अनिवार्य स्थिति बनती जा रही है । घर में संयुक्त परिवारों में रहकर भी वह अकेला पड़ता जा रहा है । इसी व्यक्तिगत प्रवृत्ति के कारण न वह किसी समाज से जुड़ पाता है और न व्यक्ति से । सामाजिक संदर्भों से अलगाव और व्यक्ति के अपने के पीछे आधुनिकता जन्य भौतिक जीवन दृष्टि कार्य करती है । स्वार्थ ही उसका मूल्य और मापदंड है और उसी के आधार पर अन्य सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, एवं सांस्कृतिक संदर्भों से जुड़ना पड़ता है । “हर स्तर पर व्यक्ति अपनी वैयक्तिकता खोए बिना व्यापक सामाजिक संदर्भों से जुड़ने की निरंतर चेष्टा करता है । आत्महित की दृष्टि से वह सामाजिक अनुशासन स्वीकार करता है,



तो परिस्थितियों से विवश होकर विक्षुब्ध, कुंठित, अपमानित एवं समाज अपेक्षित होकर वह विद्रोह भी करता है। यह विद्रोह अन्तर्बाह्य दोनों ही स्तरों पर होता है जो अनेक समस्याओं को जन्म देता है।<sup>५५</sup> इस अन्तर्बाह्य संघर्ष और तज्जन्य अंतःविरोधों के बीच टूटते हुए व्यक्ति की संवेदना को डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में बड़ी प्रमाणिकता से उजागर करने का प्रयास किया है।

किसी भी मनुष्य समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए प्रयत्न करता है। किन्तु जब वह असफल होता है, तब उसका व्यक्तित्व निखरने के बजाय कुंठित होता है। हमारे समाज में आदर्श के लिए जो मानदंड प्रस्थापित किये गये हैं, उनके प्रति आक्रोश उत्पन्न हो जाता है। व्यक्ति अपनी जरूरतों को पूरी करने के लिए रिश्वत, बेईमानी और पक्षपात का सामना करता है। जो लोग आदर्श की बातें करते हैं और समाज में जोर-जोर से अपना भाषण करते हैं, वही लोग जब भ्रष्टाचार का आचरण करते हैं, तब लोगों को उन पर से विश्वास उठ जाता है और तभी उनके मनमें आदर्श और यथार्थ के बीच का द्वन्द्व शुरू होता है।

आज के युवा वर्गों में पुरानी मान्यताओं, सामाजिक कुरीतियाँ एवं आर्थिक अभावों को लेकर असंतोष है। वह मानसिक द्वन्द्व में गुजरते रहते हैं। आज का व्यक्ति अनेक तनावों में अपने आप को झेल रहा है। “आज का मनुष्य अपनी परिवेशगत असुरक्षा की भावना से आक्रांत है। इस सुरक्षा और आशंका ने आधुनिक मानव के जीवन को खण्ड-खण्ड कर दिया है।”<sup>५६</sup> स्वतंत्रता प्राप्ति, देश विभाजन एवं अग्रगामी विकास योजनाओं का निर्माण तथा प्रभाव परिणति उन समस्त आयामों को अपने में समेटे हुए है, जिन्होंने देश के औसत व्यक्ति की आशा, आकांक्षाओं को तोड़कर मूल्यों को विघटित कर एवं नयी परिस्थितियों को जन्म देकर उनमें नयी मानसिकता का द्वन्द्व प्रदान किया है। डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में इन सभी विसंगतियों को वाणी दी है।

‘नीम का पेड़’ का बुधीया, ‘टोपी शुक्ला’ का टोपी आदि कई पात्र सामाजिक संदर्भों में आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व में संघर्ष करते हुए दृष्टिगत होते हैं ।

‘नीम का पेड़’ उपन्यास में बुधीराम को इस संघर्ष का सामना करना पड़ता है । बुधीराम कहीं जमींदारों के अनुशासन का शिकार होता है, तो कहीं अपने ही बेटे सुखीराम से अपमानित होता हैं । बुधीराम आदर्श और यथार्थ के बीच के द्वन्द्व में फँसा है । जामिन मियाँ जिनके यहाँ बुधीराम काम करता है और उन्हीं का खाता-पीता है, उनके ही विरुद्ध गवाही देने के लिए मजबूर किया जाता है । बुधीराम के सामने अपने बेटे का भविष्य हैं । उनके लिए सुखीराम का भविष्य सबकुछ हैं । अतः उन्हें गवाही देनी पड़ती है । “बुधई तो अपने सपनों में खोया रहने लगा था । सोचता था सुखीराम के बड़ा होते-होते तो आजादी पुख्ता हो जाएगी ..... फिर कोई न तो उसे चमार कहेगा..... न खेतिहर..... उसे अपनी नहीं सुखीराम के जीवन की पड़ी थी । उसका बयान बदलना इससे तय होनेवाला था कि सुखीराम का फायदा किसमें हैं बयान बदलने में या न बदलने में ।”<sup>५७</sup> इसी मानसिक द्वन्द्व ने बुधीराम को जामीन मियाँ के खिलाफ गवाही देने के लिए मजबूर किया । सुखीराम बड़ा होकर एम.पी. बन जाता है । बुधीराम पहले जमींदारों के कारण द्वन्द्व में फँसा रहता है और अब अपने बेटे सुखीराम के कारण । सुखीराम रिश्वत लेकर पैसे कमाता है, जो बुधीराम को बिलकुल पसंद नहीं था । इसी संघर्ष के कारण बाप बेटे में बोल-चाल हो जाती है । वह सुखीराम को समझाने की कोशिश करता है, किन्तु वह असफल होता है । “वाह रे मोर एम.पी.जी सरकार से कहीं के प्यार और इज्जत के लिए एक राशन की दुकान काहे नाही खुलवाय देत है । सुखीराम तुमरा नाम जिन्दा रखे की खातिर हम का कितनी हजार बार मरै का पड़ा है । कितना जूता और लात खाया है कि तुम कहीं सुखई न बन जाओ । कितनी बार ईश्वर के आगे मथा टेका है, कितनी बार ताजिया के सामने इमाम हुसैन से तुम का बड़ा

आदमी बनावे के लिए दुआँ माँगा है ।”<sup>५८</sup> बुधीराम जैसे समाज में कई लोग है, जो इस तरह की परिस्थिति का सामना करते है । उनके मन में यही ख्याल आता रहता हैं कि आखिर क्या करे ? इसी मजबुरी के कारण विवश हो जाता है और वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है ।

मानसिक द्वन्द्व के कारण मनुष्य तंग आकर अपने जीवन का अंत लाने की कोशिश करता है । वह अपने आप में घुटन सा महसूस करता है । परिणाम स्वरूप वह आत्महत्या कर लेता है । ‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास का नायक टोपी अपने समूचे जीवन में आदि से अंत तक इसी द्वन्द्व से गुजरता है और वह परिस्थिति के साथ सामन्जस्य नहीं कर पाता और आत्महत्या करने के लिए मजबुर हो जाता है । टोपी का जन्म हिन्दू परिवार में हुआ है, किन्तु उनकी मित्रता, इफ्फन से होती है जो मुसलमान है । यहाँ पर धार्मिकता के बंधनों के कारण परिवार द्वारा डाँट मिलती है । टोपी बचपन से मुसलमानों का छुआ खाता भी नहीं है । किन्तु बड़ा होकर अलिगढ मुस्लिम युनिवर्सिटी में प्रवेश लेता है । वहाँ सलीमा नाम की मुस्लिम महिला से प्रेम हो जाता है । किन्तु वह उसे मुस्लिम होने कारण विवाह नहीं कर सकता । टोपी के जीवन में निराशा ही है । उनका समाधान केवल जीवन का अंत मानता है और वह आत्महत्या कर लेता है । डॉ. राही ने इस उपन्यास की भूमिका में ही समस्या का निर्देश किया है । “मुझे यह उपन्यास लिखकर कोई खुशी नहीं हुई । क्योंकि आत्महत्या सभ्यता की हार है । परंतु टोपी के सामने कोई ओर रास्ता नहीं था । वह टोपी में भी हूँ और मेरे ही जैसे और बहुत से लोग भी है । हम लोगों में और टोपी में बस एक ही अन्तर है । हम लोग कहीं न कहीं, किसी न किसी अवसर पर ‘कम्प्रोमाइज’ कर लेते है, टोपी कोई देवता या पैगम्बर नहीं था । किन्तु उसने ‘कम्प्रोमाइज’ नहीं किया और इसलिए उसने आत्महत्या कर ली ।”<sup>५९</sup> समाज में आज टोपी जैसे कई युवक है, जो अपने आप से ‘कम्प्रोमाइज’ नहीं कर सकते और इसी समस्या को लेकर वह

आत्महत्या करने पर विवश हो जाते हैं। डॉ. राही यहाँ पाठकों को बताना चाहते हैं कि इस तरह की जो मानसिकता है, इससे बाहर आकर समाज को जागरूक करना उनका लक्ष्य रहा है। उपन्यासकार पात्रों के माध्यम से बताना चाहते हैं कि समस्या का समाधान आत्महत्या मात्र नहीं है।

आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व में ग्रामीण लोग पुराने विचारों को लेकर जी रहे हैं। इसी पुराने विचारों, परंपराओं आदि का सामना आज की युवा पीढ़ी को करना पड़ता है। 'आधा गाँव' उपन्यास में 'तन्नू' विवाह संबंधी द्वन्द्व में फँसा है। 'तन्नू' फौज में नौकरी करता है और छूट्टियों में गाँव में आता है, तब फुस्सू चा से मुलाकात होती है। वह उनके पिता के निधन की खबर सुनाते हैं और साथ ही उनकी अंतिम इच्छा के बारे में बताता हैं। "ऊर उनकी बड़ी ख्वाहिश रही कि कोई तरह सल्लो को ऊ अपनी बहू बना ले। हम त उनसे कहा भी की भाई आपका हुकुम सिर आँख पर। तन्नू माशा अल्लाह से दुनिया देख के आइ हैं। अब ऊ कऊनो निपट देहातिन से का बियाह करि है भला।"<sup>६०</sup> तन्नू की शादी सलमा से करने की बात करता है। किन्तु तन्नू इस बात से अन्जान है। तन्नू इस रिश्ते को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं। क्योंकि इसके मन में द्विधा है कि क्या अब्बाने यह इच्छा कि होगी? क्या मुझे यह इच्छा पूरी करनी चाहिए, ऐसे कई सवाल उनके मन में दौड़ने लगते हैं और इसी संघर्ष में तन्नू की स्थिति गंभीर हो जाती है।

जमींदारी प्रथा पुराने समय से चली आ रही थी। किन्तु जब जमींदारी प्रथा समाप्त हो जाती है, तब समय बदलने के साथ-साथ परिस्थितियाँ भी बदलती हैं। समय बदलने के साथ-साथ जमींदारों के झूठे श्रेष्ठतम के दम्भ खोखले होने लगते हैं। जातियता की दीवारे जमींदारी उन्मूलन से टूटने लगती है। जिसके फलस्वरूप जमींदार लोग इस बात को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होते। उनकी स्थिति जमींदारी उन्मूलन के बाद नाजूक होती है। उनके

घर खाली हो जाते हैं। वह जमींदारी समाप्त हो जाने पर भी अपने आदर्शों को पकड़े हुए हैं और वर्तमान परिस्थिति का स्वीकार नहीं कर सकते। “हर घर में अंबारो बक्स थे। हर जनाने कमरबंद में कुंजियों का भारी गुच्छा था, पर बक्स खाली थे। तालों की कई जरूरत न थी, पर औरते कुंजियों के गुच्छों से चिपटी हुई थी। क्योंकि वही उनकी खुशहाली के जमाने की यादगार रह गये थे।”<sup>६९</sup> जमींदारी खत्म हो जाने पर उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इसी कारण वे अपनी दरिद्रता को छुपाने का प्रयास करते हैं और वह अपने आप को इस परिस्थिति से बाहर नहीं निकाल सकते और इसी द्वन्द्व में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इसी प्रकार डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में विविध पात्रों के माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों में आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व प्रस्तुत किया है।

### ➤ असफल दाम्पत्य जीवन :

नारी जीवन का मूल्यांकन दाम्पत्य जीवन की सफलता के आधार पर किया जाता है। समाज में प्रारंभ से ही कन्या को यह शिक्षा दी जाती है कि वह विवाह के पश्चात पतिव्रत धर्म का निर्वाह करती हुई आदर्श जीवन व्यतीत करे। पर दुर्भाग्य से भारत के अधिकांश परिवार दाम्पत्य जीवन में माधुर्य का अनुभव नहीं कर पाते, सदा से पुरुष की स्वेच्छाचारिता एवं उसके एकाधिकार की भावना नारी को भोग्य की वस्तु के अतिरिक्त कुछ नहीं समझ पायी। वह उसे दासी की तरह खरीदकर अमानुसिक व्यवहार करता रहा है। अंग्रेजों के आगमन से बहुत पूर्व ही मुगलकाल में विलासी जीवन के कारण नारी की दूर्दशा हो गई थी। आज नारी की स्थिति अपेक्षाकृत बहुत परिवर्तित हो गई है।

प्रेमचंद युग में नारी की दशा अत्यंत सोचनीय थी। उस पर समाज का कठोर अंकुश लगाया गया था। अनमेल विवाह एवं अभिभावकों द्वारा

आयोजित विवाहों से भी स्त्री-पुरुष के संबंधों में तनाव बढ़ रहा है । अनेक वैवाहिक कुरीतियाँ ने दाम्पत्य जीवन में विष घोल दिया था । परंपरागत रूढ़ियों के कारण वैसे ही दाम्पत्य जीवन में सुख एवं आशा की किरण कम दिखाई देती थी । दाम्पत्य जीवन में सुख और संचार के लिए आवश्यक है कि पति-पत्नी में वैचारिक एकता, स्वभावगत साम्य और गुणों में सामन्जस्य हो, वैवाहिक कुरीतियों के कारण इन गुणों के स्थान पर धन संपत्ति को अधिक महत्त्व दिया गया और भिन्न-भिन्न विचारवाले युवक युवतियों को विवाह सूत्र में बाँध दिया गया । अतः इसका परिणाम सुखद सिद्ध नहीं हो सका ।

आज विवाह के बाद पति-पत्नी के वैवाहिक जीवन सुखी क्यों नहीं होते ? इसके पीछे अनेक कारण हैं । जैसे अनमेल विवाह, पति-पत्नी में वैचारिक भिन्नता, पारस्परिक दुर्व्यवहार, अवैध प्रेम संबंध, अधिकार भावना, स्त्री की अशिक्षा, अंधश्रद्धा, पति सेवा या निष्ठा का अभाव, पारस्परिक अविश्वास, पुराने एवं नये विचारों का संघर्ष आदि । ये सारी बातें असफल दाम्पत्य जीवन में मिलती हैं । समाज में जब तक नारी धर्म का एकांकी आदर्श प्रचलित रहेगा, तब तक दाम्पत्य जीवन सफल नहीं बन सकता ।

‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में रुकय्या का विवाह शंकर दयालजी से होता है । शंकर दयालजी के साथ विवाह करना रुकय्या की मजबूरी थी । किन्तु रुकय्या शंकर दयालजी को पसंद नहीं करती । किन्तु विवाह के बाद रुकय्या अपने जीवन में खालीपन महसूस करती है । “शंकर दयालजी की सूरत कभी गौर से देखी ! उसकी बिच्छू जैसी आँखें जब मेरे बदन पर रेंगती हैं तो मुरझा जाती हूँ । बूढ़ी हो जाती हूँ । अकेली हो जाती हूँ ।”<sup>६२</sup> शंकर दयालजी के विवाहित जीवन में इस तरह के अनमेल के कारण दाम्पत्य जीवन में दरारे पड़ती हैं । दाम्पत्य जीवन में कड़वाहट पैदा करने में आज की आधुनिकता और इन आधुनिकता के पीछे दौड़ते इन युवक-युवतियों की लालसा कारणभूत है । आज ज्यादातर विवाहतर संबंध टूटने के पीछे आज के युवाओं

की मानसिकता कारणभूत है, क्योंकि आजकल युवाओं में सहनशक्ति का अभाव दिखाई देता है । दिन-प्रतिदिन महानगरीय सभ्यता में आदमी खींचता चला जाता है । महानगरों में कई युवतियाँ अपने सुखी जीवन के सपने देखती हैं । इसी कारण वह फिल्म इन्डस्ट्री में काम करने लगती है, और वहाँ फिल्म के हीरो पर स्त्रियाँ आशिक हो जाती हैं । शाहजादा काश्मीरी की मुलाकात पुष्पा के साथ होती है । पुष्पा का विवाह चावला साहब से हुआ है । शाहजादा के साथ पुष्पा का अफैर चल रहा है । अतः वह चावला साहब से कम ध्यान और शाहजादा काश्मीरी पर मरती है । पुष्पा जानती है कि किसी फिल्म के हीरो चावला साहब नहीं हुआ करते, इस बात को लेकर दोनों के विवाहित जीवन में तनाव आ जाता है । दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच प्रेम का अभाव है और उसी प्रेम को प्राप्त करने के लिए पुष्पा शाहजादा के पास जाती है ।

दाम्पत्य जीवन को असफल बनाने में कई परिस्थितियाँ निर्मित होती हैं । महानगरों में आज पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियाँ भी किसी न किसी व्यवसाय से जुड़ी होती हैं । आज की नारी अबला नहीं है । वह आज किसी भी व्यवसाय में अपना स्थान जमाये हुए है । इसी व्यवसाय में जब दोनों पति-पत्नी की रूची अलग होने के कारण दोनों एक दूसरे के साथ एडजस्ट नहीं कर पाते, क्योंकि दोनों एक दूसरे के साथ सेट नहीं हो सकते, परिणाम स्वरूप दाम्पत्य जीवन टूटता नजर आता है । 'सीन ७५' उपन्यास में फन्दाजी और राधिका के दाम्पत्य जीवन में संघर्ष चल रहा है । फन्दाजी फिल्मों में कहानियाँ लिखने का कार्य करते हैं । जिससे वह अपना समय राधिका को नहीं दे पाते, परिणाम स्वरूप राधिका के मन में उसके पति के लिए जो प्रेम भावना थी वह कम होती जा रही है और वह रामनाथ नामक दूसरे युवक के चक्कर में पड़ जाती है । फन्दाजी अपने दाम्पत्य जीवन में पड़ी इस खाई को दूर करने की कोशिश करते हैं, किन्तु उनको बचाने में असमर्थ रहते हैं ।

आजकल बदलते जमाने और अपनी इच्छाओं को पूरी करने और भौतिक सुविधाओं के पीछे भागते हुए परिवार जिनकी आय बहुत कम है, किन्तु वह सपने आसमान के देखते हैं। ऐसी स्त्रियाँ जो अपने पति की आय को ध्यान में न रखकर खर्च करती हैं। रमा और भोलानाथ ऐसे ही दंपती हैं। रमा बड़े-बड़े फ्लेट बुक कराने के सपने देखती हैं और भोलाराम की जेब से रुपये चुराती रहती हैं। जिससे अपना खर्च वह निकालती हैं। रमा की इस तरह की कुटेव के कारण दोनों के बीच तकरार होती रहती है। इधर मनचन्दानी और साधना के विवाहित जीवन में गड़बड़ होती है। मनचन्दानी कन्स्ट्रक्शन का काम करता हैं और साधना फिल्मों में काम करती है। दोनों का व्यवसाय और सोच अलग होने के कारण एडजस्ट नहीं कर पाते और इसी कारण साधना अली अमजद की ओर आकृष्ट होती है। यहाँ पर पति-पत्नी एक दूसरे को समझने तथा एक दूसरे से अनुकूलन प्राप्त नहीं कर पाते, जिससे दाम्पत्य जीवन डगमगाने लगता है।

विवाहित जीवन को तोड़ने में स्त्री-पुरुष के बीच की छोटी-सी-छोटी समस्या उनको एक दूसरे से अलग कर देती है। दाम्पत्य जीवन को सफल एवं सुखमय बनाने के लिए एक दूसरे से एडजस्ट करना पड़ता है। डॉ. राही ने दाम्पत्य जीवन पर असर करनेवाले तत्व पर प्रकाश डाला है और समाज की वास्तविकता को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। सफल दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी के लिए एक दूसरे से प्रेम, विश्वास, अहं का त्याग और एक दूसरे को समझना आवश्यक बन जाता है।

### ➤ **माता-पिता और संतान :**

आधुनिक मानव जीवन में पुरानी और नई पीढ़ी का संघर्ष उल्लेखनीय है। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी को स्वीकृति नहीं दे पा रही है। पीढ़ियों के बीच का संघर्ष आदिकाल से चला आ रहा है। किन्तु आज के संघर्ष नितान्त



भिन्न है। पिता-पुत्र के बीच जो नये संबंध उभरे हैं, उनमें विद्रोह भाव व्यक्त हुआ है।

स्वतंत्रता परवर्ती परिवेश में व्यक्ति और परिवार के बीच खाई बढ़ती जा रही है। नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच संघर्ष युगीन संदर्भ में गति पा रहे हैं। माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि संबंध भी संयुक्त परिवारों के विघटन में खण्डित हो रहे हैं। तनाव की यह प्रक्रिया समूचे व्यक्तित्व को अंदर और बाहर से घेरे हुए है। इसी कारण व्यक्ति न तो आधुनिक बन पाता है और न ही स्थापित मूल्यों का प्रवक्ता। वस्तुतः यह संक्रमण की स्थिति है।

‘नीम का पेड़’ उपन्यास में बुधीराम और उनके बेटे सुखीराम के बीच संघर्ष चलता है। बुधीराम अपने बेटे को पढ़ा लिखाकर बड़ा आदमी बनाने का सपना सँवारता है। किन्तु बड़ा होकर सुखीराम राजनीति में जाकर भ्रष्टाचार करता है। तब बुधीराम सुखीराम को लेकर चिंतित होता है। उन्हें बेटे का सुख नहीं मिलता। “सब कुछ मिल गया, इज्जत, अयसी की न जाने कौन-कौन पाँव छुअत है और चले जात है ..... बस नाही पाएन तो नीम के पेड़ की टंडक और बेटे का सुख।”<sup>६३</sup> बुधीराम को इस बात का दुःख होता है कि वह सुखीराम से प्रेम नहीं पा सकता। बुधीराम की व्यथा एक पिता की व्यथा है, जो अपने पुत्र को लेकर चिंतित रहता है। बुधीराम ने अपना समूचा जीवन मजदूरी करके सुखीराम को बड़ा किया था और जब बड़ा होकर अपने बेटे का इस तरह के व्यवहार से उनके हृदय में दुःख होता है। सुखीराम बड़ा होकर अपने बाप की इज्जत का भी ख्याल नहीं करता और जब बुधीराम उनको रोकने की कोशिश करता है, तब वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि “अगर आपको मेरी मेहनत की कमाई हराम की लगती तो अब तक आपने जो खाया है उसे उलट दीजिए, हलक में ऊँगली डालकर उल्टी कर दीजिए।”<sup>६४</sup> संतानों से ऐसी हरकत करने पर पिता की जो दशा होती

है, वह कितनी करुण होती है । हमारे समाज की यह कैसी विडम्बना है कि एक समय था, जब पिता का आदेश सर्वमान्य था और आज है कि उल्टे पिता के प्रति उदण्ड व्यवहार किया जाता है । पिता के प्रति युग का विवेक चिरंतन मूल्य है, किन्तु इसका विघटन ही चतुर्दिक प्रवर्तमान है । बुधीराम की विवशता के कारण वह अपने आपको कोशता रहता है । इसके लिए वह अपने आपको जिम्मेदार बताता है । “हमका इश्वर पैदा एही दिन के लिए किए है कि हम डाँट और गाली खाई ..... कबहू मियाँ लोगन की, कबहू अपने बेटवा की, हमारे नशीब में सुख नही, न अपने बेटवा का और न अपने हाथों से लगाए गए नीम के पेड़ का ।”<sup>६५</sup> यहाँ पर पिता की विवशता उनको मजबुर कर देती हैं । वह सब कुछ होते हुए भी कुछ भी नहीं कर सकता । उसके लिए सब कुछ सहन करने के सिवा कोई उपाय नहीं दिखाई देता । माता-पिता के संतानों का इस तरह का व्यवहार आज परिवार विघटन जैसी समस्या का सामना करना पड़ता है । आज माता-पिता जब वृद्ध अवस्था में पहुँचते हैं, तब संतान उनके प्रति इस तरह का व्यवहार करते हैं । तब उस माता-पिता को मजबुर होकर वृद्धाश्रम जैसी संस्थाओं का आश्रय लेना पड़ता है । आज के आधुनिक युग में दुनिया दिन-प्रतिदिन प्रगतिशील रही है किन्तु मानव मूल्य नष्ट होते जा रहे हैं । इसके पीछे आज की युवा पीढ़ी की मानसिकता कारणभूत हैं । और इसका फल माता-पिता को भुगतना पड़ता है । डॉ. राही समाज की इसी करुणता को अपने उपन्यास के माध्यम से व्यक्त करते हैं, जो भारतीय संस्कृति को नष्ट करती जा रही है ।

### ➤ *संतानों के प्रति माता-पिता का अलगाव :*

भारतीय समाज में बच्चे का रूप माता-पिता के लिए भगवान का स्वरूप होता है । बच्चे बड़े होकर माता-पिता के साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं, ऐसा सुना है, किन्तु कभी-कभी माता-पिता द्वारा भी बच्चों के साथ

अव्यवहार किया जाता है । परिवार में बालक के जन्म से जो खुशी का माहौल होता है किन्तु कई ऐसे भी परिवार हैं जिसमें बच्चे के जन्म से संघर्ष शुरू हो जाता है । ऐसी स्थिति में माँ जो अपने बच्चे को जन्म देती है, वह उनके प्रति घृणा करती है । ऐसे बच्चों की स्थिति दयनीय हो जाती है । डॉ. राही ने ऐसे बच्चे जो परिवार से त्याग दिये जाते हैं, ऐसे बच्चे के प्रति प्रेम और सहानुभूति व्यक्त की है । बच्चे बचपन से ही प्रेम के भूखे होते हैं । उनको माँ का वात्सल्य चाहिए, किन्तु वह उनसे अछूता रहता है । ‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में टोपी अपने माता-पिता की दूसरी संतान है । टोपी का चेहरा बचपन से ही कदरूपा होने के कारण परिवार के सब व्यक्ति उनसे नफरत करते हैं । टोपी मन ही मन में घूटन महसूस करता है और अपने आप को कोशता रहता है । रामदुलारी टोपी की माँ है । वह भी टोपी से नफरत करती है । “रामदुलारी का कलेजा सास की बातों से पग गया । उसका दिल स्वस्थ हो गया और शायद इसी खटाश के कारण उनका दूध फट गया । दूध फटा हो या न फटा हो परन्तु दूध उतरा नहीं । उसे तरह-तरह के हरीरे पिलाई गए, भाँति-भाँति के हलवे और लड्डू खिलाएँ गये । सैंकड़ों टोने-टोकने लिए गए । पीर फकीरों की खुशामद की गई ।”<sup>६६</sup> रामदुलारी के कई प्रयत्नों के बावजूद टोपी के प्रति रामदुलारी के मन में मातृभावना का भाव न आया । रामदुलारी को अपने दूसरे संतानों से मातृभाव था । टोपी को हमेशा मून्नीबाबू के उतरन कपड़े ही पहनने पड़ते । दादी भी मून्नीबाबू को कहानियाँ सुनाती और टोपी से नफरत करती थी । इस वातावरण से टोपी का दिल उब गया और उन्होंने एक दिन दादी से कह दिया – “दादीजी आप उस काले कलूटे कृष्ण को पूजती हैं ना तो एक न एक दिन आपकी पूजा जरूर काली हो जाएगी ।”<sup>६७</sup> इसमें बालक की विद्रोहात्मक भावना झलक आती है । टोपी हमेशा परिवार से प्रेम भावना की अपेक्षा रखता है । किन्तु उसे सिर्फ धिक्कार ही मिलता है । जिससे उसका मन उब जाता है और वह घर

छोड़कर भाग जाता है । बच्चों की इस तरह की दयनीय स्थिति समाज में कलंकरूप बन जाती है । डॉ. राही ने ऐसे बच्चों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है । बच्चों के साथ इस प्रकार के व्यवहार से बच्चों की स्थिति विद्रोहात्मक हो जाती है । इस विद्रोहात्मक वृत्ति के कारण वह गुनाहित प्रवृत्ति में जुड़ जाता है । ऐसे बच्चे बड़े होकर अपने आपमें अकेलापन महसूस करते हैं । जिससे ऐसे बच्चों को न परिवार स्वीकारता है और न समाज । तब उनकी स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है ।

### ➤ *संयुक्त परिवार का विघटन :*

भारतीय समाज की दृष्टि से संयुक्त परिवार सामाजिकता, संस्कृति एवं परंपराओं की अन्योन्य इकाईओं की एक द्योतक है । वह सामाजिक चेतना का एक अंग है । समाज की सार्थक एवं परिपूर्ण इकाई परिवार है । व्यक्ति समाज का एक अभिन्न क्षेत्र या अनिवार्य सदस्य है तथा उसका परिपोषण एवं संवर्धन परिवार पर अवलंबित है । व्यक्ति एवं परिवार का संबंध सांस्कृतिक परंपराओं के आधार पर नीति नियमों से बंधा होता है तथा विरासत के रूप में व्यक्ति एवं परिवार की पारस्परिक आश्रितता पर प्राप्त होता है । संयुक्त परिवार में विघटन में इसके विपरित या विरोधी अवस्था होती है, संयुक्त परिवार में अलग-अलग सदस्य पारिवारिक जीवन को आनंदमय रखने में सफल रहते हैं । किन्तु अनेकानेक कारणों से वह सफल नहीं होता । डॉ. सरला दूबे ने इन परिस्थितियों को पारिवारिक विघटन कहा है । “पारिवारिक विघटन वह अवस्था है जिसमें परिवार के सदस्यों में हितों, उद्देश्यों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं की एकता के अभाव से उनमें प्रेम असहयोगिता तथा आत्मत्याग की भावनाएँ नहीं हैं । जिसके कारण परिवार अपने प्रमुख कार्यों को करने में असफल है और पारिवारिक जीवन सुखी नहीं है ।”<sup>६८</sup> उपर्युक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि परिवार के सदस्यों में समन्वय, प्रेमभावना

का वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक एवं औद्योगिक कारणों से नष्ट होना परिवार विघटन हो सकता है । पारिवारिक विघटन के लिए अनेक परिस्थितियाँ कारणभूत होती हैं ।

स्वतंत्रता के पूर्व प्रारंभ हुई विघटन की यह प्रवृत्ति अब उत्पन्न तीव्र हो गई है और आज तो यह एक नया मूल्य बनकर प्रतिष्ठित हो गई है । नौकरी पेशे की वृद्धि औद्योगिक विकास, यातायात की सुविधा, नगरों के आकर्षण, नई शिक्षा एवं सभ्यता आदि के सम्मिलित प्रभाव से वैयक्तिक स्वार्थों के प्राबल्य ने पारिवारिक विघटन प्रस्तुत किया है । आज समाज में आदर्शों, मूल्यों एवं परंपराओं के स्खलन से संयुक्त परिवार की व्यवस्था एवं संगठन टूट रहा है । संबंधों में बदलाव से पारिवारिक जीवन अशांत एवं कलहपूर्ण हो गया है ।

भारत-पाकिस्तान विभाजन के बाद कई मुसलमान लड़के अपने परिवार को छोड़कर पाकिस्तान चले जाते हैं । ‘ओस की बूँद’ उपन्यास में बजीर हसन का बेटा अली बाकर अपना घर परिवार को छोड़कर पाकिस्तान चला जाता है । अली बाकर पाकिस्तान जाकर दूसरी शादी करता है और आबेदा को तलाक देता है । अपनी पारिवारिक स्थिति की चिंता किये बिना परिवार में सबको छोड़कर पाकिस्तान चला जाता है । यहाँ पर परिवार में विघटन का मुख्य कारण पाकिस्तान निर्माण था । पाकिस्तान निर्माण के कारण युवकों को कई तरह के प्रलोभन दिए गये । जिससे ये युवक आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए अपने घर के सभी सदस्यों को छोड़कर चल जाते हैं और बाद में उन सब को भूल जाते हैं । ऐसे परिवार में बाद में माता-पिता, पत्नी और संतानों की स्थिति दयनीय हो जाती है । परिवार विघटन का एक कारण पारिवारिक संघर्ष भी महत्वपूर्ण है । परिवार में हो रहे संघर्ष के कारण आदमी उब जाता है और वह अपना परिवार छोड़ने पर विवश हो जाता है । ‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास का नायक टोपी जो अपने ही परिवार के धृष्टित

व्यवहार से परेशान है । उसको परिवार में से किसी भी सभ्य से प्रेम नहीं मिलता, अतः वह अपना घर छोड़कर अलीगढ़ चला जाता है । वहाँ व्यवसाय की खोज में भटकता रहता है । साथ ही उनका बड़ा भाई मून्नीबाबू भी पाकिस्तान जाने की लालच के कारण अपनी पत्नी और बच्चे को लेकर पाकिस्तान चला जाता है । यहाँ पर मून्नीबाबू अपने बाल-बच्चे समेत पाकिस्तान चले जाने से परिवार में माँ-बाप अकेले रह जाते हैं । वृद्धावस्था में माँ-बाप को अपना गुजराना चलाने के लिए दूसरों के पास सहायता माँगनी पड़ती है । बाल-बच्चों के होते हुए भी उन माँ-बाप को अनाथ की तरह भटकना पड़ता है । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में भी आर्थिक प्रलोभनों के कारण सफ़िरवा पाकिस्तान चला जाता है । ‘तन्नू’ पाकिस्तान का विरोध करता है, किन्तु ‘सईदा’ के प्रेम को भूलने के लिए पाकिस्तान चला जाता है । हकीम साहब इस पारिवारिक विघटन के बारे में बताते हैं । ए “बशीर ! ई पाकिस्तान त हिन्दू-मुसलमान को अलग करे को बना रहा । बाकी हम त ई देख रहे हैं कि ई मियाँ-बीबी, बाप-बेटा और भाई-बहन को अलग कर रहा ।”<sup>६६</sup> भारत पाकिस्तान विभाजन के कारण होनेवाले परिवार विघटन की परिस्थिति का वर्णन किया गया है ।

परिवारों के इस तरह के टूटने का परिणाम व्यापक रूप में मुस्लिम परिवारों में देखने को मिला । कई परिवारों के प्रमुख ही देश और अपने परिवार को छोड़कर जाने से परिवार का आर्थिक आधार ही समाप्त हो गया और उन परिवारों को जीविका चलाने के लिए रास्ते पर आना पड़ा । कई परिवार आर्थिक रूप से विकलांग हो गए । घर में रहासहा बेचकर खाने की नौबत उन पर आई, तो कई बुजुर्ग व्यक्तियों को अपने बुढ़ापे में भी काम पर जाने के लिए विवश होना पड़ा, पति जीवित होकर भी अनेक स्त्रियों को विधवा का जीवन जीने की नौबत आ गई । कई परिवार मानसिक रूप से टूट गये । यहाँ पर परिवार की इस स्थिति के कारण कुछ लोगों ने निराश

और वैमनस्य अवस्था में आत्महत्या भी कर ली । परिवार की इस तरह की विघटन की स्थिति के कारण समाज की बंधारण व्यवस्था टूटती जाती है और परिवार दिन-प्रतिदिन संकुचित होता जाता है । डॉ. राही ने इन समस्याओं को लेकर अपने साहित्य के माध्यम से समाज तक पहुँचाया और इन समस्याओं के साथ जुड़ी विभिन्न परिस्थितियों को प्रस्तुत करके इनको जड़ से नाबूद करने का प्रयत्न किया है ।

#### (घ) नारी का स्वरूप :

समाज में नारी का अस्तित्व पुरुषों की तुलना में विविध श्रृंखलाओं में आबद्ध पराधीन और दासता से परिपूर्ण है । पुरुषों द्वारा निर्मित परंपराओं नीति नियमों में नारी अन्याय का शिकार रही है । बुद्धिवादी आंदोलनों का यह परिणाम है कि नारी सामाजिक स्थान से उपर उठकर पुरुषों के साथ बराबरी का स्थान पाने के लिए प्रयत्नशील है । बंधनों से मुक्ति पाने के लिए वह छटपटा रही है । नारी के विषय में डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में सामाजिक चेतना की दृष्टि से अपना चिंतन प्रस्तुत किया है । मुख्य रूप से महानगरीय समाज के पुरुष का एक वर्ग नारी को भोग्या मानता है । भारतीय परंपरा में एक सूत्र है - 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' । अर्थात् जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवताओं का निवास होता है । लेकिन यह धारणा आज कही भी चरितार्थ होती हुई दृष्टिगोचर नहीं होती । डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में नारी के विविध स्वरूपों का वर्णन किया है ।

डॉ. राही ने पूर्ण संवेदनशीलता के साथ तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति, उसकी मानसिकता के विविध पहलुओं, उसकी समस्याओं, भावनाओं, विसंगतियों एवं विवशताओं को सशक्त एवं प्रमाणिक अभिव्यक्ति दी है । भारत स्वाधीनता के बाद जनतांत्रिक परिवेश में नागरिक अधिकार एवं कानूनी सुरक्षा मिलने के बाद नारी की सामाजिक स्थिति और उसकी मानसिकता में अभूतपूर्व

बदलाव आया था । जिससे नारी का अपना व्यक्तित्व तो बदला ही साथ-ही-साथ इस परिवर्तन का सामाजिक जीवन विशेष रूप से पारिवारिक संबंधों पर विशेष प्रभाव पड़ा । डॉ. राही ने अपनी रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति एवं समस्याओं से संबंधित विविध संदर्भों की यथार्थ प्रस्तुति की है । यथा -

➤ **शिक्षित आधुनिक नारी :**

आज के भौतिकवादी युग में पुरातन सभी मान्यताएँ परिवर्तित होती जा रही हैं । इस परिवर्तन का प्रभाव हर व्यक्ति पर पड़ा है । समाज सुधारकों ने भिन्न-भिन्न आन्दोलन द्वारा समाज में फैली कुरीतियों के प्रति ध्यान आकृष्ट कराया और इन्हें त्यागने की प्रेरणा दी । इस प्रेरणाने मानव मात्र के हृदय में विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित कर दी और वे इन समस्त कुरूपताओं को नष्ट करने हेतु प्रयास करने लगे । जिसमें समाज में स्वतंत्रता, समानता और भाई-चारे के सिद्धांत की प्रतिष्ठा हुई और नवीन विचारधाराओं ने उन्हें प्रगति की ओर अग्रसर किया, इस परिवर्तित दिशा का सर्वाधिक प्रभाव नारी पर पड़ा । सामाजिक दृष्टि से देखे तो भारत की स्वतंत्रता के बाद होनेवाले सबसे अधिक सारभूत और उल्लेखनीय परिवर्तन में से एक है - नारी समाज की अपेक्षित मुक्ति । घरों की चार दिवार से निकलकर उसका बाहर हलचल में शामिल होना । नारी का पतन समाज का पतन है । आजकल इस परिवर्तन के फलस्वरूप भारतीय नारी शताब्दियों की परतंत्रता की बेड़ी से मुक्त हुई । अपने अधिकारों के प्रति उसमें जागरूकता उत्पन्न हुई । युगों से निश्चिन्त कार्यों में परिवर्तन हुआ । नारी ने आज घर से बाहर निकलकर, परंपरागत सीमाओं को तोड़कर, समाज में अपने महत्वपूर्ण योगदान द्वारा नवीनता को प्रस्थापित किया ।



आधुनिक युग में शिक्षा ने नारी में आत्मविश्वास का संचार किया । आज के युग में नारी समस्त पुरातन मूल्यों को नकारकर सामाजिक आग्रहों को तोड़ने में संलग्न है । उसकी क्षमताओं पर प्रकाश डालने का कार्य कई साहित्यकारों ने किया है । व्यक्ति को सुसंस्कृत, संवेदनशील बनाने के लिए शिक्षा की आवश्यकता है । नारी के जीवन को उन्नत बनाने का काम शिक्षा द्वारा ही संभव हुआ है । अतः जिस राष्ट्र में शिक्षा का प्रसार अधिक होता है उस राष्ट्र की प्रगति अधिक गति से होती है । जिस राष्ट्र में स्त्री शिक्षा का काफी प्रसार होता है, वहाँ शिक्षित स्त्रियों की संख्या अधिक होती है । वह राष्ट्र भी अधिकाधिक सुसंस्कृत माना जाता है । अतः समाज में केवल पुरुषों को शिक्षा देना और स्त्री को शिक्षा से वंचित रखना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि स्त्री मानव समाज का अभिन्न अंग है । निरक्षरता और अज्ञान देश के विकास के लिए अभिशाप स्वरूप है ।

डॉ. राही ने इस तथ्य को स्वीकार किया है । उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री पात्र शिक्षित और जागरूक होते दिखाया है । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में ‘सईदा’ शिक्षित नारी है । वह अलीगढ़ विश्वविद्यालय में पढ़ती है । किन्तु नीतिगत एवं रुढिगत व्यक्ति की दृष्टि से वह चरित्रहीन समझी जाती है । वह नई पीढ़ी के ऐसी लड़की है, जो अपने परिवार का सहारा बनती है । ‘सईदा’ गंगोली की पहली लड़की थी, जो इतनी पढ़ी लिखी है । वह नौकरी करके परिवार की सहायता करती है । वह शिक्षा के माध्यम से गाँव में जागरूकता लाने का प्रयास करती है । गाँव में सईदा के लिए तरह-तरह की बातें होती रहती हैं । सईदा की तुलना सलमा और गाँव की अन्य लड़कियों के साथ होती है, फिर भी किसी की भी परवाह किये बिना वह नौकरी करती है । “ सईदा ने तमाम सुरूका और शरीफाओं के नाकभों चढ़ाने के बावजूद उसने नौकरी कर ली थी शुरू-शुरू में तो अब्बू मियाँ को यह बात बहुत बुरी लगी थी । उन्होंने सईदा से बोलना तक बंद कर दिया था । लेकिन तब जमींदारी

खत्म नहीं हुई थी। इधर-उधर के लोगों ने काफी वाते बनाई। सईदा कई लोगों में फँसायी गई। उनके दो-एक पेट गिराये गये। सईदा की माँ ने कमायत मचाई लेकिन बाद में अब्बू मियाँ ने सईदा कसूर माफ कर दिया। फिर उसकी माँ भी उसकी कमाई का बनाया हुआ मातमी लिबास पहनकर मजलिस के फर्स पर जा बैठी।<sup>१०</sup> इस प्रकार शिक्षा प्राप्त लड़कियों की मानसिकता में धीरे-धीरे परिवर्तन आ गया। शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ने से नारी के जीवन में जागरूकता आयी।

‘ओस की बूँद’ उपन्यास की स्त्री पात्र शहला, शहरनाज आदि पढ़े लिखे स्त्री पात्र हैं। शहरनाज पढ़ने के लिए अलीगढ़ चली जाती है। वहाँ पढ़ाई के कारण उसका चरित्र विकसित होता है। समाज, देश व दुनियाँ में होनेवाले परिवर्तनों से परिचित होती है। वह पुरानी सामाजिक मान्यताओं की कायल नहीं है। ‘शहरनाज’ का चरित्र अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ उपन्यास में नहीं है, क्योंकि बाद में ‘शहरनाज’ भी तमाम लड़कियों की तरह वेश्या बन जाती है। शिक्षा व्यक्ति के विकास में महत्तम भूमिका अदा करती है। यहाँ पर शिक्षा के प्रभाव के कारण ‘शहरनाज’ का पात्र उसे दुर्बलता की तरफ ले जाता है। क्योंकि अलीगढ़ विश्वविद्यालय में वह कई लड़कों में फँस जाती है, परिणाम स्वरूप वह वेश्या बन जाती है। ‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में डॉ. राही ने स्त्री शक्ति का परिचय ‘शारदा’ के माध्यम से दिया है। शारदा मिडिल पास लड़की है। गाँव में पढ़ी लिखी होने के कारण वह महिला सुधार समिति बनाती है। वह उस समिति का नेतृत्व करती है। डॉ. राही ने आज के आधुनिक युग में शिक्षा के कारण नारी जीवन में आये बदलाव और उस बदलाव के कारण उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियों का जिक्र किया है। शिक्षा के कारण पुरातन विचारों से बाहर निकलकर नये विचारों को ग्रहण करने लगी है। डॉ. राही के उपन्यासों में शिक्षा के कारण दो तरह के पात्र हैं। एक वह है, जो शिक्षा के कारण अपना जीवन सुखमय बनाने की कोशिश करते हैं

और दूसरे ऐसे भी पात्र है, जो अपने जीवन में संघर्ष उत्पन्न करते रहते हैं । यहाँ डॉ. राही ने शिक्षा के लाभ और प्रत्याघातों को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है । आधुनिक शिक्षा नारी के लिए वरदान बन जाती है । किन्तु शिक्षा विपरित असर के कारण कभी-कभी अभिशाप रूप भी बन जाती है । डॉ. राही ने उन सब परिस्थितियों को अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

### ➤ भोगवादी नारी :

आधुनिकता के बढ़ते कदम और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण आज नारी ने भोगवादी रुख अपनाया है । अपनी भोगवादी लालसा को तृप्त करने के लिए वह अपने पतिव्रता धर्म को भी भूल जाती है । आज के भौतिकवादी युग में नारी स्वतंत्रता प्राप्त करती है । वह अपने आपको सब बंधनों से मुक्त चाहती है । इस परिस्थिति में वह भोगवादी वृत्ति को अपनाती है । नारी अपनी वासना को तृप्त करने के लिए अन्य पुरुष का सहारा लेती है । ऐसी भोगवादी नारियाँ अपने पति के होते हुए भी अन्य पुरुषों के साथ अनैतिक संबंध रखकर अपनी वासनाओं को तृप्त करती हैं ।

डॉ. राही के उपन्यासों में कई ऐसे नारी पात्र हैं, जो अपनी वासनाओं को तृप्त करती हैं । ऐसी महिलाएँ ज्यादातर महानगरों में रहनेवाली हैं । ‘सीन ७५’ उपन्यास में ऐसी नारी पात्र है, जो अपनी कामुकता को वश में नहीं कर सकती । रमा चौपड़ा जो भोलानाथ खटक की पत्नी है । किन्तु भोलानाथ की कम आय के कारण रमा की ऐशो आराम की जिन्दगी में रुकावट आ जाती है । वह अपने शौक पूरे करने के लिए असमर्थ है । अतः अपने शौक पूरे करने के लिए वह दूसरों का सहारा लेती है । रमा अपनी सहेली सरला के साथ मित्रता करके उनके साथ मौज-शौक करती है । साथ ही वह सरला के साथ समलैंगिक संबंध रखती है । फिर भी वह संतुष्ट नहीं है । रमा को

अपने पति में कोई दिलचस्पी नहीं है। यहाँ पर आज के आधुनिक युग में फैशन के पीछे पागल युवतियों का जिक्र किया है। रमा अपने आपको अधूरा मानती है और अपने इस अधूरेपन को पूरा करने के लिए वह अपना रास्ता खुद अपना लेती है। जिससे वह अन्य पुरुषों के चंगुल में फँस जाती है और विवश हो जाती है। दूसरी और राधिका भी ऐसी नारी है, जो अपनी वासना को तृप्त करने के लिए नौकर का सहारा लेती है। राधिका अपने पति से असंतुष्ट है। इसलिए घर के नौकर रामनाथ के साथ संभोग करती है। राधिका का पति फन्दाजी सबकुछ जानते हुए भी परिस्थिति के आगे विवश है। ऐसे परिवार में बच्चे भी वही रास्ते पर चलते हैं। राधिका की बेटी पुष्पलता भी अपने माँ के आशिक रामनाथ के साथ इश्क करती है। एक ही घर में माँ-बेटी सौत बनकर रहती है। ये दोनों स्त्री पात्र एक नई संस्कृति को जन्म देती है। जहाँ शारीरिक भूख सबकुछ है। दोनों ही नारियाँ एक दूसरे के इस कार्य से परिचित हैं, फिर भी दोनों अपनी कामुकता के कारण छोड़ नहीं सकती। “दोनों औरतों ने एक दूसरे की आँखों में झाँका। पलभर के लिए दोनों ने एक दूसरे का मुकाबला किया, फिर राधिका हार गई। वह बिगड़ गई। पर पुष्पलता पर उसके बिगड़ने का कोई असर नहीं हुआ। राधिका ने कहा भी कि रामनाथ इतनी रात गये उसके बेडरूम में क्या कर रहा होगा। यह कहकर उसने दरवाजा बन्द करना चाहा परंतु पुष्पलता अंदर आ गई और पहली बार राधिका को डर लगा और बाथरूम में छिपा हुआ रामनाथ धर्मेन्द्र से रामनाथ बन गया।”<sup>७१</sup> दोनों अपनी वासना को तृप्त करती है।

‘आधा गाँव’ उपन्यास में सईदा पढ़ी लिखी लड़की है। वह स्वतंत्र व्यक्तित्ववाली नारी हैं। वह विवाह करने के लिए इन्कार करती है। सईदा गंगोली में प्रेम और वासना के अभाव के कारण अलीगढ़ चली जाती है। वहाँ वह अलीगढ़ में कई पुरुषों के साथ संबंध रखती है। ‘ओस की बूँद’

उपन्यास में छोटी ममानी जो बेवा है, उन्होंने गुल्लू को गोद ले रखा है । छोटी ममानी अपनी हवश को पूरी करने के लिए गुल्लू का सहारा लेती थी । वह गुल्लू के साथ सोती है । गुल्लू भी इसका फायदा उठाता है । ममानी जैसी स्त्रियाँ अपनी कामुकता को वश में नहीं कर सकती । परिणाम स्वरूप समाज की निंदा और परवाह न करके वह अपनी इच्छाओं को पूरी करती है ।

### ➤ पुरातन विचारोंवाली नारी :

समाज में शिक्षा के बढ़ते कदम के कारण आज समाज में कई तरह के परिवर्तन आये हैं । रीत-रिवाज, रहन-सहन, बोल-चाल, आदि कई तरह के बदलाव आये हैं । इसका कारण है व्यक्ति का बदलता हुआ दृष्टिकोण, जिसके कारण वह दुनिया के साथ कदम मिलाकर चल सके । महानगरों में आजकल झूठी परंपराओं का ह्रास होता हुआ दिखाई देता है, किन्तु ग्रामीण जीवन में आज भी कई परिवार झूठी परंपराओं में जी रहे हैं । खास करके नारी जो आजकल शिक्षा के कारण आगे बढ़ी है । किन्तु गाँव की स्त्रियाँ आज भी अंधश्रद्धा में मानती हैं । जैसे अपने पति का नाम का उच्चारण करना गुनाह माना जाता है । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में अकबरी बी ऐसी स्त्री है, जो अपने पति का नाम मुहम्मद था, इसलिए मुहम्मदपुर नहीं पुकारती । “बशीर मियाँ की माँ अकबरी बीबी का यह हाल था कि चूँकि उनके मियाँ का नाम मुहम्मद था इसलिए वह मरते मर गयी, लेकिन आधी से ज्यादा जिंदगी गाजीपुर में गुजारने के बावजूद वह ‘मुहम्मदपुर’ को ऊहपुर कहा करती थी ।”<sup>७२</sup> उनकी बड़ी पोती सरवरी की शादी इब्ने अली से हुई तो नौहो पर मरसियों में वह बार-बार ‘अली’ शब्द आता है, तो वह अंग्रेजी में उनका नाम लेती है । तब यह देखकर अकबरी बीबी गुस्से में आ जाती है और इस अंग्रेजी शिक्षा का विरोध करते हुए बताती है कि “मैं कहत रहियू बशीर से कि ऊ किस्चियन

को मत बुलाओ । बाकी अंग्रेजी पढ़ाने का शौक चर्चाया रहा ना । अब कियो अंग्रेजी । तड़ातड़ मियाँ का नाम लिये जा रही है ।”<sup>७३</sup> इस तरह के पुराने विचारों में जी रही स्त्रियाँ आधुनिकता के कारण हो रही जागरूकता के सामने विरोध करती है और अपनी झूठी परंपराओं को बनाये रखने की कोशिश करती रहती है । आज भी शिक्षा के बावजूद ऐसी स्त्रियाँ इसको अपनी परंपरा मानकर जी रही है । डॉ. राही ने इन पुरातन विचारों से जुड़ी स्त्रियों के प्रति घृणा व्यक्त की है ।

‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में सैदानी बी जो सबको गुमराह करने का प्रयत्न करती है । सबको अल्लाह मियाँ का खौफ दिखाती है और बुरे कर्म करने से जहन्नम में जाना पड़ता है, वहाँ जिन-जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, वह सबको सुनाती है । वह बताती है कि अल्लाह मियाँ मुझे सपने में आते है । सब स्त्रियाँ उनके कहने में आ जाती है । सैदानी बी स्वर्ग और नर्क की बातें करती है और किताबों में से गाकर सबको सुनाती है । “इस बीबी ने जीते जी अपने खाविन्द की खिदमत न की और इसलिए मरने के बाद जहन्नम की आग में जल रही हैं । और इस बीबी ने अपने मियाँ के ऐबो पर पर्दा डाला तो जन्नत में सात हुरे इसकी खिदमत पर मुर्कर कर दी गई ।”<sup>७४</sup> इससे जाना जा सकता है कि मानो वह जन्नत और जहन्नम की सारी बातों को देख कर बताती हो और सबके सामने इसका ब्योरा बता रही है । किन्तु इसकी इन सब बातों से पाखंड ज्यादा दिखाई देता है । वह दूसरों को ज्ञान की बातें बताती है, किन्तु उनके जीवन में इन सब बातों का कोई मूल्य नहीं है । वह अपने पति को इतना सताती है कि इससे तंग आकर उन्होंने एक रंडी से निकाह कर लिया ।

युगीन परिवर्तन के साथ-साथ यह आवश्यक हैं कि व्यक्ति के विचारों में भी परिवर्तन आना चाहिए । किन्तु आजकल समाज में ऐसी स्त्रियाँ जो पुराने विचारों को लेकर जी रही है । ‘नीम का पेड़’ उपन्यास में दुखियाँ ऐसी

स्त्री है, जो पूरे परिवार के साथ संघर्ष करती है। दुखियाँ की इच्छा थी कि उनकी बहू शारदा की जचगी घर पर हो। क्योंकि वह बताती थी कि सुखीराम की पैदाईश घर पर हुई थी, तो फिर तुम्हारी जचगी अस्पताल में क्यों कराई जाय। दुखिया के मनमें डर रहता था कि अस्पताल में बच्चे बदल दिये जाते हैं। इसलिए अस्पतालवालों पर उनको भरोसा नहीं है। किन्तु बहू शारदा और घरवाले सब उनके फैसले के विरुद्ध में हैं, क्योंकि अस्पताल में उनकी देखभाल के लिए डोकटर आदि सब होते हैं और अंत में अस्पताल में ले जाना तय हुआ। किन्तु शारदा ने बच्ची को जन्म दिया तब दुखिया झल्ला उठती है। “उसे तो पहले ही शक था कि अस्पताल में बच्चा बदल दिया जाता है। बहू ने लड़का जना अस्पतालवालों ने लड़की से बदल दिया।”<sup>७५</sup> दुखिया इसी पुराने विचारों में फँसी है। उनके मन में जो ठनक सी है वह उसको लगाये रही है और वर्तमान परिस्थिति के साथ समझौता करने के लिए तैयार नहीं है। ऐसी स्त्रियाँ आज भी इन पुराने विचारों को लेकर जी रही हैं। अपनी यही पुरानी सोच के कारण वह दूसरों को गुमराह करने का प्रयत्न करती हैं और इन प्रयत्नों में वह सफल भी होती है। डॉ. राही ने ऐसी स्त्रियों का पर्दाफाश किया है, जिससे समाज में इस तरह की सोच में परिवर्तन आ सके और नये विचारों को लेकर अपना जीवन व्यतीत करे। डॉ. राही की यही कोशिश रही है।

### ➤ औद्योगिक सभ्यता में शोषित नारी :

नारी की स्थिति समाज में दयनीय सी हो जा रही है। आजकल नारी के उत्थान के लिए सरकार द्वारा योजनाएँ बनाई जाती हैं। स्त्री सशक्तिकरण के नारे लगाये जाते हैं। आज की नारी कमजोर नहीं है। वह भी पुरुष के साथ हाथ-से-हाथ मिलाकर चल सकती है। आज कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं

है, जहाँ स्त्री ने अपना स्थान न जमाया हो । हरएक क्षेत्र में स्त्री की एक अपनी भूमिका रही है ।

आजकल नारी को अपना गुजरान चलाने के लिए किसी व्यवसाय को अपनाना पड़ता है । स्त्री को इस तरह कार्य करने के लिए घर एवं परिवार से बाहर निकलना पड़ता है । वहाँ वे अकेलापन महसूस करती है । किसी भी क्षेत्र में स्त्री के अकेलेपन का लाभ उठाकर उन पर अत्याचार किये जाते हैं । उनको आर्थिक समस्याओं से मुक्त करने का लालच दिखाकर फँसाया जाता है । मध्यमवर्ग की लड़कियों को झूठे ख्वाब देखने की बुरी लत होती है । महानगरों में फिल्मों में हीरोइन बनने के सपने लेकर वह आती है । इन फिल्मी दुनिया में स्त्रियों का जो शोषण होता है, उनका वर्णन डॉ. राही ने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । ‘सीन ७५’ और ‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में ऐसी शोषित महिलाओं का जिक्र किया है । फिल्मी दुनिया में अपना करियर बनाने आई हुई लड़कियों के साथ रखैल जैसा व्यवहार किया जाता है । ‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में ऐसी लड़कियों को बहन, रखैल आदि नामों से संबोधित किया जाता है । यहाँ बड़े हीरो के लिए बहने परोसी जाती है । यहाँ हीरोइन बनने का रास्ता प्रायः प्रोड्यूसर के बेडरूम से गुजरता है । बम्बई में सपनों के मायालोक में खींचकर जो युवतियाँ आती हैं और संघर्ष करते हुए अपने सपनों को साकार करने का प्रयत्न करती हैं । ‘हिन्डा’ जैसी सांवली और कमसूरत किन्तु जवान लड़कियों को भी अपने उद्देश्य में सफलता मिलती है । ऐसी हीरोइनों को अपने शारीरिक परिक्षण के लिए अनेक स्तरों से गुजरना पड़ता है । प्रोड्यूसरों और हीरों द्वारा परीक्षित यह नव यौवनाएँ अपने सुनहरे भविष्य की ओर ऊँची छल्लाँग लगाती हैं । सेक्स उनकी प्रतिभा और प्रशंसा का पात्र होता है । लड़कियों की खुबसूरती के साथ-साथ फिगर को भी देखा जाता है । खुबसूरत न हो, लेकिन फिगर अच्छा होना चाहिए । एक प्रोड्यूसरने ‘नफीस’ नामकी



लड़की का वर्णन किया है। “नफीस की सूरत तो कोई खास अच्छी नहीं थी। चौड़ा मुँह। मोटे होठ। नाटा कद। छोटे बाल। बेहूदा ऊँगलियाँ। फूली हुई नाक। मगर फिगर गजब का था। कमर गायब। कूल्हे चौड़े। सीना ओर चौड़ा। और आज फिगर ही असली चीज है। शब्ल कौन देखता है। वैसे फिगर उसका भी कोई ऐसा खराब नहीं था पर इमान की बात है कि नफीस से उसके फिगर का कोई मुकाबला नहीं था।”<sup>७६</sup> युवतियों के लिए उनका शरीर ही उनका कैरीयर बनाता है। ऐसी युवतियों को ही चांस मिलता है, जो प्रोड्यूसर को खुश कर सके। नारायणगंज की शारदा वहाँ के चीफ एडमिनिस्ट्रेट द्वारा बलात्कृत होने के बाद बम्बई भाग जाती है, किन्तु वहाँ भी उसका शारीरिक शोषण होता है और आखिर वह प्रोड्यूसर की गोद में उछलने लगती है। उसके लिए अपने व्यवसाय में प्रवेश करने का यही उपाय है। इसी से ही उसका कैरीयर बन सकता है।

‘सीन ७५’ उपन्यास में हरीश जो फिल्मों में हीरोइन बनने के लिए आयी लड़कियों के साथ शारीरिक संबंध रखता है। अपने मित्र के मृत्यु के समाचार सुनकर भी वह किसी हीरोइन के साथ सेक्स मना रहा है। लड़कियाँ भी इस व्यवसाय में बेशर्म हो जाती हैं, क्योंकि फिल्मों में चांस लेने के लिए वह प्रोड्यूसर या हीरो को पूरी तरह तृप्त कर देना चाहती हैं। जो लड़की सेक्स के लायक नहीं रहती, वह हीरोइन पुरानी हो जाती है। यहाँ ऐसी लड़कियों की कभी नहीं जो हीरोइन बनने आती हैं और अपने आपको बेचती हैं। यहाँ पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव स्वरूप मध्यमवर्गीय चेतना जिस तरह विकृत हो गई है और वह जिस तरह जीवन में खुलेपन का आग्रही है, उसके लिए अश्लीलता, नग्नता और स्वच्छंदता, कामाचार आधुनिकता के पर्याय बन गया है।

➤ **विधवाओं की दयनीय स्थिति :**

भारतीय समाज में विवाह को एक बंधन माना जाता है । विवाह के बाद स्त्री पुरुष एक दूसरे के साथ बंधन में बंध जाते हैं और विवाहित जीवन का आनंद लते हैं । इसी सुखी और संपन्न दाम्पत्य जीवन में यदि पुरुष की मृत्यु हो जाती है, तब दोनों के बीच का बंधन टूट जाता है और स्त्री अकेली रह जाती है । स्त्री का यही अकेलापन उसके लिए 'विधवा' शब्द की मोहर लगा देता है । समाज में किसी स्त्री के लिए विधवा होकर जीना कष्टदायक बन जाता है । समाज की नजर में विधवा होना अभिशाप माना जाता है । स्त्री का विधवा होने बाद उसके लिए समाज में नीति नियम, रीत-रिवाज आदि के कारण उसको संघर्ष का सामना करना पड़ता है । उसका घर से बाहर निकलना वर्जित माना जाता है । किसी भी शुभ कार्य में यह भाग नहीं ले सकती, क्योंकि विधवाओं से अपशुक्न माना जाता है ।

'आधा गाँव' उपन्यास में हुसैन अली की बहन उम्मुल हबीबा जो शादी के तीसरे दिन ही बेवा हो जाती है तब से उसके लिए सब बंधन डाल दिये जाते हैं । "उम्मुल हबीबा शादी ब्याह के मौको पर अछूत हो जाती थी । कँदूरी के फर्श पर उसकी परछाई नहीं पड़ सकती थी । यहाँ तक कि दूसरों की शादी के गीत सुनते-सुनते उसके बाल कब्ल-अज-वक्त सफेद हो गये थे ।"<sup>७७</sup> उम्मुल के साथ इस तरह का व्यवहार करने के पीछे एक ही कारण है कि वह विधवा है । किन्तु उम्मुल छोटी उम्र में विधवा हो जाने से उसको इन सब बातों का पता नहीं चलता, किन्तु बाद में सब कुछ जान लेती है और इसके कारण कभी-कभी उसको अपमान का सामना भी करना पड़ता था । विधवाओं के लिए ससुराल भी कभी-कभी नर्क जैसा बन जाता है । ससुराल में इन विधवाओं पर अत्याचार किया जाता है । 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास में शम्सु मियाँ की लड़की 'महनाज' है । महनाज छोटी-सी उम्र में विधवा हो जाती है । उसके विधवा हो जाने से ससुरालवाले उसको घर से

निकाल देते हैं। महनाज के लिए दो बेटियाँ और उनका पेट भरना मुश्किल हो जाता है। अतः महनाज को अपने पिता के घर वापस आना पड़ता है। समाज की झूठी परंपरा और गलत सोच के कारण आज विधवाओं की स्थिति दयनीय बन गयी है। विधवाओं को समाज या परिवार द्वारा धिक्कारा जाता है। डॉ. राही ने विधवाओं की इन समस्या को पकड़ा और इस समस्या के समाधान हेतु इस विडम्बना को समाज के सामने प्रस्तुत किया और समाज में नयी चेतना जागृत करने का प्रयास किया है।

➤ **नारी की परंपरागत एवं परिवर्तित सामाजिक स्थिति :**

हिन्दी उपन्यासों में भारतीय समाज की जाति एवं पारिवारिक व्यवस्था की भाँति नारी की परंपरागत एवं परिवर्तित स्थिति को भी लेखकों ने अपने साहित्य में वाणी प्रदान की है। समसामयिक भारतीय समाज में नारी की परंपरागत पारिवारिक, सामाजिक, शैक्षणिक में कौन-से परिवर्तित उदघाटित हुए हैं और हिन्दी साहित्यने इनको कैसे प्रस्तुत किया है इसका वर्णन हिन्दी उपन्यास साहित्य में भरपूर देखा जाता है।

भारतीय समाज में नारी प्रमुखतः पुत्री, बहन, माँ, एवं पत्नी की भूमिका संपन्न करती है। इस व्यवस्था के उपरांत पुत्री की पारिवारिक स्थिति पर विचार करने से ज्ञात होता है कि पुत्री के जन्म से सामान्यतः परिवार में पुत्र के जन्म की अपेक्षा कम प्रसन्नता का अनुभव किया जाता है और यदि दो-चार लड़कियों के जन्म के उपरांत पुत्र की चाहवाले परिवार में पुनः पुत्री का जन्म हो जाय, तो प्रसन्नता की जगह पर विषाद का वातावरण बन जाता है। डॉ. राही ने 'आधा गाँव' उपन्यास में इसी परंपरा में जी रहे परिवारों का वर्णन किया है। यहाँ शिया मुसलमानों के परिवार में छः लड़कियाँ हो गयी तो उसकी एक पूरी पीढ़ी उनके लिए वर ढूँढने एवं विवाह करने की चिंता में ही सूख जाती हैं। 'आधा गाँव' उपन्यास में फुस्सू मियाँ का परिवार

ऐसा ही है। संख्या में अधिक पुत्रियों के जन्म से उनकी उपेक्षा होती है, साथ में उनकी माता की भी पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति का अवमूल्यन हो जाता है। इसमें सकीना को उनकी सास रब्बन बी उनको कोसती रहती है। “लड़की पे लड़की पैदा त किये जा रही हो – बाकी ई घर में रोकड ना धरा है।”<sup>७८</sup> लड़की के जन्म के कारण सकीना को घर एवं परिवार की ताडनाएँ सहन करनी पड़ती है। पुत्री के स्थान पर पुत्र को प्राप्त करने के लिए परम पिता से भी अनेक प्रकार की प्रार्थनाएँ करते हैं। फुस्सू मियाँ भी लड़के की इच्छा रखकर बैठे हैं और लड़के की प्राप्ति के लिए कई मन्नते भी रखते हैं। उपन्यासकार के शब्दों में – “इन्हें शिकायत यह थी कि सकीना के यहाँ ताबडतोब सात लड़कियाँ हो चुकी थी और फुस्सू मियाँ एक बेटे के अरमान में मरे जा रहे थे। जब बच्ची पैदा होती तो फुस्सू मन्नते-बन्नते मनाकर और गण्डे-तावीज में जकड़ जकड़ाकर फिर कोशिश में लग जाते।”<sup>७९</sup> समाज एवं परिवार की पुत्र प्राप्ति संबंधी आकांक्षा की पूर्ति के लिए स्वयं सकीना ने भी मन्नते मान रखी थी। वस्तुतः परिवार में पुत्री की अपेक्षाकृत निम्नस्थिति का कारण है – उनके विवाह के लिए अधिक धन की आवश्यकता। समाज की इसी परंपरा के कारण लड़कियों के प्रति इस तरह का व्यवहार किया जाता है। आज के बदलते युग में लड़का लड़की का स्थान समाज में एक समान है। केवल लिंग भेद के कारण लड़की के साथ इस प्रकार का व्यवहार करना अनुचित है। जब समाज में इस तरह की सोच ग्रहण होगी, तब डॉ. राही अपने इस प्रयास को सार्थक मानते हैं। समाज में स्त्री-पुरुष की जन संख्या का संतुलन बनाये रखने के लिए समाज की इस तरह की सोच में बदलाव लाना पड़ेगा। अन्यथा संतुलन टूट जायेगा।

इस परिस्थिति में नारी के लिए आज इस परंपरागत स्थिति में बदलाव आया है। आज की नारी पुरातन विचारों में जीनेवाली नहीं है। आज नारी ने अपना सम्मान समाज में प्राप्त किया है। डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में

नारी की परिवर्तित परिस्थिति को दर्शाने का प्रयास किया है। 'हिम्मत जौनपुरी' उपन्यास में सुक्कन एक पतिव्रता नारी है। वह पुरातन विचारों को लेकर जी रही है। अपने पति के अत्याचार को सहन करती है, किन्तु जब अपने बेटे से मिलने जाने पर पति तलाक की धमकी देता है, तब बरसों से अपने पति को 'आप' कहनेवाली सुक्कन 'तूँ' पर उतर आती है। जब वह तलाक के लिए धमकी देता है, तब सुक्कन बताती है कि "ई तारे घर का फैशन चला आ रहा। रहे आँगन में खड़े होके बुढ़ऊँ बेगम बी को तिलाक दिहित रहा। खबरदार जो फिर कभई तिलाक की धमकी दिओ। हमरा एक्कावन हजार का मेहर घरको सीधे हाथ की हथेली पर और देधो तलाक। तूँ हम्मे हमरे बेटे से छोड़ा हो। हम कयामत के दिन तोरा दामन ना पकड़े तब कहियो। बड़े आये है तिलाक देनेवाले। कल के देते आज देधो। हम जा रहे अपने बेटे के पास।"<sup>८०</sup> यहाँ नारी की परिवर्तित परिस्थिति का ख्याल आता है। आज की नारी अन्याय को सहन करनेवालों में से नहीं है। आज की नारी अबला नहीं है। वह अपना रास्ता अपने आप निकालती हैं।

आज नारी पुराने विचारों से बाहर निकलकर आगे बढ़ना चाहती है। 'दिल एक सादा कागज' उपन्यास में शारदा मिडल तक पढ़ी है। फिर भी वह महिला संगठन का नेतृत्व करती है। नारी के लिए पुरानी परंपराओं की बेड़ी में बांधी जा रही है, किन्तु शारदा साईकिल चलाना सिखती है और साईकिल लेकर बाजार से गुजरती है, तब एक नये युग का आरंभ होता है। जब शारदा बाजार से साईकिल लेकर गुजरती है, तब बाजार में खलबली मच जाती है। शारदा अपनी परिवर्तित मानसिकता के कारण मन ही मन खुश होती है। "खुद शारदा जब साईकिल चलाती हुई बाजार से गुजरती तो ऐसा महसूस करती कि जैसे वह बादलों पण उड़ी चली जा रही है।"<sup>८१</sup> शारदा के माध्यम से डॉ. राही ने स्त्री की मानसिकता में आये परिवर्तन को दिखाने का प्रयास किया है। जो बात नारी के लिए उस जमाने में असंभव है, उसे

शारदा ने किया। जिस से समाज में एक उदाहरण प्रस्तुत किया। 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास की बिल्लो प्रगतिशील नारी का प्रतीक है। वह बचपन से ही अपने घर का सपना रखती है, इसलिए वह 'लाण्डी' की दुकान खरीदती है। जिनका नाम 'जनता लाण्डी' रखती है। वह पैसे पोस्ट ओफिस में जमा करके अपना घर बनाने का सपना पूरा करती है। नारी की इस तरह की विचारशीलता के कारण आज की नारी आत्मनिर्भर होने का प्रयास करती है। आज नारी ऐसे छोटे-छोटे व्यवसाय अपनाकर अपना गुजरान चलाती है। आज समाज के खोखले बंधनों को तोड़कर वह आधुनिकता की ओर अग्रसर होने लगी है। आज नारी के लिए समाज की सोच में भी धीरे-धीरे परिवर्तन आया है। विधवाओं की पुराने जमाने में जो दयनीय स्थिति थी, उसमें भी परिवर्तन आया है। आज समाज ने विधवा-विवाह को स्वीकारा है। अतः आज विधवा का विवाह होना नई बात नहीं है। साहित्य के माध्यम से ये चेतना लाने का प्रयास किया जाता है। डॉ. राही ने भी यही कार्य किया है और समाज में चेतना लाने का प्रयत्न किया है। डॉ. राही ने नारी की इस परिवर्तित सामाजिक स्थिति पर विचार विमर्श करके नारी जागरण के लिए एक आधारस्तंभ खड़ा करने का कार्य किया है।

(च) अन्य समस्याएँ :

➤ **मानव जीवन में मूल्य विघटन :**

मानव जीवन सदैव से गतिशील रहा है और यही गतिशीलता मानव जीवन को नयी-नयी मुद्राएँ देती रही है। परिवर्तन प्रकृति का अटूट नियम है। मनुष्य जीवन और मूल्य परिवर्तनीय है। मूल्य परिवर्तन की इस प्रक्रिया के कारण ही मनुष्य समाज का ढाँचा परिवर्तन होता रहता है। मनुष्य के आपसी संबंधों, उनके क्रिया कलापो, उनकी मान्यताओं एवं उनकी रीति-नीतियों आदि का संबंध जीवन की एक विशिष्ट पद्धति से संबंधित होता है। ये

जीवन पद्धतियाँ इन्हीं आदर्शों, सिद्धांतों पर आधारित होती है, जिन्हें जीवन मूल्य कहा जाता है। संक्रमणकाल में मूल्य संक्रमित होते रहते हैं। डॉ. राही के उपन्यासों में विविध मूल्यों को सम्प्रति संदर्भों में यथार्थ वाणी मिली है।

किसी भी समाज में परिवार का अपना महत्त्व होता है। परिवार के बिना समाज की कल्पना करना संभव नहीं है। आज का मानव समाज एवं परिवार के अनुशासन में जी रहा है। जिससे वह स्वतंत्रता का अनुभव करता है। आज के युग में मूल्यों का ह्रास हो रहा है और समाज निर्मित परंपराओं की कोई परवाह नहीं करता जिसका उदाहरण 'आधा गाँव' उपन्यास में मिलता है। जिसमें बड़े बुजुर्ग को किस तरह बुलाना, इज्जत करना जैसे गुण हमें नहीं दिखाई पड़ते। इसमें कम्मो, हम्माद मियाँ, मिगदाद आदि कई पात्र हैं जिसके कथन से हमें मालूम पड़ता है। वाजिद मियाँ रहमान बी को मारते हैं, तब कम्मो लपककर वाजिद मियाँ का हाथ पकड़ लेता है। वाजिद मियाँ वृद्ध है, लेकिन कम्मो जवान था। इसलिए वाजिद मियाँ हाथ न छोड़ा सके, किन्तु वह जोर-जोर से गालियाँ देने लगते हैं, तब कम्मो बताता है कि "बाकी अब जो तूँ अम्मा को कुछ कहियों तो खन के गाड देंगे।"<sup>८२</sup> इस कथन से पता चलता है कि आज के युग में भी पिता उसी तरह सत्ता का प्रतीक हैं और सामने पक्ष में संतान भी स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं, जिससे मूल्य टूटते नजर आते हैं।

परिवार हमारे सामाजिक जीवन का मूल आधार है। किसी भी समाज में परिवार अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। परिवार के बिना समाज की कल्पना असंभव है। मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाले संगठन एवं संस्थाओं में परिवार का स्थान प्रमुख है। मानव सबसे पहले आदर्श गुण-अवगुण परिवार में सीखता है। इसलिए जीवन मूल्यों में पारिवारिक मूल्यों का विशेष महत्त्व है। आज मानव परिवार के अनुशासन से अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता का अनुभव कर रहा है। क्योंकि व्यक्तिवाद का

विकास हुआ है। इसके अलावा शिक्षा के अधिक प्रसार के कारण व्यक्ति में व्यक्तिवादी भावनाओं का प्राधान्य होता गया, जिससे उनमें अहं की भावना आवश्यकता से अधिक बढ़ गई और किसी भी प्रकार अधिकार पूर्ण अनुशासन उन्हें असाध्य होने लगा। आज परिवार में परंपरागत मूल्यों के विघटन के कारण में से एक है – आर्थिक संकट। व्यक्ति की अपने लाभ हानि के बारे में व्यक्तिगत दृष्टि पनपने लगती है, तब समाज में परंपरागत मूल्यों में विघटन आ जाता है। समाज में मनुष्य का अस्तित्व टिकाये रखने के लिए आत्मीयता आवश्यकता बन जाती है। इसी आत्मीयता के अभाव के कारण मनुष्य का जीवन शून्य-सा हो जाता है। आज के युग में अपने परंपरागत विचारों को त्यागकर नये विचारों को अपनाने का प्रयास किया जाता है और इसी नये विचारों के कारण कभी-कभी मूल्य विघटन का प्रश्न आता है। आज संबंधों में तनाव आने लगे हैं। आज व्यक्ति परिवार के लिए व्यक्तिगत सुखों का बलिदान करने को तैयार नहीं, कारण है कि आज संबंध चाहे पिता-पुत्री, पिता-पुत्र, भाई-बहन, माँ-पुत्र आदि में हीनभावना आ गई है। आज पुराने मूल्यों को भुलाया जा रहा है। ‘आधा गाँव’ उपन्यास में मिगदाद और उनके पिता हम्माद मियाँ में नहीं बनती। मिगदाद और सैफुनियाँ के विवाह के कारण दोनों के बीच संघर्ष चलते रहते हैं। जिससे यह आदर्श के स्थान पर यथार्थ को महत्त्व देता है। वह अपना अस्तित्व चाहता है। इसी कारण उसे बुजुर्गों से टक्कर लेनी पड़ती है। ‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में अब्बास की बेटी संगीता माजिद से शादी करना चाहती है और लड़का मुसलमान लड़की से विवाह करना चाहता है। इसी बात को लेकर सैयदा और परिवार के बीच संघर्ष हो जाता है। जिससे सैयदा परिवार को छोड़कर अपने मायके चली जाती है। यहाँ विचारों की लड़ाई पारिवारिक संबंधों को तोड़ देती है। ऐसी परिस्थिति में माता-पिता संतान सब अपने नैतिक मूल्यों को भूलकर अपने अहं के कारण पारिवारिक विघटन होता है।



आज बड़े-बड़े महानगरों में मानवता नष्ट होने जा रही है। वहाँ लोगों में इर्ष्या, स्वार्थ की भावना दिखाई देती है। 'सीन ७५' उपन्यास में अली अमजद अपनी जिंदगी में संघर्ष करता है और अंत में आत्महत्या कर लेता है। महानगरों में लोगों में मानवता का अभाव दिखाई देता है। अली अमजद की मृत्यु की खबर पाकर भी खटकजी को उनके फ्लेट को खरीदने की और किराये पर देने की पड़ी है। उनके लिए मानवता का कोई मूल्य नहीं है। "कैसे भी मरा हो। मुझे वह फ्लेट चाहिए। बेचना ही तो बेच दो। किराये पर देना हो तो वह भी चलेगा। पगड़ी लेनी हो तो वह कहो ..... ठीक है। नहीं, शाम को नहीं। शाम को तो कफन दफन में जाना पड़ेगा।"<sup>८३</sup> यहाँ आदमी की विचारशीलता को देखा जाता है। मनुष्य के मनमें केवल अहं, इर्ष्या और स्वार्थ देखा जाता है। उनके लिए मानव जीवन का कोई मूल्य नहीं। किन्तु उनके लिए सिर्फ धन का मूल्य है। दूसरे सब मूल्य उनके लिए शून्य है। इधर हरीश जो अली अमजद का दोस्त है वह अपने मित्र की मृत्यु की खबर सुनकर दुःख होने से ज्यादा उनके फिल्म की प्रीमियर की पड़ी थी, उनको डर था कि यदि वह वहाँ गया तो उनका प्रीमियर रुक जायेगा। इसी लालच के कारण उनमें स्वार्थ का गुण देखा जा सकता है। यहाँ सामाजिक मूल्यों का विघटन होता हुआ नजर आता है।

### ➤ जातिप्रथा का भेदभाव :

भारत में जातिवाद की प्रमुख समस्या है। आज जमींदारी प्रथा खत्म हो चुकी है। वर्ण-व्यवस्था का कोई मूल्य नहीं रहा। हमारे संत, महात्मा आदि व्यक्तियों ने भी जातिप्रथा का विरोध किया है। फिर भी आज इसी समस्या ने समाज में घर कर लिया है। सभी धर्म में इस तरह की प्रथा चल रही है। हिन्दुओं, मुसलमान, सभी धर्मों में इस तरह का दूषण फैला हुआ है। डॉ. राही का 'आधा गाँव' उपन्यास में इस समस्या को लेकर कई

सवाल उठाये हैं । मुसलमानों में भी शिया और सुन्नी और इसमें भी कई जातियों में विभाजित किया है । इसमें जुलाहे, नाईन, आदि कई जातियाँ हैं, जिसका छुआ हुआ मुसलमान नहीं खाते ।

जातिभेद की समस्या ने समाज में किसी को भी नहीं छोड़ा । व्यवसाय, राजनीति, सब जगह पर जातिवाद का भूत सवार है । चिकित्सा का क्षेत्र समाज के लिए मरिजों का इलाज करता है, किन्तु 'आधा गाँव' उपन्यास में हकीम साहब जिसका व्यवसाय मरिजों का इलाज करना है, किन्तु वह भी इस समस्या से पीड़ित है । वह इस तरह के अंध विश्वासों में विश्वास करते हैं । हकीम साहब जब निम्नजाति के व्यक्ति को छूते हैं और दवाईयाँ देते हैं, तब अपने हाथ पाँव धो डालते हैं । क्योंकि उन्होंने निम्नवर्ग के मरिज को छुआ था । “हकीम साहब हौज के किनारे बैठकर उस हाथ को साफ करने लगे जिस हाथ से उन्होंने एक काफिर और वह भी नीची जात के एक काफिर का हाथ छुआ था ।”<sup>८४</sup> हकीम साहब के लिए मरीज से ज्यादा अपनी जाति महत्वपूर्ण है, क्योंकि उनको छूने से उनका धर्म भ्रष्ट हो जाता है । इसलिए वह इस समस्या को उजागर करनेवाला पात्र है । जातिगत भेदभाव के कारण आज निम्नजाति के लोगों में जागरूकता आयी है । निम्नजाति के लोगों में रीत-रिवाज, परंपरा, आदि में परिवर्तन आने लगा है । निम्नजाति के लोगों में सुधार आते देखकर ऊँची जाति के लोग इर्ष्या करते हैं । इसमें रब्बन, सकीना और कुबरा आपस में बैठकर बातें करती हैं, तब कुबरा कांग्रेसवालों को दोषित बताते हुए कहती हैं कि “खुदा गारत करे ई मिट्टीमिले कांग्रेसिन को जिन्होंने चमारों और भंगियों का रुतला बढ़ा दिया है ।”<sup>८५</sup> जातिगत भेदभावों के कारण कई ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो इस भेदभाव को मानने के लिए तैयार नहीं हैं । किन्तु समाज की झूठी परंपरा के आगे उनको विवश होना पड़ता है । इसमें अब्बास जो जमींदार का लड़का है । जो अलीगढ़ में पढ़ता है । उनके साथ उनका मित्र फारुक भी उसका सहपाठी है और अब्बास का मित्र भी है ।

अब्बास जब गंगोली में आता है, तब अपने मित्र को मिलने के लिए उसके मनमें संकोच होता है । क्योंकि उसका मित्र फारुक निम्न जाति का होने के नाते जमींदार का लड़का उसको मिलने के लिए नहीं जा सकता । अब्बास को अपने मित्र से मिलने में डर लगता है । “मियाँ अब्बु तुम इतने बड़े हो गये और तुम्हे यह भी नहीं मालूम कि अशरफ राकियो-नाकियो के दरवाजे पर नहीं जाते ।”<sup>८६</sup> आजकल शिक्षा के इतने बढ़ते कदम के बावजूद आज के युवकों को समाज की इसी व्यवस्था के कारण सामना करना पड़ता है और मजबूर होकर विवश होना पड़ता है । किन्तु अब्बास को यह बंधन बिल्कुल पसंद नहीं है और वह समाज के सभी बंधनों को तोड़कर अपने मित्र को मिलने चला जाता है । अब्बास जातिगत भेदभावों में नहीं मानता । डॉ. राही के कई पात्र कहीं-न-कहीं किसी भी रूप से इस समस्या का शिकार है ।

जातिप्रथा के कारण कई ऐसे परिवार हैं, जिनका विवाहित जीवन डगमगाने लगता है । ऐसे पात्र भी हैं, जो आंतरजातीय विवाह करके समाज में एक परंपरा बनाने की कोशिश करते हैं । उनके मन में यह भेदभाव रूप कलंक साथ नहीं छोड़ता । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में मझले ददा ने नईमा दादी से निकाह किया था । जो जुलाहिन थी । नईमा के साथ शादी करने के बाद दोनों के बीच जातिभेद की दीवार खड़ी हो जाती है । मझले ददा और नईमा दादी से बच्चे भी होते हैं, तब छुआछुत का भेदभाव नहीं दिखाई देता, किन्तु जब नईमा दादी खाना बनाती तब मझले ददा उनका छुआ हुआ खाना भी नहीं खाते । समाज की यही विडम्बना को प्रस्तुत किया गया है । साथ ही नईमा जुलाहिन होने के कारण उनको कुछ ख्याल रखना पड़ता । जैसे सैदानियों के साथ उठना, बैठना आदि । उनको अन्य स्त्रियों के साथ बैठने के लिए स्थान नहीं मिलता था । जैसे कि “नईमा दादी बहरहाल जुलाहिन थी और सैदानियों के साथ नहीं रह सकती थी । पुराने जमाने के लोग इसका बड़ा ख्याल रखा करते थे कि कौन कहाँ बैठ सकता है और कहा नहीं ।”<sup>८७</sup> इस समस्या के

कारण निम्नजाति की स्त्रियाँ समाज में शोषित होती है। डॉ. राही ने ऐसे स्त्री पात्र झंगटिया चमाईन, दुलरिया भंगिनि, मेहरुनिया, सैफुनिया नाईन, कुलसुम जुलाहिन आदि निम्नजाति के स्त्री पात्र है। झंगटिया चमाईन बचपन में बेवा हो जाती है। सुलेमान-चा इसका लाभ उठाकर अपने घर में डाल देते है। सुलेमान-चा झंगटिया-बो के हाथ धी छुई हुई कोई भी चीज इस्तेमाल नहीं करते। इसी छुआछुत के भेदभाव के कारण सुलेमान-चा अपना खाना खुद बनाते हैं। सुलेमान-चा चमाईन के साथ सो सकते है, बच्चे पैदा कर सकते है, किन्तु उनका छुआ नहीं खा सकते। डॉ. राही ने समाज की ऐसी खोखली परंपरा पर करारा व्यंग्य किया है। समाज में आज निम्नजाति की स्त्रियों पर हो रहे जातिगत अत्याचारों को उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वे इस समस्या का समाधान करने की कोशिश करते है। मिगदाद और सैफुनियाँ नाईन के विवाह के बाद उसमें मजलिस के फर्श पर बैठने का अधिकार छिन लिया जाता है। जातिभेद धार्मिक स्थानों पर भी देखा जाता है। धार्मिक स्थान भी इस समस्या से अछूता नहीं है। समाज की वास्तविकता को प्रकट किया है।

### ➤ **बढ़ती जन संख्या :**

भारत देश में आज जन संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बढ़ती जन संख्या आज देश के लिए समस्या बन गया है। इसका कारण समाज में जागरूकता और शिक्षा का अभाव है। बढ़ती जन संख्या देश के लिए और समाज के लिए खतरा बन गई है। समाज में अज्ञानता, झूठी परंपरा, अंधश्रद्धा आदि बढ़ गए है, जिसके कारण समाज को इस समस्या का सामना करना पड़ता है। ग्रामीण समाज में बच्चे पैदा करना परंपरा और रिवाज माना जाता है, किन्तु उसके लिए कोई बंधन नहीं है। चाहे जितने भी बच्चे पैदा करो। ऐसे परिवार आज बढ़ते गये है। 'आधा गाँव' उपन्यास में

ऐसे परिवार भी है, जिसमें तीस तक बच्चे हैं। इसमें से एक पात्र खान साहब है, जिनके अठारह बच्चे हैं। उनकी सबसे बड़ी बेटी छब्बीस साल की है, जिनको भी आठ बच्चे हैं। खान साहब के यहाँ सतराह बेटियाँ हुई बाद में उनका अठारहवा संतान बेटा हुआ। इस परिवार में बेटा होने की मान्यता के कारण अठारह बच्चे पैदा हो जाते हैं। यहाँ समाज की परंपरा कारणभूत दिखाई देती है। इधर मौलवी साहब की लड़की सकीना सात-सात लड़कियाँ पैदा करती है और उनके मियाँ फुससू लड़के के अरमान में मरे जा रहे हैं और मन्नते भी रखते हैं। परिवार के सभी लोग बेटे की इच्छा रखते हैं और बेटा न होने का कसूर सकीना को माना जाता है। इसी लालच के कारण आज देश की जन संख्या बढ़ती जाती है।

‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में शंकरदयाल जो दो बार शादी करता है उनकी दूसरी पत्नी पागल थी, फिर भी वह कितने ही बच्चों के पिता बनता है। इसमें शंकरदयालजी की मानसिकता का वर्णन किया गया है। “शंकरदयाल की दूसरी पत्नी पागल थी। पहली का देहान्त हो चुका था और वह अपने पीछे तीन बेटियाँ छोड़ गयी थी। चौथा बेटा हुआ इस पागल पत्नी से, फिर पाँचवी बेटी हुई। चार अवार्शन्ज हुए। यानी कुल मिलाकर शंकरदयालजी नौ बच्चों के बाप थे।”<sup>८८</sup> इस तरह की मानसिकता के कारण जन संख्या बढ़ती जाती है। इस बढ़ती हुई जन संख्या के कारण सामाजिक व्यवस्था का संचार टूटता हुआ मालूम पड़ता है। इस बढ़ती जन संख्या पर अंकुश लाने के लिए जनजागृति की आवश्यकता है। ऐसी जनजागृति का कार्य ‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में महनाज करती है। महनाज सोशल वर्कर है। वह गाँव में फिर कर नसबन्धी के बारे में सब औरतों को घर-घर जाकर उनके फायदे बताती है। शुरुआत में सब औरतें उनकी इस तरह की बातों से शर्मा जाती थी, किन्तु बाद में वह सबको समझाने में सफल होती है। इस तरह डॉ. राही ने बढ़ती जन संख्या को रोकने के लिए उठाये गये कदमों का

भी जिक्र किया है । जिससे वह इस समस्या का समाधान भी पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं ।

➤ **पुलिस द्वारा हो रहे भ्रष्टाचार :**

पुलिस शासन व्यवस्था का प्रतीक है और उसकी नैतिकता एवं चरित्रता से किसी राज्य व्यवस्था का मूल्यांकन किया जाता है । वस्तुतः पुलिस का कार्य दुतरफा है – एक ओर वह शासन तंत्र की नीतियों-रीतियों से परिबद्ध होता है और दूसरी ओर सामाजिक अपराधवृत्ति से । लोकतंत्र से पुलिस को और भी कठिनाई आती है क्योंकि वही शासक होती है और वही शासित होती है । जनता के जन-धन की सुरक्षा की दृष्टि से उत्तरदायी सरकार पुलिस की व्यवस्था करती है, जिससे भय व आतंक से बचकर नागरिक सुखी जीवन जी सके । किन्तु आज पुलिस कर्तव्य विमुख, भय, आतंक और दमन का प्रतीक बन गयी है । भ्रष्टाचार आज पुलिस शासन में पूरी तरह फैल गया है । डॉ. राही ने पुलिस द्वारा हो रहे भ्रष्टाचारों की घटनाओं को अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है ।

‘आधा गाँव’ उपन्यास में दारोगा हरनारायण प्रसाद जो थानेदार है वह गाँव के लोगों के पास से कई प्रकार की रिश्वत लेकर काम करवाता है । लड़ाई के समय पर वह लोगों के पास से चंदा इकट्ठा करने लगता है । इसके लिए वह गोबरधन को बुलाता है और चंदा माँगता है । सबसे बड़ी बात तो यह है कि दारोगा जो चंदा इकट्ठा करता है उसमें से थोड़े पैसे अपने पास रख लेता है और कुछ ही रुपये तहसील में जमा करवाता है । “उन्होंने वार फण्ड में पाँच हजार रसीदी और आठ हजार बे-रसीदी चंदा इकट्ठा किया था और बे-रसीदी चंदा समीऊदीन खाँ के साथ थाने चला गया ।”<sup>८६</sup> दारोगा चंदा के नाम पर अपने लिए रुपये इकट्ठे करने में लग जाता है । दारोगा हरनारायण खुद गुलाबीजान नाम की वेश्या के चक्कर में

फँसा हुआ है । वह उनके साथ ऐयासी करता है । ‘कोमिला’ खून केस में गिरफ्तार हो जाता है । तब कोमिला की माँ हकीम साहब के पास आती है तब हकीम साहब और थानेदार साथ मिलकर बबुरमवा-बो से रिश्वत लेते हैं । “फिर उसने हेड कास्टेबिल के जरिये बबुरमवा-बो से जो रुपये इस काम के लिए कि वह कोमिला के खिलाफ बने हुए मुकदमे को कमजोर कर देगा ।”<sup>६०</sup> पुलिस जनता की सेवा करने के बदले उनके पास से रिश्वत लेकर केस को निपटाने की कोशिश करते हैं । दारोगा दोनों पक्ष से रिश्वत लेता है । वह बलिराम से कोमिला को फाँसी दिलवाने के लिए रिश्वत लेता है और अपना काम निकालता है ।

पुलिस समाज की सेवा के लिए और गुनाहों को कम करने के लिए होती है । किन्तु आज पुलिस की भूमिका में परिवर्तन आता हुआ नजर आता है । वह जनता की सेवा में कम और अपनी आमदानी में ज्यादा ध्यान रखता है । पुलिस सरकार के नौकर से ज्यादा धनवानों के नौकर है, क्योंकि उन धनवानों की रिश्वत पर वह अपने आप को सुखी रख सकता है । ‘नीम का पेड़’ उपन्यास में दारोगा जमींदारों की चापलूसी करता है और उन्हीं के इशारों पर नाचता है । दारोगा जिलेदारसिंह जमींदारों के यहाँ दावत पर आता है और साथ ही किसी केस को लेकर निपटाने की बात करता है । वह जमींदार को बताता है कि “मियाँ साहब यह कत्ल तो बड़ी संगीन बात है । कलक्टर साहब के लड़के से मुसलिम मियाँ की बड़ी गाढ़ी छनती है । बहुत गड़बड़ करेंगे वह । सुनिए एस. पी. साहब के यहाँ जरा बजनी डाली भिजवायेगा ..... एस. पी. साहब इधर हो जाए तो फिर कलक्टर साहब भी कुछ नहीं कर सकते ..... लेड़ी डोक्टरनी मिस मारिसन को तो आप जानते ही होंगे । एस. पी. साहब पर अगर उनसे जोर डलवाया जाए तो समझिए कि फिर काम बन जाएगा । राज की बात हैं एस. पी. साहब उन पर जरा रीझे हुए हैं ।”<sup>६१</sup> पुलिस विभाग में सच्चाई से ज्यादा संबंधों की किमत है । वह

संबंधों के माध्यम से एक दूसरे के पास काम करवाते हैं। पुलिस रिश्वत लेकर कोई भी काम आसानी से कर लेती है। 'रामबहादूर' का कत्ल हो जाने पर थानेदार झूठे गवाह तैयार करवाता है। वह बुधीराम को झूठी गवाही देने के लिए तैयार करवाता है। "और मुझे एक गवाह दे दीजिए जो तोते की तरह अपना बयान याद कर ले।"<sup>६२</sup> दारोगा इन सब दाँवपेच में माहिर है। पुलिस में धार्मिक कट्टरता भी दिखाई देती है। वह अपने धर्म से दूसरे धर्म के प्रति धार्मिक भेदभाव रखते हैं। 'असंतोष के दिन' उपन्यास में डॉ. राही ने धार्मिक दंगों का वर्णन किया है। जिसमें हिन्दू-मुसलमान दंगे होते हैं। जिससे पुलिस द्वारा गोलियाँ चलाई जाती हैं। अब्बास का मानना है कि गोलियाँ सिर्फ मुसलमानों पर चलाई गईं और इससे ज्यादातर मुसलमान मरे। अब्बास कहता है कि "यार मूसवी साहब, पुलिस का एटिट्यूड तो सचमूच बड़ा शेमफुल है। इन बलवों में अभी तक पुलिस की गोली से सिर्फ मुसलमान मरे हैं।"<sup>६३</sup> अब्बास के इसी विचार को डॉ. राही ने प्रस्तुत किया है। इस कथन से परिस्थिति की वास्तविकता का ख्याल आना कठिन है। फिर भी यथार्थता को नकारा भी नहीं जा सकता। किन्तु परिस्थिति को समाज के सामने प्रस्तुत करने का और पुलिस तंत्र में हो रही गैररीतियों का पर्दाफास किया है।

### ➤ महानगरों में फिल्मी जीवन की विकृतियाँ :

भारत में आजकल महानगरों में जन संख्या बढ़ती जाती है। आज का मनुष्य महानगरों में व्यवसाय करने और बेकारी से त्रस्त होकर पैसे कमाने के लिए आता है। डॉ. राही मासूम रजा खुद फिल्मों में काम करने के लिए बम्बई आये थे। उन्होंने बम्बई जैसे महानगरों में मानवजीवन को देखा, अनुभव किया और उसका चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया। आजकल युवाक-युवतियाँ फिल्मों में काम करने और हिरो-या-हीरोइन बनने के सपने



लेकर शहर में आते हैं और वहीं सपना-सपना बनकर रह जाता है । भारतीय सिनेमा ने भारतीय जनजीवन को काफी हद तक प्रभावित किया है । इसी परिवर्तन को डॉ. राही ने फिल्मी दुनिया की आंतरिक वास्तविकता को यथार्थ रूप में उजागर किया है । धन प्राप्ति की लालसा और स्वार्थवृत्ति के कारण मनुष्य में धिनोनापन आ जाता है ।

‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में फिल्मी दुनिया के सच का प्रभावशाली वर्णन किया है । आकर्षण और चमक दमक से युक्त फिल्मी दुनिया और शेष दुनिया का समाज कई तरह से अलग है । इस समाज से जुड़े लोगों का आपसी संबंध, उनका जीवन मूल्य आदि सब बातों का वर्णन किया है । यहाँ महानगरों में फिल्मी जीवन में सामाजिक मूल्यों का उपहास होता है । मनुष्य के लिए सिर्फ धन ही सर्वश्रेष्ठ है । इसमें ज्यादातर लड़कियाँ हीरोइन बनने के लिए आती हैं और उन लड़कियों को हीरोइन बनाने की लालच देकर उनका शोषण किया जाता है । उन लड़कियों के लिए ‘बहन’ शब्द का प्रयोग किया जाता है । किन्तु यहाँ ‘बहन’ शब्द ‘रखैल’ के लिए व्यंग्यात्मक भाषा में किया जाता है । यहाँ पर प्रोड्यूसर हीरोइन को बहन शब्द से संबोधित करके गालियाँ देता है । “बस आज तुम कोई ऐसा धाँसू सब्जेक्ट सुनाओं कि साले की चिर जाये । मेरी बहन साली के कैरियर का सवाल है यार । बहन कहते-कहते उसने आँख मार दी । वैसे साली मेरी बहन नहीं है । पर उस माँ के लोंडे के बहेज शिकार करने का बड़ा शोख है यार ।”<sup>६४</sup> महानगरों में फिल्म इन्डस्ट्री में प्रोड्यूसर के लिए अपने फिल्म से ज्यादा हीरोइन से मतलब है । हीरोइन अच्छी होनी चाहिए । यदि हीरोइन खूबसूरत नहीं है या प्रोड्यूसर को पसंद नहीं, तो वह हीरोइन नहीं बन सकती । किसी भी लड़की को हीरोइन बनने से पूर्व प्रोड्यूसर को खुश करना पड़ता है । प्रोड्यूसर इन हीरोइन के कैरियर हेतु पैसा लगाकर धन और यौन

सुख भोगता है । बड़े हीरो को खुश रखने के लिए उनको अच्छी हीरोइन परोसी जाती है ।

आजकल किसी फिल्म की कहानी तैयार करने के लिए लेखक या राईटर अपनी तरह से कहानी नहीं लिखता, किन्तु प्रोड्यूसर को जैसी कहानी चाहिए वैसी कहानी लिखता है । जैसे कि “कोई घाँसू चीज सुनाओं यार । सेक्स । एक आध बाथरूम सीन हो । एक आध रेप-वेप हो, पब्लिक टेस्ट ही सारा खराब है तो प्रोड्यूसर क्या करेगा ।”<sup>६५</sup> प्रस्तुत उपन्यास में रफ्फन स्वयं एक लेखक है । उसे बम्बई आकर अपने भीतर के कलाकार को दफन करना पड़ा । यह निर्माताओं के घर जाकर कहानियाँ लिखता, जैसे सीन की माँग होती या जैसे प्रोड्यूसर कहता, वैसे लिखता । उसे यह भूलने में तो कुछ समय लगा ही कि वह एक अच्छा साहित्यकार है । प्रारंभ में तो वह दुविधा में रहता था कि जीवन के लिए क्या जरूरी है और क्या नहीं ? “साहित्य जरूरी है या घर का किराया ? साहित्य का महत्त्व ज्यादा है या राशन कार्ड का ? जिन्दगी को एक खुबसूरत नज्म, एक उदास चौपाई ज्यादा खुबसूरत बनाती है या पत्नी की एक आसूदा मुस्कुराहट ? गालिब का दीवान या धोबी का हिसाब ? लड़ाई या कम्प्रोमाइस ? कम्प्रोमाइस ?”<sup>६६</sup> इस तरह के जीवन में मनुष्य को अपने आपको कम्प्रोमाइस करना पड़ता है । उसका जीवन पर उसकी विपरित असर होती है । इसलिए न चाहते हुए भी उनको दूसरों के इशारे पर नाचना पड़ता है । डॉ. राही के मतानुसार फिल्म इन्डस्ट्री में नाम का मूल्य होता है, इन्सान का नहीं । आज परिस्थिति यह है कि बड़े-बड़े स्टार रफ्फन जैसे स्टार के साथ तस्वीरे खिंचवाने लगे हैं । इस तरह की मतलबी दुनियाँ में यदि जीना है, तो इस तरह अपने आपको कम्प्रोमाइस करना पड़ता है । “रफ्फन दिनभर हँसता प्रोड्यूसर की शराब पीता । दूसरे रायटरों का मजाक उड़ाया । लेकिन घर पर तो जन्नत से अपनी उदासी छिपाता और उन किताबों की तरह देखने से शर्माता जिन्हें अपने बूरे दिनों में खरीदा था,

और बड़े प्यार से पढ़ा था ।”<sup>६७</sup> रफ़न को इस बात का दुःख है फिर भी फिल्मी दुनिया के साथ कदम मिलाने के लिए सब अनिवार्य समझता है ।

फिल्म जनमानस को उन्नत बनाने में महत्वपूर्ण माध्यम है । फिल्मों के माध्यम से समाज में जागरूकता लाई जा सकती है । किन्तु आज समय के साथ इस क्षेत्र में भी परिवर्तन आया है । फिल्मों ने भारतीय जनजीवन को काफी हद तक प्रभावित किया है । हिन्दी सिनेमाने अनेक नव युवकों को पागल सा कर दिया है । हिन्दी फिल्मों की चकाचौध ने उन्हें आकृष्ट किया है । अनेक युवक और युवतियाँ स्वयं को फिल्मी नायक नायिकाओं के रूप में देखने लगे । अनेक युवक फिल्मी नायक बनने के चक्कर में बम्बई आये और जीवन को बर्बाद कर बैठे । ‘हिम्मत जौनपुरी’ उपन्यास का नायक बम्बई में हीरो बनने आता है । फिल्म इन्डस्ट्री का चक्कर लगाता है और जब उन्हें काम नहीं मिलता तो वह धूल में रस्सी बटने लगता है और यही वह केन्द्र है, जहाँ हिम्मत जौनपुरी का चरित्र कमजोर हो जाता है । वह किसी फिल्मी नायिका पर आशिक होकर उसे पाने के चक्कर में बम्बई आता है और अपने जीवन को बर्बाद करता है । बम्बई में उसे लीला चिटनीस न मिली, किन्तु जमुना नामक वैश्या के पीछे पड़कर अपना सर्वस्व लुटाता है । लेखक ने हिम्मत के माध्यम से फिल्मों के पीछे पड़कर अपना जीवन उजाड़नेवाले युवकों की कथा कही है । साथ ही फिल्मों की रंगीन दुनिया का वास्तविकताओं के साथ कोई खास संबंध नहीं होता, इसकी यथार्थता प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

‘सीन ७५’ उपन्यास में डॉ. राही ने फिल्मी जीवन की विसंगतियों का वर्णन किया है । महानगरों में फिल्मों में हो रहे भ्रष्टाचार और उन भ्रष्टाचारों से होनेवाली असर का वर्णन किया है, फिल्मों के कारण आज समाज में मूल्यों का विघटन होता हुआ दिखाई देता है । फिल्मों में बोल्लड, सेक्सी सीन का महत्व होता है, इसलिए राइटर को इस तरह की कहानियाँ लिखनी पड़ती है ।

ऐसा न करने पर फिल्म फलोप हो जाती है । हीरोइन को यदि फिल्मों में काम करना है, तो डायरेक्टर के साथ सोना पड़ता है । फिल्मों में रेप सीन ज्यादा आते हैं, वह फिल्म अच्छी मानी जाती है । “कल वाइफ बोली अमजद भाई को वह अपनावाला इश्तेरी सुना डालो साला बहुत फसक्लास सब्जेक्ट है । तीन तो साला रेप सीन ठोक दिया है । पहला सीन रेप साले हीरो की सिस्टर का होता है ।”<sup>६८</sup> फिल्मों की इस दौड़ में समाज में मूल्यों को नष्ट कर दिया है । फिल्मों में काम करनेवाले व्यक्ति की समाज में कोई इज्जत नहीं होती, क्योंकि फिल्मों में काम करनेवाले को बम्बई जैसे शहर में किराये पर घर भी नहीं मिलता । समाज में उनके लिए एक भ्रम है कि इससे अपने बहु-बेटियों पर उसकी गलत असर पड़ती है । अतः उनको अपने घर के लिए भटकना पड़ता है । डॉ. राही ने महानगरों की फिल्मी दुनियाँ की इसी विसंगतियों को प्रस्तुत किया है ।

#### ❖ निष्कर्ष :

सारांशतः कहा जा सकता है कि राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों में सामाजिक चेतना के संदर्भ में बहुत ही यथार्थ लिखा है । उन्होंने समाज की विषमताओं एवं समस्याओं को वाणी दी है । समाज की दुर्दशा, नारी-जीवन की विडम्बनाएँ, नगर-जीवन की समस्याएँ, फिल्म जीवन की विकृतियाँ, जातिगत समस्याएँ, कौटुंबिक एवं पारिवारिक समस्याएँ एवं जीवन-मूल्यों की विडम्बनाओं का बड़ा ही वास्तविक चित्र डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में अंकित किया है । यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सामाजिक चेतना के अंतर्गत राही ने संपूर्ण मानव-समाज का तादृश्य चित्रण खड़ा कर दिया है । संक्षेप में डॉ. राही के उपन्यास सामाजिक चेतना के प्रस्तुतिकरण में अपनी सार्थकता सिद्ध किये हुए हैं ।

❖ सन्दर्भ सूची :

१. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना - डॉ. रजनीकांत शाह, पृ. ११६-११७
२. हिन्दी उपन्यास : संस्कृति एवं मानवतावादी चेतना - सच्चिदानंद रोय, पृ. ३६६
३. भाषा शब्दकोश - संपा. रमाशंकर शुक्ल, पृ. १८१२
४. नालंदा शब्दसागर - श्री नवलजी , पृ. १४३५
५. व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. पुरुषोत्तम दुबे, पृ. ३८
६. हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना - डॉ. रत्नाकर पांडेय, पृ. १५६
७. हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना - डॉ. रत्नाकर पांडेय, पृ. १५
८. अमृतलाल नागर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धांत - सुरेश बत्रा, पृ. ५८
९. समाजशास्त्र विवेचन - नरेन्द्र सिंधी, पृ. २१०
१०. मार्क्स ऐंगल्स साहित्य तथा कला हिन्दी अनुवाद - प्रगति प्रकाशन, पृ. १८१
११. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी समीक्षा में काव्य मूल्य - रामजी तिवारी, पृ. ७३
१२. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ. रामचंद्र शुक्ल, पृ. १
१३. आलोचना - अंक २० - पृ. ६४
१४. हिन्दी उपन्यास पहचान और परख - डॉ. इन्द्रनाथ मदान, पृ. ५०
१५. व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. पुरुषोत्तम दुबे, पृ. ११७
१६. हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युगबोध - बसंती पंत, पृ. ६४
१७. हिन्दी उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना - डॉ. सुष्मा गुप्त, पृ. ६७
१८. हिन्दी उपन्यासों में शास्त्रीय विवेचन - डॉ. महावीरमल लोढा, पृ. ३२
१९. असंतोष के दिन - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १२
२०. असंतोष के दिन - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ३६

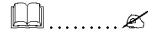
२१. ओस की बूँद – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १००
२२. ओस की बूँद – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १०१
२३. आधा गाँव – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १६
२४. आधा गाँव – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १६०
२५. आधा गाँव – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १६१
२६. टोपी शुक्ला – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. २२
२७. कटरा बी आर्जू – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १५७
२८. कटरा बी आर्जू – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ४४
२९. आधा गाँव – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ४८
३०. आधा गाँव – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ७६
३१. नीम का पेड़ – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ७०
३२. नीम का पेड़ – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ४८
३३. आधा गाँव – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १६१
३४. कटरा बी आर्जू – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ४७
३५. असंतोष के दिन – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ८१
३६. असंतोष के दिन – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ८६
३७. हिम्मत जौनपुरी – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १६
३८. हिन्दी साहित्य कोश भाग-१ – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. १८०
३९. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण – डॉ. हेमेश्वरकुमार पानेरी,  
पृ. १३७
४०. सीन-७५ – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ५७
४१. आधा गाँव – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १८१
४२. कटरा बी आर्जू – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. २२३-२२४
४३. दिल एक सादा कागज – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १५
४४. दिल एक सादा कागज – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ३६

४५. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १२
४६. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. २०
४७. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ७६
४८. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ८०
४९. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप - डॉ. गणेशदास,  
पृ. ४५
५०. स्त्री अपेक्षिता - प्रभा खेतान, पृ. २४८
५१. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ७४
५२. हिम्मत जौनपुरी - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ११४
५३. हिम्मत जौनपुरी - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ११३
५४. सीन ७५ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ६४-६५
५५. हिन्दी उपन्यास - सुरेश सिन्हा, पृ. १३२-१३३
५६. प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में अस्तित्ववाद - डॉ. शुकदेव सिंह, पृ.  
५०-५१
५७. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. २१
५८. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ४४
५९. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृष्ठ भूमिका से
६०. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १६४
६१. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ३२६
६२. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १७४
६३. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ४१
६४. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ४४
६५. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ४५
६६. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १७
६७. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १८

६८. सामाजिक विघटन - डॉ. सरला दुबे, पृ. ११८
६९. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. २८४
७०. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. २८६
७१. सीन ७५ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ५०
७२. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १५८
७३. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १५९
७४. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ११-१२
७५. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ८४
७६. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ६८
७७. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ११८
७८. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ११०
७९. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १०९
८०. हिम्मत जौनपुरी - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ६५
८१. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १५३
८२. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १६५
८३. सीन ७५ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १२७
८४. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ९६
८५. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ११६
८६. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ६२
८७. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १६
८८. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १६७
८९. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १४२
९०. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ७३
९१. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १४
९२. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १४



६३. असंतोष के दिन – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ३४  
६४. दिल एक सादा कागज – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ४२  
६५. दिल एक सादा कागज – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ५६  
६६. दिल एक सादा कागज – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. १८८  
६७. दिल एक सादा कागज – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. २०१  
६८. सीन ७५ – डॉ. राही मासूम रज़ा, पृ. ७२



## अध्याय – ४

### “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना”

---

- ❖ विषय प्रवेश
- ❖ राजनीति शब्द का अर्थ
- ❖ राजनीतिक चेतना का स्वरूप
- ❖ साहित्य और राजनीति
- ❖ हिन्दी उपन्यास और भारतीय राजनीति
- ❖ डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना
  - सामंतीय जीवन में विघटन
  - आपतकालीन परिस्थितियाँ
  - देश विभाजन की विभीषिका
  - सांप्रदायिकता का जहर
  - जातिवाद और चुनाव पद्धति
  - न्याय व्यवस्था में राजनीति
  - राजनीति और प्रशासन व्यवस्था
  - शिक्षा व्यवस्था में राजनीति
  - अवसरवादिता
  - राजनीति में चुनाव प्रणाली
  - राजनीति और संचार माध्यम
- ❖ निष्कर्ष
- ❖ संदर्भ सूची

## अध्याय - ४

### “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना”

#### ❖ विषय प्रवेश

राजनीति समाज का महत्वपूर्ण अंग है । किसी भी समाज के उत्थान-पतन में उसका विशेष योगदान होता है । समाज या राष्ट्र विशेष की शासन व्यवस्था के नियमों एवं नीतियों के सम्मिलित रूप को राजनीति कहा जाता है । विभिन्न प्रकार के शासक तथा भिन्न-भिन्न समय एवं परिवेश के अनुसार राजनीति के अनेक रूप होते हैं । शासक एवं राज्य कर्मचारियों की स्वार्थ वृत्ति, सत्ता लोलुपता के कारण इसमें अनेक विकृतियाँ पायी जाती हैं । स्वतंत्रतापूर्व भारत की प्रजा ने स्वराज को लेकर अनेक सुनहरे स्वप्न संजोये थे । किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उनके स्वप्न खंड-खंड होते दिखाई देते हैं । देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी धांधली मची कि सच्चे देशभक्त पीछे रह गये और स्वार्थ व सतालोलुप तत्त्वों ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली । स्वार्थपरता, सतालोलुपता भ्रष्टाचार एवं दलबदल की प्रवृत्ति जैसी अनेकविध बुराइयों ने भारतीय राजनीति को भ्रष्ट, खोखली एवं नीतिविहीन बना दिया । वैसे ये राजनीतिक बुराइयाँ प्राचीन समय से लेकर आजतक की राजनीति में थोड़ी बहुत मात्रा में दृष्टिगोचर होती ही रही हैं ।

साहित्य में समाज का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया जाता है । युगधर्मी साहित्यकार अपने युगीन यथार्थ का, विभिन्न क्षेत्रों की अच्छाइयों और बुराइयों का सजीव चित्र अपने साहित्य में उभारता है । इसी में कालजयी साहित्य की सार्थकता निहित है । डॉ. राही एक ऐसे प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं, जिन्होंने

युगीन सत्य को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों को आधार बनाकर युग-विशेष की गतिविधियों को जीवन्त कर दिखाने का सफल प्रयत्न किया है।

### ❖ राजनीति शब्द का अर्थ :

राजनीति शब्द 'राज' तथा 'नीति' दो शब्दों के योग से बना है। प्रायः राज से राज्य तथा नीति से नियम अर्थ संपन्न होता है। नीति शब्द 'नी' धातु से बना है। 'नी' का अर्थ है किसी को, किसी ओर ले जाना अथवा मार्ग प्रदर्शन करना। राजनीति संबंध में विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर अपनी परिभाषाएँ दी हैं। रामचन्द्र वर्मा उन नियमों तथा विधान आदि को राजनीति मानते हैं "जिनके अनुसार किसी राज्य का कोई राजा शासन कार्य चलाता है।"<sup>१</sup> हिन्दी शब्दसागर में भी राजनीति की परिभाषा रामचन्द्र वर्मा के मत से मिलती जुलती है। इस कोश में राजनीति को "वह नीति माना गया है जिसका अवलम्बन कर राजा अपने राज्य की रक्षा और शासन को रूढ़ करता है। इस कोश में राजनीति के दो प्रधान भेद बताये गये हैं - एक तन्त्र और दूसरा आवाय। तन्त्र वह नीति है जिसके द्वारा अपने राज्य में सुप्रबंध और शांति स्थापित की जाय। और जिसके द्वारा परराष्ट्रों से संबंध दृढ़ किए जाये वह आवाय कहलाती है। इस कोश में राजनीति के चार अंग और भी बताये गये हैं। साम, दाम, दण्ड तथा भेद।"<sup>२</sup> राजनीति के संदर्भ में कोशगत अर्थ यह भी बताया गया है कि "राजनीति संबंधी राज्य की यह नीति जिसके अनुसार प्रजा का शासन तथा पालन और अन्य राज्यों से व्यवहार होता है।"<sup>३</sup> राजनीति का संबंध समाज से है। जिसके तहत शासन के नियम निर्मित होते हैं। प्रशासन उसी के अनुसार अन्य राष्ट्रों से अन्यादि प्रकार की नीतियों के माध्यम से व्यवहार भी करता है। रामचन्द्र वर्मा के अनुसार "राजनीति वह नीति है। जिससे राज्य का और शासन का संचालन

होता हैं । अतः उपर्युक्त कोशगत अर्थ के आधार पर हम राजनीतिक चेतना के संदर्भ में कह सकते हैं कि देश के वे नियम जो सामाजिक – सद्भाव विकास एवं समन्वय की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं । वे आदर्शात्मक होते हैं । देश विदेश की जनता का विविध दृष्टि से विकास होना चाहिए, इस आधार पर ऐसे नियमों, तत्त्वों की संहिता का नाम राजनीति है ।”<sup>४</sup>

आज तो राजनीति का अर्थ ही बदल गया है । आज नीति का राज न होकर राज की नीति हैं । आज के शासकों तथा नेताओं का राजनीति के प्रति दृष्टिकोण पूर्वतः परिवर्तित हो गया है ।

### ❖ राजनीतिक चेतना का स्वरूप :

सामाजिक चेतना के प्रमुख रूपों में राजनीतिक चेतना का महत्वपूर्ण स्थान हैं । क्योंकि राजनीतिक चेतना न केवल आर्थिक संबंधों का प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि नियामक के रूप में स्वीकृत है । राजनीतिक चेतना राजनैतिक विचारधारा के रूप में व्यक्त होती है । इसके माध्यम से वर्गों के आपसी संबंध स्पष्ट होते हैं और आगे चलकर वर्गों और राज्य के संबंध भी निर्धारित होते हैं । वर्गों और राज्य की वास्तविक नीति निर्धारित करने में राजनीतिक चेतना को एक बहुत बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है । मार्क्सवादी विचारधारा में यह स्वीकार किया जाता है कि राजनीति का स्वरूप वर्गीय समाज में किसी-न-किसी वर्ग विशेष से जुड़ा रहता है । राजनीति का स्वरूप केवल आर्थिक कारणों पर निर्भर नहीं करता, बल्कि नेतृत्व, सांस्कृतिक परिवेश, राष्ट्रीय विशेषताओं एवं राजनैतिक दलों पर भी निर्भर करता है । वर्गीय संघर्ष की विचारधारा के रूप में अभिव्यक्ति सर्वप्रथम राजनीति के क्षेत्र में होती है । राजनीतिक विचारधारा समाज में आर्थिक विकास पर अप्रत्यक्ष रूप से भी प्रभाव करने की प्रेरणा देती है । विविध चेतना, नैतिकता, धर्म, विज्ञान और यहाँ

तक कि दर्शन विज्ञान तथा कला भी शासकवर्ग की सेवा में जुड़ जाती है । राजनैतिक विचारधारा चेतना के सभी प्रमुख रूपों से प्रभावित होती है ।

सामाजिक चेतना के मुख्य घटक के रूप में राजनीतिक चेतना की स्वीकृति आवश्यक एवं स्वाभाविक है । समाज के मूल आर्थिक ढाँचे को बदलने के लिए राजनीतिक व्यवस्था में सभी वर्ग के लोगों को शामिल करना अत्यंत आवश्यक हैं । राजनीति पर सभी वर्ग के लोगों का आधिपत्य हुए बिना वर्गों की मुक्ति की संभावना नहींवत ही नहीं असंभव है । राजनीति अर्थतंत्र से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं । शोषितों की आर्थिक स्थिति राजनीतिक ढाँचे को बदले बिना नहीं सुधर सकती । सामान्यतः सभी युगों में जीवन का प्रत्येक क्षेत्र किसी-न-किसी रूप में राजनीति से अवश्य प्रभावित होता रहता है । विशेषतः आधुनिक युग तो पूरी तरह से राजनीति से प्रभावित है । यहाँ तक कि वर्तमान युग में धर्म, विज्ञान, शिक्षा तथा संस्कृति का विकास भी राजनीतिक गतिविधियों के मुताबिक होने लगा है । इसी कारण आधुनिक युग में अधिकांश उपन्यासों में चाहे उसका प्रमुख प्रतिपाद्य जो भी रहा है, उसमें राजनीति का उल्लेख न्यूनाधिक रूप में अवश्य रहता है ।

स्वाधीनता के बाद समग्र देशवासियों के समक्ष ऐसे वातावरण को उपस्थित करने की आवश्यकता थी, जो स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए हर प्रकार से सशक्त तथा एकता पथ पर अग्रसर रहने की प्रेरणा देता रहे । परंतु देश के अधिकांश नेताओं तथा अधिकारियों ने राष्ट्र सेवा की अपेक्षा अपने स्वार्थ की सिद्धि को ही अधिक महत्व दिया । परिणामतः व्यवहारिक स्तर पर लोगों में राष्ट्रीयता की सच्ची भावना का अभाव बना रहा । फिर भी अनेक प्रकार की योजनाओं द्वारा देश को समृद्ध और शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया जाता रहा है । स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में इन सभी राजनीतिक स्थितियों का प्रदर्शन किया गया है । राजनीति को लेकर खड़े हुए अनेक सवालों, समस्याओं एवं उसके समाधान का सुजाव देने का प्रयास अनेक

उपन्यासकारों ने किया। अपने उपन्यासों में राजनीतिक चेतना जागृत कराने के लिए प्रस्तुत अध्याय में डॉ. राही मासूम रज़ाके उपन्यासों में राजनीतिक चेतना को जानने का प्रयास किया गया है।

### ❖ साहित्य और राजनीति :

हिन्दी उपन्यास का आविर्भाव सामाजिक और राजनीतिक चेतना को लेकर हुआ है। हिन्दी उपन्यासों में भारतीय लोकजीवन का जो चित्रण हुआ है, वैसा साहित्य की अन्य विधाओं में दुर्लभ है। “हिन्दी उपन्यास का इतिहास ही हमारे लोकजीवन में व्याप्त राजनैतिक चेतना का इतिहास है।”<sup>५</sup> साहित्य और राजनीति का अनन्य साधारण संबंध है। आज साहित्य और राजनीति एक दूसरे के प्रेरक बन गये हैं। दोनों एक दूसरे से प्रभावित हैं। आज साहित्य को राजनीति से अलग करना असंभव ही नहीं नामुमकिन है। राजनीति प्रत्येक युग के हर भाषा के साहित्य में विभिन्न रूप में विद्यमान हैं। जहाँ तक उपन्यास विधा का प्रश्न है, वह तो व्यक्ति के राजनीतिक जीवन व्यापार से इस तरह एकाकार हो गयी है कि उसे साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता। वास्तविकता यह है कि हमारे जीवन में धर्म और दर्शन भी राजनीति का आवरण ओढ़कर उपस्थित होते हैं, इस दृष्टि से उपन्यास हमारे जीवन से अधिक निकट है। राजनीति और साहित्य का संबंध स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध विचारक सुषमा शर्मा कहती है – “व्यक्ति समाज और राजनीति एक-दूसरे से अविच्छिनीय रूप से अनुपस्थित है। राजनीति समाज की दिशा निर्धारित करती है और समाज राजनीति की। इस भाँति दोनों ही एक दूसरे से प्राणरस ग्रहण करते हैं।”<sup>६</sup>

साहित्य का समाज पर गहरा असर पड़ता है। जिस देश का साहित्य अच्छा होगा उस देश का समाज भी अच्छा होगा। समाज अच्छा होगा तो उस देश की राजनीति भी अच्छी होगी। वास्तव में समाज साहित्य और

राजनीति का मिलन बिन्दु है । ये तीनों साथ-साथ चलनेवाली चीजें हैं । इन तीनों का उद्देश्य भी एक ही है । हिन्दी साहित्य और राजनीति को पृथक रखने की चेष्टा करना सरल नहीं है । एक साहित्यिक मानव कल्याण के लिए जो चेष्टा कर सकता है, वैसा एक नेता नहीं । राजनीति को साहित्य से पृथक करना जीवन को एकांगी बना देता है, उसके एक पक्ष को नकार देना है, यथार्थ से पीछे हट जाना है । आज राजनीति प्रत्येक युग के विभिन्न स्वरूपों और विधाओं में विभिन्न रूप में विद्यमान है । उपन्यास विधा की बात तो और ही है । उपन्यास साहित्य व्यक्ति के राजनीतिक जीवन से इस तरह से एकाकार है कि उसे साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता । धर्म और दर्शन भी राजनीति का आवरण ओढकर उपस्थित होते हैं । इस दृष्टि से उपन्यास विधा हमारे जीवन से अधिक निकट मानी जाती है ।

किसी भी राष्ट्र का कोई साहित्य अवश्य होता है । बिना साहित्य राष्ट्र अधूरा माना जाता है । साहित्य यदि होगा तो जन-सापेक्ष ही होगा और जन-राष्ट्र का साहित्य उसकी राजनीति की अभिव्यक्ति करेगा ही । ऐसा साहित्य कभी भी नहीं मिल सकता, जो किसी की भी अभिव्यक्ति न हो, क्योंकि प्रत्येक शब्द किसी न किसी की अभिव्यक्ति होती है और किसी न किसी को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है । इस प्रकार साहित्य का राष्ट्रीय एवं राजनीतिक चेतना से प्रभावित होना साहित्य की अनिवार्यता में ही सम्मिहित है । साहित्य राष्ट्रीय होकर भी सार्वभौमिक होता है । क्योंकि उसके द्वारा मानवीय संवेदनाओं का प्रकाशन होता है । साहित्य में संपूर्ण राष्ट्र की प्रतिभा किसी एक व्यक्ति के माध्यम से प्रकट होती है । वह व्यक्ति न अपने को अस्वीकार कर सकता है, न अपने व्यक्तित्व का अतिक्रमण कर सकता है । फलतः उस व्यक्ति के मानवीय संवेदन ही राष्ट्रीय बनते हैं । साहित्य में राष्ट्रीयता एवं राजनीति अनिवार्यतः आ ही जाती है और साहित्य को छोड़कर राष्ट्रीयता एवं राजनीति की कल्पना भी नहीं की जा सकती । इसलिए डॉ.



राही ने अपने उपन्यासों में राजनीति के व्यापक फलक से वर्तमान का समाधान ढूँढकर भविष्य के निर्धारण का सफल प्रयास किया है। उन्होंने मानवता के विकास में योगदान दिया है। उनका उद्देश्य उपन्यास में मानवता को अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान की आलोचना करना और भविष्य की रूपरेखा प्रस्तुत करना है। डॉ. राही के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना का जो दीपक प्रज्वलित हुआ है, उससे वर्तमान का समाधान ही नहीं, बल्कि भविष्य का रास्ता भी प्रदर्शित होता है। साहित्य के क्षेत्र में एक बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि राजनीति के रूप में निर्माण के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण भी चलता रहेगा और उसमें हम नये राष्ट्रीय जीवन की अभिव्यक्ति दे सकेंगे।

उपरोक्त विवेचनों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीति और साहित्य का संबंध बहुत गहरा है। साहित्यकार ऐतिहासिक काल की घटनाओं और परिस्थितियों का चित्रण करके वर्तमान की राजनीति पर विचार करता है तथा भविष्य की राजनीति के लिए मार्गदर्शन भी करता है। राजनीति के एक-एक बिन्दुओं पर साहित्यकार की दृष्टि होती है और वह उन सभी बिन्दुओं के चित्रण द्वारा वर्तमान की राजनीति में सुधार लाने का प्रयत्न करता है। साहित्य जन-जन को उन राजनीतिक बिन्दुओं से बचने के लिए आगाह करता है, जिनसे राष्ट्र एवं मानवता के विकास में बाधा पहुँची है। रचनाकार की दृष्टि में वर्तमान ही होता है और वह उसी को सुधारने एवं सँवारने का प्रयत्न करता है।

### ❖ हिन्दी उपन्यास और भारतीय राजनीति :

हिन्दी उपन्यासों में भारतीय लोकजीवन में व्याप्त राजनीतिक चेतना का जो चित्रण हुआ है, वैसा साहित्य की अन्य विधाओं में विरल है। हिन्दी उपन्यास का इतिहास हमारे लोकजीवन में व्याप्त राजनीतिक चेतना का इतिहास

है । उपन्यास हिन्दी साहित्य की वह विधा है, जो मानव चरित्र और समाज की स्थितियों और समस्याओं का जीवंत चित्रण प्रस्तुत करने में सक्षम सिद्ध हुई है । हिन्दी उपन्यासों की यथार्थता प्रारंभ से ही अपने समसामयिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आंदोलनों में जितनी अधिक रही, उतनी संभवतः अन्य किसी भी साहित्यिक विधा की नहीं रही । इस दृष्टि से उपन्यास का जन्म ही शासन की व्यवस्था का चित्रण तथा उसकी विसंगतियों पर व्यंग्य प्रहार से हुआ है ।

उपन्यास साहित्य राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति में किसी भी विधा से पीछे नहीं रहा है । उसके अंतर्गत देशप्रेम तथा जातिय गौरव की भरपूर अभिव्यक्ति हुई है । “किसी भी श्रेष्ठ कलाकृति में युग की केवल उन्हीं समस्याओं को प्रधानता दी जाती है, जो सारे युग की समग्र मानवता की सामूहिक गति से संबंध रखते हैं । जैसे युद्ध और स्थायी शांति, जनजीवन में पायी जानेवाली व्यापक आर्थिक विषमता बनाम स्थायी सामूहिक समाज आदि ।”<sup>१७</sup> उपन्यास साहित्य में प्रमुख रूप से मानव मन की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया जाता रहा है । इसलिए उपन्यास विधा अन्य विधाओं से अधिक लोकप्रिय हो रही है । इस युग में उपन्यास बहुत अधिक मात्रा में लिखे जा रहे हैं । उपन्यासों में विविध विषय वस्तुओं को यदि एक स्थान पर एकत्रित किया जाय तो हमारे समूचे मानव जीवन का एक अत्यंत जीवंत विशाल चित्र उपस्थित हो जायेगा । प्रारंभिक युग में उपन्यास अधिक मात्रा में प्रगति नहीं कर सके थे पर लोकप्रियता की चोटी पर पहुँच गये थे ।

प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यास में राजनीतिक चेतना भी चरमसीमा पर पहुँच गयी थी । यह प्रगतिवादी युग था । प्रेमचन्दोत्तरकालीन उपन्यासकारों ने राष्ट्रीय आंदोलन को अपने उपन्यासों में प्रमुख विषय बनाया, जिसमें तत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब इस युग के औपन्यासिक कृतियों में दृष्टिगोचर होता है । प्रेमचन्दोत्तर युग क्रांति का युग था । प्राचीनता का विरोध और नवीनता

का आग्रह इस युग की विशेषता थी । विज्ञान ने लोगों को अधिक तार्किक शक्ति प्रदान की थी । प्राचीन रूढ़िवादी परंपराएँ, समाज की संकुचित सीमाओं तथा जीवन में स्थिरताओं के प्रति लोगों की भावनाएँ बदल रही थी । वे अब जीवन में विविधता की अपेक्षा करने लगे थे । प्रेमचन्दोत्तरकालीन उपन्यासकारों ने इसे पूर्व रूप से आत्मसात कर लिया । युगीन समस्याओं को अधिक पैनी दृष्टि से देखना आरंभ किया । प्रेमचन्दकालीन आदर्शवाद मात्र उनकी दृष्टि में नहीं था । वे मानव के अंतर्मन में बैठकर उनके अंतर्द्वन्द्व और आंतरिक प्रवृत्तियों को समझने का प्रयास करने लगे थे । इन उपन्यासकारों ने मानव जीवन की समस्याओं का नया अध्ययन और उनका मनोवैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया ।

#### ❖ डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना :

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था से उसका मन एवं मस्तिष्क प्रभावित होता है । साहित्यकार के जीवन का निर्माण उसके युग की राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार होता है । अतः प्रत्येक साहित्यिक कृति के साथ प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप में राजनीति अवश्य जुड़ी रहती है । युग चेता साहित्यकार युगीन राजनीतिक परिस्थितियों का निरीक्षण करता है । उनसे प्रेरणा ग्रहण करता है और उन्हें प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से अपने साहित्य में अंकित करता है । डॉ. राही मासूम रज़ा युगचेता साहित्यकार थे । राजनीतिक परिस्थितियों का वे सूक्ष्म निरीक्षण – परीक्षण करते थे । अपने मनन और गहरे चिंतन के माध्यम से होनेवाले परिणामों को अपनी दूरदृष्टि द्वारा सहजता से भाँप सकते थे और गहन अध्ययन द्वारा अपने विचारों को साहित्यिक कृतियों के माध्यम से व्यक्त करते रहे हैं । आज मानव जीवन में परिस्थिति बदल गई है । आज जीवन ही राजनीति का एक अंग बन गया है । मनुष्य के समग्र जीवन को राजनीति ने खींच लिया है । डॉ.

राही इस स्थिति को लेकर काफी चिंतित है । हिन्दी साहित्य में डॉ. राही का आविर्भाव स्वाधीनता आंदोलन के आरंभ में हुआ था । डॉ. राही मासूम रज़ाने स्वतंत्रता पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात की राजनीति का यथार्थ अंकन औपन्यासिक कृतियों में प्रस्तुत किया है ।

राजनीति का मूल आशय व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वच्छ प्रशासन व्यक्ति में अंतर्निहित संभावनाओं के विकास के लिए अवकाश की खोज के साथ-साथ समाज में किन्हीं कारणों से व्याप्त असमानता उत्पन्न करनेवाले तत्त्वों के उन्मूलन का प्रयास है । स्वस्थ राजनीति शोषितों की पक्षधर होती है, ताकि अन्याय और असमानता का विरोध किया जा सके । जनता को उसके अधिकारों के प्रति जागृत होने की दिशा दी जा सके और कर्तव्यबोध कराया जा सके । डॉ. राही ने राजनीति की समसामायिक स्थिति का अपने साहित्य में स्पष्ट वर्णन किया है । देश विभाजन की राजनीति में कांग्रेस और मुस्लिम लीगी राजनेताओं के स्वार्थ सिद्ध करना नेताओं का उद्देश्य बन गया था । राजनीति के क्षितिज पर जिस नई सुविधावादी शोषण, अवसरवादी शोषण एवं छल छद्मवादी संस्कृति का उदय हुआ था, उसके जाल में फँसकर सामान्य भारतवासी शोषित हो रहा है । नेता मानस एवं जनमानस के मध्य एक खाई उत्पन्न हो गयी है और दोनों के पारस्परिक संबंध एक खोखली विडंबना बनकर मात्र रह गया है । नैतिकता को ताक पर रखकर जाति, धर्म, संप्रदाय जैसे मुद्दों के आधार पर की जानेवाली राजनीति डॉ. राही की दृष्टि से अनुचित है ।

राजनीति के क्षेत्र में भी डॉ. राही सर्वव्यापी मानवधर्म की स्थापना का स्वप्न देखते थे । राजनीति और राजनीतिक उनके लिए कभी सर्वे सर्वा नहीं थे । डॉ. राही के विचारों में भारत देश को सच्ची स्वतंत्रता केवल राजनीति की बाहरी हेरा-फेरी, चक्र-कुचक्रों के माध्यम से एवं आंदोलनों से प्राप्त नहीं हो सकती, वह तो युगचेता साहित्यकार के तेजस्वी विचारों एवं लेखन कार्य से

तथा सामान्य जनता की मानसिकता में आये परिवर्तनों से संभव होगी । डॉ. राही साहित्य सृजन के साथ निरंतर अपने युग की राजनीति के प्रति जागृत एवं सजग रहे हैं । अतः वह राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति पूर्णतः सजग थे और अपनी प्रतिक्रिया, परिणाम एवं चिंतनशील विचारों को समय-समय पर साहित्य एवं उपन्यासों के माध्यम से उद्घाटित करते रहे हैं ।

### ➤ सामंतीय जीवन में विघटन :

स्वतंत्रता के पूर्व साम्राज्यवादी अंग्रेज, पूंजीपति और जमींदार शोषण की तीन इकाईं थी । राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेज, नगरों में पूंजीपति और गाँवों में जमींदार मनमाना शोषण कर रहे थे और जनता इनकी सत्ताओं का शिकार थी । जमींदार गाँव के मालिक थे, शासक थे, एवं समस्त गाँव की सामूहिक जिंदगी के नियन्ता थे । गाँव की जिंदगी में अच्छे-बुरे रंग भरने की सत्ता उन्हीं के हाथ में थी । ग्रामीण जनता पर अत्याचार और अनाचार उन्हीं की दृष्टि से परिभाषित होते थे । स्वाधीनता प्राप्ति के तुरंत बाद हमारे राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान गाँवों में किसान सभाओं के माध्यम से उभर रहे रोष की ओर गया और उन्होंने गाँवों में इन सामंतों को समाप्त करने की योजना बनायी । वह योजना है – जमींदारी उन्मूलन । “जमींदारी उन्मूलन कृषक वर्ग में स्वामित्व की भावना जगानेवाला वह कदम है, जिससे कृषक वर्ग में चेतना जगे तथा वह सरकारी प्रोत्साहन या साधन, उधम और नवीन प्रविधियों से लेस हो कृषि की प्रगति में संलग्न हैं ।”<sup>८</sup> जमींदारी उन्मूलन उनके एकछत्र राज्य का विघटनकारी कार्य सिद्ध हुआ । डॉ. पूरनचंद जोशी का मत है कि ‘उन्मूलन के फलस्वरूप कृषिकारों पर जमींदारों – जागीरदारों के परंपरागत आर्थिक – सामाजिक तथा राजनीतिक प्रभुत्व और अर्ध-सामन्ती अधिकारों को गहरा धक्का पहुँचा ।’<sup>९</sup> उनका समस्त जीवन विघटित हुआ । जीवन के विभिन्न अधिकार हनन ने उनकी आंतरिकता को झकझोर दिया । कृषि और

कृषको को उन्नतिशील बनाने की दिशा में उठाया गया यह कदम वस्तुतः राजनीतिक था । रामबिहारी तोमर का भी यही मत है – “जमींदारी उन्मूलन का मूल आधार आर्थिक कारण नहीं, राजनीतिक कारण था और वह था जमींदार और जनता के बीच सदैव से चला आता संघर्ष । उसी के परिणाम स्वरूप जमींदारी उन्मूलन हुआ ।”<sup>१०</sup> स्वातंत्र्योत्तर काल में सत्ता का स्थान राजनैतिक शक्तियों ने ले लिया । जमींदारी उन्मूलन के साथ ही पुराने जमींदार और रियासतदार या तो सक्रिय हो गये या किसी अन्य श्रेणी में जा मिले, अनन्तोगोत्व नेता और पूंजीपति एक दूसरे के पर्याय ही थे ।

डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में जमींदारी उन्मूलन और उसके कारण उपस्थित परिस्थिति का वर्णन किया है । “आधा गाँव” उपन्यास राही का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास रहा है । जिसमें डॉ. राही उन शासकों और शासन व्यवस्था को धृणा की दृष्टि से देखते हैं, जिसमें शासक निरीह जनता के शोषक बन बैठते हैं । उनकी दृष्टि में विभाजन की सफलता के मूल में आर्थिक कारण ही महत्वपूर्ण रहा । जमींदारी उन्मूलन का भय और सरकारी लोभ के मोह में गंगोली के अधिकतर मुस्लिम लीगी हो गये । ‘आधा गाँव’ उपन्यास के उतरार्ध में डॉ. राही ने गाँव की टूटती बिखरती जिन्दगी के चित्र प्रस्तुत किए हैं । गाँव में बाहर-भीतर एक प्रकार की मायूसी छाई हुई है । गाँववाले शहर की ओर भाग रहे हैं । जमींदारी गई, घर परिवार की हालत खराब हो गई । जमींदारी का गर्व चूर हो गया है । इसी कारण उनकी स्थिति आर्थिक रूप से दयनीय हो जाती है ।

‘आधा गाँव’ उपन्यास में डॉ. राही ने गंगोली जैसे छोटे गाँव की कहानी बताई है । यह कहानी मुसलमान परिवार – उत्तरी और दक्षिण पट्टी में विभाजित शिया मुसलमानों से जुड़ी हुई है । गाँव में रहनेवाले अधिकांश मुसलमान परिवार या तो जमींदार थे अथवा जुलाहे । जमींदारों की तुलना में जुलाहों को निम्नजाति का समझा जाता था । अपना परंपरागत काम धंधा

करना या जमींदारों के घर पर नौकरी करना उनका अपना पेशा था । जमींदारों के घर में पुरुष तो पढ़े लिखे हुआ करते थे, लेकिन स्त्रियाँ अधिकतर अशिक्षित ही हुआ करती थी । जमींदार अपना खानदानी रुतबा संभालने में अधिकतर पैसा खर्च किया करते थे । जमींदार सभी आपसी संघर्ष में पड़े हुए थे । जब मुह्रम का दिन आता है, तब ताजीये निकलते हैं । उसी ताजीयों में दोनों पट्टियों के लोग आमने सामने लकड़ियाँ लेके आ जाते हैं । फुन्नन मियाँ को जमींदारी का ज्यादा चस्का लगा है । इसमें ठाकुर, जमींदार आदि सब अपने-अपने आराम और आपसी संघर्षों में अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं । जमींदारों के लिए अपने कुल की परंपरा उनके लिए सब कुछ है । उन्हें वह नष्ट नहीं होने देते, इसके लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार हो जाते हैं । गंगोली के शिया जमींदार धार्मिक आडम्बरों में ही फँसे नहीं थे, बल्कि अपने सामाजिक रीत रिवाज, अंध विश्वास, भेदभाव और खोखली जमींदारी की शान में डूबे हुए हैं । इसी कारण जमींदारी उन्मूलन के बाद अपनी गिरी हुई कुर्सियों को रसोइघर में जला देते हैं, क्योंकि उन्हें डर है कि परसुराम जैसा अछूत कांग्रेस नेता अपने सामने कुर्सियों पर बैठने की जुर्रत करेगा । जिसे वे अपनी शान के खिलाफ समझते हैं । सामंतवादी, रूढ़िगत तथा धार्मिक दृष्टिकोण ने गंगोली के इन परिवारों की हालत खराब कर दी है । वस्तुतः सामंती संस्कारों में जीनेवाला यह समाज अनेक अंतर्विरोध से परिपूर्ण है । इसमें एक ओर इंसानी कमजोरियों की प्रमाणिकता है, सच्चाई है, तो दूसरी ओर छलकपट, राग द्वेष, ईर्ष्या, स्पर्धा, कायरता आदि सामने आते हैं । इसलिए शिया परिवार जमींदारी उन्मूलन का यह झटका सह नहीं पाता और चरमराकर टूट जाता है । अर्थात् शिया परिवारों की अंतरंग झाकियाँ उसकी यथार्थता के साथ चित्रित हुई हैं । सरकार के जमींदारी उन्मूलन के कानून के कारण सारे देश में जनतंत्र की लहर दौड़ गई । इस घटना का गंगोली के शिया मुसलमानों की मानसिकता पर क्या परिणाम हुआ इसका तथा

जमींदारों के टूटने से हुई इनकी दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण डॉ. राही ने किया हैं ।

जमींदारी उन्मूलन की खबर ने वास्तव में गंगोली के जमींदारों की जड़े हिला दी तथा छोटे-छोटे शिया जमींदारों को घर से बेघर कर दिया । जिस जमीन के लिए तैयार थे, वही उनके पैरों के नीचे से खिसकी जा रही थी । जमींदारी को जो मजहब की तरह मजबूत मानते थे, वे ही देखते ही देखते पलभर में गिर गये । डॉ. राही ने उनकी इस स्थिति को भली-भाँति समझा हैं । क्योंकि सदियों से इस अंचल में रहने – बसनेवाले और जीने मरनेवाले शिया लोगों ने देखा कि जिस गंगोली को ये अपना कहते हैं और समझते थे, उस गाँव से ही उनका नाता टूट चुका हैं । इन लोगों के लिए पाकिस्तान बनना या न बनना विशेष मतलब नहीं रखता । जमींदारी के खात्मे ने इन्हें पूरी तरह से ध्वस्त कर दिया था । ऐसी मानसिक स्थिति में जी रहे गंगोलीवासियों की विशिष्टता को सहजता से उपन्यासकार ने रूपायित किया हैं । इसी बहाने लेखक ने आम मुस्लिमों की उस काल की मानसिक अवस्था को, सोचने की पद्धति को तथा उनके सुख दुःखों को इन घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है ।

मुस्लिम लीग प्रचारकों की स्थिति बड़ी विचित्र थी । जिससे वह अपने आखिरी हथियार का प्रयोग करते हैं । जिससे गंगोली के जमींदार लीग के हक में अपना वोट देते हैं । वे मुसलमानों को समझाते हैं कि “कांग्रेस जमींदारों को तोड़ने की कोशिश जरूर करेगी क्योंकि ज्यादा जमींदार मुसलमान ही हैं ।”<sup>११</sup> और इसका परिणाम हमें अब्बास मियाँ की प्रतिक्रिया में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । “त का कांग्रेस को ओट दे दिया जाय तो जमींदारी पर अपनी अखियाँ गड़ाये बेइठी है ?”<sup>१२</sup> गंगोली की बड़ी-बूढ़ी औरते नमाज में कांग्रेसवालों को बददुआयें दे रही थी, जिससे जमींदारी उन्मूलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं । जमींदारी उन्मूलन से गाँव में सन्नाटा-सा छा गया ।



जमींदारी उन्मूलन से गंगोली में राजनीति में बदलाव आता है और राजनेता के पद पर परसुराम आता है । गंगोली में इन दिनों परसुराम की बहुत अधिक चर्चा हो रही हैं, क्योंकि वह गंगोली के एक गरीब का लड़का है, जो अब एम.एल.ए. हो गया है और उसने यश के साथ बहुत धन भी इकठा किया है । उसकी इस आर्थिक संपन्नता को देखकर गाँववाले सोच में पड़ जाते हैं ।

‘नीम का पेड़’ उपन्यास में जमींदारी प्रथा एवं उनके उन्मूलन की चर्चा की गई है । इसमें मदरसा खुर्द के जमींदार अली जामिन खाँ और मुसलिम मियाँ दोनों जमींदार हैं, किन्तु दोनों में आपसी कलह के कारण उनका पतन हो जाता है । जमींदार जामिन खाँ गाँव में अपना शासन चलाते हैं । गाँववालों के लिए जामिन खाँ सब कुछ है । बुधिराम जामिन मियाँ का नौकर है । जिसमें झूठी गवाही देने के लिए विवश किया जाता है । दोनों ही जमीन के सिलसिले में आमने सामने आ जाते हैं और वही संघर्ष उनको पतन की ओर ले जाता है । उनको जमींदारी खत्म हो जाने का डर लगता है । जामिन मियाँ बताते हैं कि “जब जमींदारी ही नहीं रहेगी तो दुखतरी किससे लेगे मियाँ ..... बाबा मरहूस की कबर से ?”<sup>१३</sup> जामिन मियाँ की गिरफ्तारी से गाँव में सन्नाटा छा जाता है । कई वर्षों से चुनाव में जमींदारों का दबदबा रहता था, वह खत्म हो गया । चुनाव में जमींदार मुसलिम मियाँ की हार होती है और एक नये युग का आरंभ होता है । सुखीराम एम.पी. बन जाता है । “सुखीरामजी सन ६५ के चुनाव में भारी बहुमत से एम.एल.ए. बने और इस बार तो उन्होंने गजब ही कर दिया ७७ के चुनाव में तो उन्होंने केन्द्रिय गृह राज्य मंत्री मुस्लिम मियाँ साहब की जमानत ही जब्त करवा दी एम.पी. हो गए हैं सुखीरामजी ।”<sup>१४</sup> जमींदारी प्रथा उन्मूलन से गाँव में नयी रोशनी की किरण दिखाई देती है । कई सालों से जमींदारों के शोषण में जी रही ग्रामीण प्रजा आजाद हुई, गाँव में खुशियाँ मनाई जाने लगी । गाँव में पहली बार चुनाव आया, जिसमें लोगों को वोट देने का अधिकार मिला । वास्तव में जमींदारी

उन्मूलन से समाज में सही दिशा मिल गई और प्राचीनकाल से उनके अनुशासन में जी रहे लोगों को स्वतंत्रता मिली । किन्तु साथ ही जमींदारों की परिस्थिति दयनीय हो गई । उनको खाने के लिए भी भटकना पड़ा । सबकुछ बेचने लगे, किन्तु किसी भी प्रकार का कार्य करने से अपने को कायर समझते थे । इस तरह सब कुछ तबाह हो गया । सामीन मियाँ जमींदार का लड़का है, किन्तु वह समाज सेवा में लग जाता है । वह शोश्यल वर्कर बनकर लोगों की सहायता करता है । जमींदारों के मनमें जो अडचने थी, वो समाप्त हो गई और इसमें ग्रामीण समाज में एक चेतना सी जागृत हो गई । समाज में एक नए वर्ग की स्थापना की । जमींदारी खत्म हो जाने से नई चेतना का उदय होता है । जिससे गाँव में स्कूल भी खोला जाता है । “इ स्कूल हम अपन मियाँ से कहके खुलवाय रहा, काहे ते कि अपन गाँव मा स्कूल नाही रहा । सोचे सुखीराम भी पढिहे और सुखियाँ ना बतिहे, एक इज्जतदार इंसान बन जाहिए । अब इज्जतदार बने के नाही हा एम.पी. बन्गे कैसे ? यही मियाँ के स्कूल के कारण ।”<sup>१५</sup> जमींदारी उन्मूलन के कारण बुधीराम जैसे निम्नजाती के व्यक्ति का लड़का सुखीराम पढ लिखकर एम.पी. बन जाता है ।

‘आधा गाँव’ उपन्यास में जमींदारी उन्मूलन से हरिजनोद्धार के संबंध में मुसलमानियाँ परस्पर चर्चा करती है और हरिजनों के बारे में बताते हैं कि “ऊ सब अछुता ना है हरिजन हो गये है । उन्होंने मुर्दा खाना छोड़ दिया है और कई महीना भर पहले चमारों का एक परसरमवा की लीडरी में पंडितों के कुए पर चढ गया और पानी भर लाया ।”<sup>१६</sup> जिससे जमींदारी खत्म हो जाने से सभी नातजात के भेदभाव खत्म हो जाते है और निम्नजाति के लोगों के लिए उन्नती के द्वार खुलने लगे । जमींदारी खत्म हो जाने से गाँव में कई परिवर्तन आये । गाँव में नयी सडक बन गई जिसे मुसलमानों के लिए खुशी का कोई ठीकाना नहीं था । “इती तकाबी यहाँ बाटी गयी है – दो तरफ से पुरजा सडके बन गई है कि अब आधे घण्टे में आप लोग शहर पहुँच जाते

है । गाँव में हर गली पक्की हो गयी है । दो स्कूल चल रहे हैं ..... और कोई सरकार इससे ज्यादा कर सकती है ।”<sup>१७</sup> इस बात से ग्रामीण जीवन में आये बदलाव का ख्याल आता है । जमींदारों के समय की स्थिति और जमींदारी प्रथा उन्मूलन के बाद राजनीति के बदलते दृष्टिकोण से आये बदलाव के कारण नयी चेतना जागृत होती है ।

जमींदारी के रहते मुहर्रम को मनाने का जो उत्साह था, शान थी, वह जमींदारी उन्मूलन के बाद समाप्त हुई । जमींदारी उन्मूलन से मुस्लिम जमींदारों के हौसले नष्ट हो चुके थे । उनके बीच टूटन आ चुकी हैं । वे वास्तविक रूप में टूट चूके थे । अर्थात् धर्म का महत्त्व तब है, जब धार्मिक आचरण करनेवालों की आर्थिक स्थिति संपन्न हो । इसी कारण देश स्वाधीन हुआ तो जमींदारी गई और जमींदारों की हालत खराब हो गई । उपन्यासकार ने इन शिया – सैय्यद जमींदारों के जीवन के उतार-चढ़ाव को विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है ।

जमींदारी उन्मूलन से समाज का पूरा ढाँचा टूट गया, गंगोली का जमींदार गाजीपुर में पान की दुकान नहीं खोल सकता था, पर करांची में उसे कौन जानता था ? इसलिए जब उससे गंगोली छूटी तो वह गंगोली से इतनी दूर चला गया, जहाँ कोई काम करके जीने में उसे शर्म न आये । जमींदार गया तो उसके साथ जीनेवाले भी गये । जमींदारी उन्मूलन से उत्पन्न परिस्थितियों का डॉ. राही ने सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है ।

### ➤ आपातकालीन परिस्थितियाँ :

समाजवाद लाने के लिए सरकार ने गरीबी हटाओ जैसे आंदोलन चलाये । इन आंदोलनों से न गरीबों की गरीबी हटी न अमीरों की अमीरी कम हुई । सरकार गरीबी हटाने का प्रमाणिकता से इस दिशामें कदम बढ़ाती तो गरीबों की अवस्था में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आता । हर दल की

सरकार अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए नारों और योजनाओं की राजनीति करती रही है । जब सत्ता की कुर्सी डगमगाने लगती है, तो किसी कूटनीति का सहारा लेकर उसे बचाने का प्रयास किया जाता है । श्रीमती इंदिरा गांधी को जब अपनी सत्ता का आसन डगमगाता हुआ दिखाई देने लगा तो सत्ता पर बने रहने के लिए आपातकाल की घोषणा कर दी । आपातकाल में देश सौ साल पीछे चला गया ।

आपातकालीन शोषण की चर्चा डॉ. राही ने 'कटरा बी आर्जू' उपन्यास में की हैं । आपातकालीन घोषणा के कारण देश के सामने गंभीर समस्या निर्माण हो गयी । इसमें श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार व उसके कलपूर्जे आम जनता के सुख-चैन छीनते नजर आते हैं । नौकरशाही का राजनैतिक उपयोग दृष्टव्य है ।

“इमरजेंसी  
उजाला कहाँ है ?  
न दिल में  
न घर में  
न रास्ते पर  
न उस रह गुजर में  
उजाला कहाँ है ?  
उजाला कहाँ ?”<sup>१८</sup>

आपातकाल की घोषणा मात्र जनता तथा विरोधी दलों के नेताओं के विरोध दबाने के लिए और सत्ता में रहने के लिए की गई । श्रीमती इंदिरा गांधी ने १९७५ में देश में आपातकाल की घोषणा की । देश में आपातकाल के दौरान मीसा कानून के अंतर्गत अनेक लोगों को गिरफ्तार किया गया । चारों तरफ आतंक व्याप्त हो गया था । सारी मानवीय गरीमा और नागरिक अधिकारों पर रोक लगा दी गई । देश के अधिकांश बुद्धिजीवी और लेखक

मौन हो गए । विरोध करना तो दूर, उन्होंने लिखना भी बंद कर दिया । इलाहाबाद हाइकोर्ट ने इंदिराजी के चुनाव को हेराफेरी के आरोप में रद्द किया । इससे कांग्रेस पार्टी और इंदिराजी को बहुत बड़ा धक्का लगा । कांग्रेस पार्टी के एक गुट ने उन्हें त्यागपत्र देने को कहाँ, लेकिन उन्होंने इन्कार किया । तत्कालीन राष्ट्रपति ने २६ जून १९७५ के दिन संपूर्ण देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा की । इमरजेन्सी का आतंक मुस्लिम समाज पर अधिक रहा । कई दुकाने बुलडोजर द्वारा गिराई गई । डॉ. राही ने इन घटनाओं को अपने उपन्यास के कथानक द्वारा जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया । भारतीय राजनीति में आपातकालीन स्थिति एक काला अध्याय था । श्रीमती इंदिराजी इलेक्शन पिटीशन हार जाने से प्रेमा नारायण को बहुत दुःख होता है । “आकाशवाणी की एक न्यूज रीडर प्रेमा नारायण को जब यह खबर सुनानी पड़ी कि श्रीमती गांधी इलेक्शन पिटीशन हार गई और छः साल तक कोई चुनाव नहीं लड़ सकेगी तो वह रो पड़ी और उसे कई बार कहना पड़ा ‘क्षमा कीजिएगाँ’ ।”<sup>१९</sup> भारतीय समाज की यह विशेषता रही हैं कि यहाँ शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही वर्ग राजनीति को लेकर संवेदनशील हो जाते हैं । राजनीतिक विचारधारा को लेकर वाद-विवाद चलता रहता है, जिसके सहज चित्र डॉ. राही ने उपन्यास में प्रस्तुत किए हैं । इस उपन्यास में एक ही परिवार में दो प्रकार की विचारधाराएँ दृष्टिगत होती है, बाबूराम, आशाराम और मित्र देशराज में हुए पारस्परिक वार्तालाप राजनीतिक संवेदना का जीवंत प्रमाण है । आशाराम बताता है कि “यह औरत हिन्दुस्तान को अपने बाप की जागीर समझती है । मेरे घर में नेहरु और उनके परिवार के लोगों का नाम इज्जत से लिया जाता है । आपका घर हिन्दुस्तान के बाहर नहीं हैं पिताजी ।”<sup>२०</sup> भारत की अधिकांश जनता गरीबी की सीमा रेखा के नीचे जीवन यापन करती है । गरीबी हटाओं का नारा तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिराजी ने भी दिया था । तब बैंकों में गरीबों को कर्ज देना प्रारंभ किया । अतः मुशायरे में

उन्ही की प्रशंसा होने लगी । आपातकालीन स्थिति में इंदिरा गांधी के प्रभाव से प्रारंभ में अनुशासन को महत्त्व मिला, क्योंकि चोर-बाजारिए पकड़ लिए गये । दुकानदारों ने दुकानों पर रेटकार्ड लगा दिया । रेल ठीक वक़्त पर चलने लगी । सरकारी अधिकारी ठीक समय पर ओफिस जाने लगे । लोगों के काम निश्चित समय में पूर्ण होने लगे और महिलाओं में राजनीति के प्रति अभिरूचि बढ़ने लगी । उपन्यास में देशराज और बिल्लो भी श्रीमती गांधी के आपातकाल के समर्थक थे ।

सारांशतः देश के आपातकालीन स्थिति के संबंध में अनेक मत दृष्टिगत होते हैं । राजनीति में जब सत्ता निर्माण होती है, तब सबसे अधिक हानी और अधिकारों का हनन गरीब, असहाय और असंगठित लोगों का ही होता है । इमरजेन्सी के दौरान संपन्न वर्ग, सत्ता पक्ष के नेता और नौकरशाही के साथ उनका चित्रण हमें मिलता है । डॉ. राही की यह कहानी इलाहाबाद शहर के मुहल्ले की नहीं, हर बड़े शहर के मुहल्ले की कहानी है । मामूली लोग एक घर बनाने का सपना जीवनभर पालते हैं और संघर्ष भी । उन्हें सफलता भी मिलती है, लेकिन इमरजेन्सी का बुलडोजर उनके सपने और घर दोनों को चकनाचूर कर देता है । उजाला फिर अंधेरे में बदल जाता है । डॉ. राही की व्यंग्यात्मक भाषा उपन्यास की विशेषता हैं ।

आपातकाल भारतीयों के लिए एक दुःखद कालखण्ड रहा । सत्ता में जिसकी साझेदारी थी, उनके लिए आपातकाल सुखद हो सकता है, लेकिन सामान्य भारतीयों के लिए यह बड़ा यातनादायक रहा । तानाशाही किसे बहते हैं इसका अनुभव आपातकाल में हुआ । इस पर लेखक अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि “मुझे शर्म यह सोचकर आती है कि हिन्दुस्तानी बुद्धिजीवियों ने इसके खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाई ? कम्युनिष्ट बुद्धिजीवी तो उसका साथ दे रहे थे । हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास उन्हें क्षमा नहीं करेगा ।”<sup>२९</sup> उपन्यासकार जहाँ कहीं पात्रों द्वारा अपने विचार कहने में असमर्थ

पाता, वहीं पर स्वयं उपस्थित होकर वक्तव्य देकर इमरजेंसी के संबंध में अपने विचार व्यक्त करता है। उपन्यासकार इमरजेंसी की ज्यादातियों का बखान करने में सफल तो हुआ है, लेकिन कुछ घटनाएँ और प्रसंग अस्वाभाविक और कृत्रिम बन गए हैं। ऐसा लगता है मानों अपने विचार थोपने के लिए उन्हें जबरदस्ती रखा गया है। यहाँ डॉ. राही स्वयं अपने विचारों को प्रस्तुत करते हैं।

### ➤ देश विभाजन की विभीषिका :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत-पाक विभाजन के कारण उत्पन्न हुई विभीषिका को डॉ. राही ने अपने उपन्यास साहित्य में अभिव्यक्त किया है।

अंग्रेजों के शासनकाल में अंग्रेजों ने हिन्दू - मुसलमानों को अलग करने का प्रयास किया। जिससे हिन्दुओं को अधिक सुविधाएँ, नौकरियों में अधिक स्थान जैसे प्रलोभन देकर मुसलमानों की तुलना में अपने अधिक निकट आने दिया। हिन्दुओं की बढ़ती प्रतिष्ठा का परिणाम मुस्लिम मानस पर हुए बिना नहीं रहा। यहीं से सांप्रदायिक राजनीति का प्रारंभ हुआ। सन १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। प्रारंभ में कांग्रेस की ओर हिन्दू अधिक आकृष्ट हुए। कांग्रेस के बढ़ते प्रभाव को देखकर अंग्रेज शासक चौकन्ना हुए। जिससे उन्होंने हिन्दुओं पर अत्याचार करना आरंभ किया, जिससे पीड़ित आम जनताने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। हिन्दू का मुस्लिम समुदाय से अलगाव का क्रम मुसलमानों के आगमन के साथ ही प्रारंभ हुआ था। अंग्रेजों ने उसे निरन्तर भड़काये रखा और देश-विभाजन उसका अंत रहा। हिन्दू मुसलमानों के अलगाव का कारण आर्थिक परिस्थितियाँ भी थी।

भारत में हिन्दू और मुसलमानों के बीच फूट डालने का नाटक जैसे ही अंतिम चरण में प्रवेश कर गया। अंग्रेजों ने यह जान लिया कि विभाजन न

किया तो भी रक्तपात होगा और विभाजन किया तो भी । अधिकांश मुस्लिम नेता बिना प्रमाण के यह कहते रहे कि अगर हिन्दुस्तान में हिन्दुओं का शासन आया तो हिन्दू शासन उन्हें कुचल देगा । उनके मन में हमेशा हिन्दुओं से बदले का भय रहा, इतिहास साक्षी है कि इसी भय के परिणाम स्वरूप देश का विभाजन हुआ । देश विभाजन का व्यापक परिणाम भारतीय जनमानस पर तथा संवेदनशील लेखकों, कवियों पर अधिक मात्रा में रहा । डॉ. राही मासूम रज़ा एक संवेदनशील लेखक थे, जिन्होंने देश विभाजन पूर्व की और विभाजन के बाद की त्रासदी को देखा, भोगा और अनुभव किया । अतः उपन्यासों में घटनाएँ केवल घटती नहीं हैं, परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं । डॉ. राही ने तत्कालीन समाज जीवन को कथा का आधार बनाकर अपने उपन्यासों की रचना की है । आज आजादी के इतने वर्षों के बाद भी डॉ. राही ने विभाजन की त्रासदी को अलग-अलग कोनों पर खड़े होकर उसके कथावस्तु के रूप में उपन्यास में अभिव्यक्त किया है ।

‘आधा गाँव’ डॉ. राही का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और चर्चित उपन्यास है । राही ने गंगोली गाँव में बसे हुए शिया मुसलमानों की जिंदगी का आजादी के पहले और आजादी के बाद का वर्णन किया है । देश के विभाजन की पूर्व स्थिति का परिचय तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राजकीय, सामाजिक, आर्थिक तथा वैचारिक दृष्टि से परिवर्तन जिस तेजी से होते गए, उसका प्रभाव भारतीय शिया मुसलमानों के मन पर किस तरह होता गया, इसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । साथ ही कांग्रेस और मुस्लिम लीग के आंदोलनों की, जमींदारी प्रथा और जमींदारी उन्मूलन की, भारत - पाकिस्तान बंटवारा और पाकिस्तान की स्थापना की तस्वीर प्रस्तुत की है । गंगोली के लोगों की मानसिकता का पता नहीं चलता, बल्कि उस समय गाँवों में रहनेवाले भारत के आम आदमी की मानसिक स्थिति का पता चलता है । पाकिस्तान और लीगी प्रचारक आदि की बातें सर्व सामान्य व्यक्ति के सोचने विचारने से परे थीं । न उन्हें बँटवारे में



रस था और न ही राजनीति में । वे तो अपनी सरल सादी जिंदगी से खुश थे । अर्थात् गंगोली में एक ओर यह एकता की भावना दोनों समाजों में मजबूत थी तो दूसरी ओर इन लोगों में भेदभाव या फूट निर्माण करने के प्रयत्न जारी थे । गंगोली में मुसलमान जमींदार और हिन्दू निम्न जाति के लोग रहते हैं । यहाँ अधिकतर मुसलमान शिया पंथी हैं । उपन्यास का एक मात्र पात्र अब्बास बार-बार पाकिस्तान का प्रचार करता है । वह जिन्हा साहब की राजनीति और पाकिस्तान के बनने के उद्देश्य को समझाने की कोशिश करते हैं । परंतु सिवा उसके अन्य कोई भी मुसलमान पाकिस्तान को कभी अच्छा नहीं कहता । अब्बास लोगों के मन में भविष्य के सुनहरे रूप को सजाता है । देहातियों से अब्बास कहता है कि “एक मरतबा पाकिस्तान बन गया तो मुसलमान एश करेंगे.... एश ।”<sup>२२</sup> ऐसी बातें सुनाकर देहाती मुसलमानों को समझाने की कोशिश की जाती है ।

उपन्यासकार ने उस समय की आम हिन्दू - मुस्लिमों की मानसिकता को पकड़ने का सफल प्रयास किया है । सारे देश में मुस्लिम लीग के प्रचारक अलगाव का जहर फैलाने में लगे हुए थे । प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे प्रचारकों का भी सफल चित्रण हुआ है । काली शेरवानियाँ पहने दो अजनबी लड़के गाँव में पाकिस्तान का प्रचार करने के लिए आते हैं । रहमान-बी नामक एक स्त्री उन लड़कों से पूछती है कि अलीगढ़ पाकिस्तान जायेगा या नहीं, तब वे बताते हैं कि “हम लोगों की कोशिश तो यही है कि अलीगढ़ पाकिस्तान में शामिल हो जाय । क्योंकि यह इस्लामी तहजीब का एक रोशन सितारा है ।”<sup>२३</sup> पाकिस्तान के प्रचार के लिए आये युवक जब गाँवावालों को समझाते हैं तब उनकी तकरीरों को नहीं समझ पाते । कम्मो इन युवकों से पूछता है कि “हिन्दुस्तान के आजाद होवे के बाद इ गयवा आहीर, इ छिकुरिया या लखना चमार या इ हरिया बढई हमरे दुश्मन काहे को हो जइहे, यानी बिला बजहे ? हुआँ इके सब पढते हैं आप लोग को ?”<sup>२४</sup> उन प्रचारक नवयुवक

पर एक सामान्य व्यक्तिने अपने सरल वृत्ति के अनुसार जबरदस्त प्रहार किया है कि वे आगे कुछ बोल ही न पाये । गंगोली के फुन्ननमियाँ, कम्मो, रब्बन-बी, छिकुरियाँ आदि प्रचारकों की बातों से प्रभावित नहीं हो रहे हैं । प्रचारक इन भोले ग्रामीण लोगों की धर्मश्रद्धा का लाभ उठाना चाहते हैं । किन्तु वे असफल रहते हैं । डॉ. राही ने इन प्रसंगों के माध्यम से उन सामान्य व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं को व्यक्त किया है । वास्तव में विभाजन और ग्रामीण आदमी के सोचने की पद्धति का पता 'आधा गाँव' के माध्यम से लग सकता है । उपन्यास में लेखक स्वयं कुछ नहीं कहता, उपन्यास के पात्र ही अपनी प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करते हैं । पाकिस्तान को लेकर विभाजन पूर्व ग्रामीण भारत के मुसलमानों और हिन्दुओं की क्या सोच थी इसका वास्तविक पता उपन्यास से मिलता है । ये लोग अपनी मिट्टी और अंचल से गहरे जुड़े हुए हैं । अपनी गंगोली को वे सर्वाधिक प्यार करते हैं । तन्नू बड़ा ही मार्मिक सवाल पूछता है । “मैं मुसलमान हूँ लेकिन मुझे इस गाँव से मुहब्बत है । क्योंकि मैं खुद यह गाँव हूँ । मैंने जंग में सब मौत बहुत करीब से देखी तो मुझे अल्लाह जरूर याद आता था लेकिन मकाए-मुअज्जम या कर्बला-ए-मुअल्ला की जगह मुझे गंगोली याद आती थी । गंगोली मेरा गाँव है । मक्का मेरा शहर नहीं है । यह मेरा घर है और काबा अल्ला मियाँ का । खुदा को अगर अपने घर से प्यार है तो क्या वह माजल्ला यह नहीं समझ सकता कि हमें अपने घर से उतना ही प्यार हो सकता है ?”<sup>२५</sup> इस प्रकार तन्नू अनेक तर्क देकर अपने गंगोली के प्रेम को व्यक्त करता है । गंगोली के लोग पाकिस्तान को लेकर परेशान नहीं हैं, परंतु उनके दिमाग में जो हलचले पैदा हुई है, उनके कारण वे मुसलमानों के अलग राष्ट्र को स्वीकार नहीं कर पाते ।

पाकिस्तान बनने के पीछे सब के अलग-अलग तर्क व कारण थे । समाज में सभी स्तरों पर एकता मजबूत थी । डॉ. राही ने अनुचित राजनीति,

दबाव और बल-प्रयोग के अनेक चित्र उपन्यास में खींचे हैं । साथ ही भारतीय नेताओं के दोषपूर्ण व्यक्तित्व एवं चरित्र पर तीखी चोंट की है । गाँव की एकता की परंपरा को तोड़ने के अनेक प्रयत्न किये जाते हैं । धार्मिक परंपराओं को भी शामिल किया जाता है । किन्तु वे असफल होते हैं । जिसका उदाहरण हम्माद मियाँ की प्रतिक्रिया के रूप में मिलता है कि “त का कांग्रेस को ओट दे दिया जाये जो जमींदारी पर अपनी आखिरियाँ गड़ाये बैठी हैं ?”<sup>२६</sup> इन सारी परिस्थितियों के बावजूद देश विभाजन होता है । डॉ. राही देश विभाजन के संबंधित इन सारे अनछूए प्रश्नों को छूकर उसका समाधान प्रस्तुत करते हैं ।

देश विभाजन से गंगोली में रोज अफवाहों का तांता लग जाता है । सांप्रदायिक दंगों की खबरे भी उनमें शामिल हैं । जैसे-जैसे पाकिस्तान से हिन्दुओं को पूर्णतः लूटकर वहाँ से खदेड़ने का प्रयास किया जाने लगा, वैसे-वैसे भारत के मुसलमानों को भी लूटकर खदेड़ने का प्रयास किया जाने लगा । डॉ. राही ने इन सारी बातों का और घटनाओं का यथार्थ वर्णन किया है । देश विभाजन से चारों दिशाओं में आँधी सी फैल गयी थी । अनेक परिवार एक दूसरे से अलग होकर टूटते जाते थे । गंगोली के मियाँ लोग पर पहाड़ टूट पड़ा था । क्योंकि भावनाओं का बाँध टूट चूका था । इस बँटवारे का परिणाम डॉ. राही के अनुसार मुस्लिम परिवारों पर अधिक रहा है । उन्होंने पाकिस्तान के उदय और जमींदारी व्यवस्था की समाप्ति को ‘आधा गाँव’ के कथ्य में जिस तरह अंतर्गुफित किया है, उससे यह स्पष्ट है कि जमींदारी खात्मे में कांग्रेस के निर्णय को मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के कुलीन सामंत वर्ग को मुस्लिम विरोधी प्रचार के रूप में इस्तेमाल किया, ताकि पाकिस्तान अभियान को बल मिल सके ।

गंगोली में जमींदारी प्रथा खत्म हो जाने से सुखरमवा चमार का बेटा परसरमवा जेल से आते ही नेता बन जाता है । निम्न जाति के लोग का इस

तरह नेता बन जाने से हकीम साहब से देखा नहीं जाता । पाकिस्तान बनने से कई समस्याओं का उद्भव हुआ । अब्बू मियाँ न तो पाकिस्तान जा सके और न गंगोली में रह सके, क्योंकि अब निम्न जाति के जुलाहों को भी सलाम करना पड़ता था ।

इस प्रकार देश विभाजन से निर्मित मानसिक स्थिति में पड़े हुए गंगोली के शिया मुसलमानों का चित्रण पूरे यथार्थ के साथ चित्रित हुआ हैं ।

### ➤ सांप्रदायिकता का जहर :

आजकल समाज में धर्म के नाम पर होनेवाले दंगों एवं अराजकता को सांप्रदायिकता का नाम दिया जाता है । सांप्रदायिक वृत्ति मानव-मानव के बीच गहरी खाई उत्पन्न कर देती है । इन धिनौनी प्रक्रियाओं के कारण देश दिन-प्रतिदिन समस्याओं के जाल में फँसता चला जा रहा है । अंग्रेजों की “फूट डालो और राज करो” की नीति के कारण जिस सांप्रदायिकता का बीज वपन भारत में हुआ, उसकी जड़े आज पूरे विश्व में इतनी गहरी हो गयी कि उन्हें निर्मूल करना असंभव है । तब से लेकर आज तक हमारे राजनेता अपने निजी स्वार्थों को लेकर सांप्रदायिकता की अग्नि में घी डालते रहे हैं । धार्मिक नेता एवं राजनेता सामान्य जनमानस की भावनाओं को भडकाकर देश में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करते हैं । आज भारतीय राजनीति में सड़ीगली घातक परंपराओं का निर्माण हो गया है । व्यक्ति-व्यक्ति में बँट गया है । सामान्य जनता में सांप्रदायिक भावना भरकर राजनेता अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं ।

डॉ. राही मासूम रज़ाने अपने उपन्यासों में सांप्रदायिक शक्तियों का यह भयावह स्वरूप तो स्पष्ट किया ही है, साथ ही भारत में रहे भारतीय मुसलमानों के आंतरिक छटपटाहट को भी स्पष्ट किया है । स्वतंत्रता पूर्व सांप्रदायिक ताकतें भारत में किस प्रकार से बल पकड़ती चली गई, मुसलमान समुदाय में इन ताकतों ने किस प्रकार से अलगाववाद के बीज बोये तथा उस

समय की आम मुस्लिम समाज की मानसिकता का यथार्थ वर्णन 'आधा गाँव' उपन्यास में प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत उपन्यास में डॉ. राही ने सांप्रदायिकता से उत्पन्न होनेवाले बीजारोपण के साथ गंगोली के लोगों की मानसिकता को प्रस्तुत किया है। भारत-पाक विभाजन के दौरान मुस्लिम समाज में लोगों को पाकिस्तान निर्माण के फायदे बताये जाते हैं। अब्बास अलीगढ़ से पढ़कर आया है, वह लोगों को समझाने की कोशिश करता है। किन्तु वहाँ के लोग इन बातों को समझने में असमर्थ हैं। गाँव का मास्टर हिन्दू - मुसलमानों में अंतर बताकर अलगाव फैलाने की कोशिश करता है। पढ़े-लिखे इन लोगों ने अलीगढ़ से अफवाहे आयात की और गाँववालों के दिमाग में अलगाव के किटाणु फैलाने की कोशिश की। लेखकने अनेक उदाहरण देकर यह बताया है कि आम देहाती जनता इनके बहकावे में नहीं आयी। गाँव में हिन्दू - मुसलमानों में एकता कायम रखने की कोशिश की जाती है, क्योंकि गाँववालों को मालूम था कि गाँव में किसी मंदिर मुसलमानों ने नहीं तोड़ा और हिन्दू जमींदार लोग मंदिर - मस्जिद में चंदा देते आये है। गाँव के गरीब श्रद्धालु देहाती लोगों में हिन्दू - मुस्लिमों के संबंध में असत्य बातें फैलाकर विभाजन के पूर्व सांप्रदायिक दंगे भड़काये।

भारत-पाक विभाजन के बाद हुए सांप्रदायिक दंगों का वर्णन 'आधा गाँव' उपन्यास में मिलता है। पाकिस्तान अलग हो जाने से कई परिवारों को अलग कर दिया था। वह विभाजन दो धर्मों के लोगों की आपसी बिदाई या बँटवारा नहीं था, अपितु पारिवारिक विभाजन का बँटवारा था। डॉ. राही ने इन सारी घटनाओं का यथार्थ वर्णन किया है। "चारों तरफ इतने बड़े-बड़े शहर धायँ-धायँ जल रहे थे कि उस आग में बच्छन और सगीर फात्मा एक तिनके की तरह पड़ी और भक से उड़ गयी। दिल्ली, लाहोर, अमृतसर, कलकत्ता, ढाका, चटगाँव, सैदपुर, रावलपिण्डी, लालकिला, जामा मस्जिद, गोल्डन टेम्पल, जालियाँवाला बाग, हाल बाजार, उर्दू बाजार, अनारकली..... अनारकली का नाम

सगीर फात्मा था, या रजनी कौर या नलिनी बनर्जी था – अनारकली की लाश खेत में भी, सड़क पर थी, मस्जिद और मन्दिर में भी और उनके नंगे बदन पर नाखूनों और दाँतों के निशान थे । और लोगों के खून से भीगे हुए गरारो, शलवारो और साड़ियों के टूकड़ों का यादगार के तौर पर हाफजे के सन्दूकों में सैंत-सैंतकर रख लिया था ।”<sup>२७</sup> दंगों की इस प्रकार की स्थिति के कारण चारो तरफ सन्नाटा सा हो जाता है । सांप्रदायिक दंगों के कारण मियाँ-बीबी, बाप-बेटा और भाई-बहन अलग हो गये । भारतीय मुसलमानों की स्थिति दयनीय हो गयी थी ।

‘ओस की बूँद’ उपन्यास में हिन्दू – मुसलमान सांप्रदायिकता के यथार्थपरक पहलू को और मानवीय संवेदना की समग्र अनुभूतियों को विश्लेषित किया गया है । उपन्यास में बजीर हसन पाकिस्तान का समर्थन और अंत तक लीग में रहकर पाकिस्तान की हिमायत करते रहें, किन्तु वे पाकिस्तान नहीं जाते । किन्तु अंतिम दिनों में पाकिस्तान बनने और उसकी हिमायत करने के कारण वे स्वयं को बहुत अपराधी समझने लगे । गाँव में एक शिव मंदिर था जो अपनी पृथ्वी विरासत होने के कारण वे मंदिर की सारी व्यवस्था करते थे और इसी मंदिर की पूजा के शंख बजने के कारण दोनों हिन्दू – मुसलमान के बीच दंगे हो जाते हैं । बजीर हसन इन दंगों को मिटाने की कोशिश करता है, किन्तु वह पुलिस की गोली से मर जाता है । जिससे अखबारों में खबर छपी कि “मंदिर की मूर्ति को तोड़ने की कोशिश करता हुआ एक मुसलमान पी.ए.सी. की गोली से मारा गया । शहर और आस-पास के गाँव में दंगा हो गया । तीस आदमी मारे गए । दो सौ अस्पताल में हैं ।”<sup>२८</sup> बजीर हसन सांप्रदायिकता के जहर को मिटाने की कोशिश करता है, किन्तु राजनीतिक हवा देने के कारण दंगे बढ़ते जाते हैं । सांप्रदायिक उन्माद से लहलुहान होती मानवता का मार्मिक चित्र डॉ. राही ने बहुत ही सूक्ष्मता के साथ किया है । इन्सान के खून की प्यासी धर्मान्धों की हकीकत का खुलासा

डॉ. राही ने बीबी के कटरे मंदिर के माध्यम से किया है। समय चेता राही को आनेवाले कल का आभास था। देश विभाजन के बाद एक नई स्फूर्ति के साथ विकास के नये युग की ओर बढ़ा, लेकिन उसका विकास राजनीतियों की चंगुल में उलझा गया। इस उपन्यास में हिन्दू - मुसलमान एकता के विश्वास को बढ़ावा प्रदान किया गया है। लेखक डॉ. राही मासूम रज़ाके सामने एक अहं प्रश्न है कि आखिर मुसलमानों को आक्रमणकारी, विदेशी और पराया कब तक कहा जाता रहेगा। महाराष्ट्र जितना हिन्दुओं का है, उतना ही मुसलमानों का भी है। बम्बई उसकी भी उतनी ही है, जितनी मराठों की। कोई उसे मुसलमान कहकर बम्बई से क्यों बाहर कर दे? राही के इन प्रश्नों का उत्तर वर्तमान में खोजना आवश्यक है।

‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में डॉ. राही ने बम्बई में हुए दंगों का उल्लेख किया है। इसमें रेवती और सलमा के प्रेम, उनके विवाह तथा लंदन में बस जाने का वर्णन है। सांप्रदायिक दंगों में लोगों के मारे जाने की खबर सुनकर लंदन में बैठी सलमा चिंतित है, क्योंकि उसके रिश्तेदार बम्बई में रहते हैं। बम्बई में दंगे भडक उठते हैं। कर्फ्यू लग जाता है। इन सांप्रदायिक दंगों में सब एक दूसरे के खून के प्यासे बने हुए हैं। संबंध टूटते जाते हैं, क्योंकि सब धार्मिक कट्टरता एवं राजनीति के चंगुल में फँसे हुए थे। अब्बास कहता है कि “तन्दुलकर के घरवाले अमरशेख के घरवालों को मार रहे हैं। यार एक बात बताव। मराठी मुसलमानों की तरफ शिवसेना का क्या रवैया है। हद है कि इलस्ट्रेटेड वीकली’ वालों ने भी बाल ठाकरे से यह सवाल नहीं किया।”<sup>२६</sup> सांप्रदायिकता का जहर इतना फैल गया है कि देश के सामने अनेक गंभीर समस्याएँ निर्माण हो गयी हैं। इस उपन्यास में घटनाएँ महत्वपूर्ण न होकर घटनाओं से उत्पन्न स्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं।

आज प्रत्येक व्यक्ति को विचारों की अभिव्यक्ति का अधिकार प्राप्त होता है। अतः सिद्धांतविहीन राजनीति का विरोध होना चाहिए। डॉ. राही को

हिन्दुस्तान के साधारण लोगों पर बहुत भरोसा है कि समय रहते उठेंगे और देश को सही रास्ते पर ले जायेंगे। 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में डॉ. राही ने मध्यमवर्ग के संकट, बढ़ते हुए जातीय संगठन और धार्मिक गठजोड़ों का विस्तार से वर्णन किया है। डॉ. राही का मानना है कि बिना सामूहिक सोच के, विकसित किए सांप्रदायिकता और जातिवाद से छुटकारा नहीं मिल सकता। आज हमारे देश की चुनाव नीति अधिकतर जातिवाद पर ही नजरे गड़ाए बैठी है। यदि इन समस्याओं का हल नहीं किया गया, तो भारत की एकता और अखंडता के सामने संकट उत्पन्न हो जायेगा। हमारी राजनीति राष्ट्रहित पर निर्भर नहीं है। सत्ता हित उसके लिए प्रमुख है। आज हम सब के लिए यह चिंता और चिंतन का विषय है, क्योंकि चुनाव जीतने का सशक्त माध्यम सांप्रदायिक विद्वेष प्रमुख बन गया है।

सांप्रदायिकता पर हमारे अधिकांश बुद्धिजीवी सैद्धांतिक बातें बहुत करते हैं। अपितु व्यवहार में इससे लड़ने की कोई राजनीति नहीं है। डॉ. राही सांप्रदायिकता को एक छूत का रोग मानते हैं, जो बुरे मौसम में तेजी के साथ फैलता है। कोढ़ की बिमारी किसी को भी हो सकती है। उसे हिन्दू कोढ़ या मुस्लिम कोढ़ नहीं कह सकते। सांप्रदायिकता भारतीय समाज का कोढ़ है। डॉ. राही कबीर के बाद दूसरे बड़े लेखक हैं, जिन्होंने तमाम खतरे उठाकर हिन्दू और मुसलमान दोनों सांप्रदायिक शक्तियों का डटकर मुकाबला किया। इन सांप्रदायिकता से उत्पन्न होनेवाले खतरों से समाज को सजाग करना और उसके भयस्थानों की चर्चा की है।

### ➤ जातिवाद और चुनाव पद्धति :

वोट द्वारा चुनने और चुने जाने की क्रिया चुनाव है। विभिन्न संदर्भों में इसका स्वरूप अलग-अलग होता है। राष्ट्रीय संदर्भ में चुनाव सरकार विनिर्माण का एक साधन है। स्वाधीन भारत में प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली के



कारण देश के प्रत्येक वयस्क नागरिक को मताधिकार का अवसर मिला, इससे एक ओर देश की आम जनता को देश की सत्ता के लिए संघर्ष शुरू हो गया, प्रजातांत्रिक व्यवस्था से ग्रामीणों में राजनीतिक चेतना व अधिकारबोध जगा, पर राष्ट्रीय राजनीति को दुषित करनेवाले तत्त्वों ने वातावरण में झहर घोल दिया। इस संबंध में सियाराम तिवारी का मत उचित प्रतीत होता है। “स्वाधीनता के बाद भारत के ग्राम जीवन को उन्नत करने के जो प्रयत्न हुए, उन्होंने ने उल्टे उसको तोड़ दिया। सबसे अधिक तोड़ा चुनाव ने, चाहे वह लोकसभा, विधानसभा का चुनाव हो या ग्राम पंचायत का चुनाव हो। जहाँ-जहाँ प्रजातांत्रिक पद्धति का राजनीति में प्रवेश हुआ, वहाँ-वहाँ उसने विष बीज बोया। फलस्वरूप राजनीति के दावपेच ने गाँव के जीवन में घुसकर उसे विषाक्त बना दिया।”<sup>३०</sup>

डॉ. राही मासूम रज़ाने अपने कुछ उपन्यासों में भारतीय गाँवों की राजनीति का सूक्ष्म अध्ययन किया है। उन्होंने ने अपने उपन्यासों में ‘नीम का पेड़’, ‘ओस की बूँद’, ‘आधा गाँव’, आदि कई उपन्यासों में चुनाव की प्रवालियाँ एवं चुनाव जितने के लिए किये गए दावपेच एवं राजनीति का सूक्ष्म अध्ययन करके अपने विचारों को व्यक्त किया है। आज कल गाँव जातिय आधार पर विभक्त है। आज राजनीतिक व्यवस्था में जातिवाद को अत्यंत प्रोत्साहन मिला है। जिससे हमारी राष्ट्रीय राजनीति दूषित हो गई है। स्वाधीनता पूर्व लोग जिस जातिवाद का विरोध करते थे, स्वतंत्रता के पश्चात पुनः राह देने लगे। क्योंकि चुनावों में भी आज जातिवाद का ज्यादा प्रभाव रहता है। जो व्यक्ति जिस जाति का ज्यादा मतदाता होता है वही व्यक्ति चुनाव लड़ता है और जीतता भी है। ‘नीम का पेड़’ उपन्यास में रामबहादुर यादव का बेटा रामखिलावन इस जातिवाद का विरोध करता हुआ कहता है कि “मैं नहीं मानता कि हमारे बुजुर्गों ने हर काम अच्छा ही किया है। हमारी हर परम्परा अच्छी ही है। यह कैसी परम्परा है कि एलेक्शन में जहाँ मुसलिम वोट ज्यादा

है..... वहाँ से मुसलमान इलेक्शन लड़ेगा, जहाँ ब्राह्मणों का बहुमत है वहाँ से कोई पंडित ही चुनाव में खड़ा किया जाएगा, जहाँ यादव है वहाँ से कोई यादव ही हूँढकर खड़ा करेंगे । एक नहीं सभी पार्टियाँ यही करती है । मैं यह कहता हूँ कि मुसलिम इलाके से पंडित और पंडितों की बस्ती से कोई यादव चुनाव क्यों नहीं लड़ सकता । इस महान देश में यह छोटी सी बात क्यों नहीं हो सकती ।”<sup>३१</sup> इस जातिवाद को लेकर चुनाव लड़े जाते हैं और परिणाम भी उसी के आधार पर होता है । भारतीय ग्रामों में जातियता अधिक मात्रा में दिखाई देती है । गाँव में जातियता को बढ़ावा देने में सत्ताधारियों और राजनेताओं का भी कम हाथ नहीं होता । चुनावी राजनीति में जातियता को खूब उछाला है । जातियता राजनीति का सहारा बन गयी है और राजनीतिक दल उससे लाभ उठाने का प्रयास कर रहे हैं । जातिवादि राजनीति से गाँव की आपसी सद्भावना समाप्त होती जा रही है । आज के नेता जातियता का नारा बुलंद कर चुनाव जीत लेते हैं और उसके बाद उसी जाति का शोषण करते हैं । आज देश की समस्त राजनीतिक चेतना जातिवाद से प्रभावित है । उचित-अनुचित का विचार न करते हुए एक जाति के लोग सिर्फ अपनी ही जाति के व्यक्ति को वोट देना चाहते हैं । आज देश में आधे से अधिक अपराध जातिवाद की भावना से प्रेरित होकर ही हो रहे हैं । इसी भावना के चलते अयोग्य लोग ऊँची-ऊँची कुर्सियाँ पर स्थापित हो जा रहे हैं ।

‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में इसी जातिवाद का वर्णन किया गया है । सय्यद आबिद रज़ाजो खानदानी कांग्रेसी थे, उन्हें पैतालीस के चुनाव में कांग्रेस का टिकट मिला तब वे उस चुनाव को हार जाते हैं, उसकी जमानत भी जब्त हो जाती है । उसका कारण जातिगत भेदभाव था । उन पर आरोप लगाया गया कि “क्या आप उस सय्यद आबिद रज़ाको वोट देंगे जो होली खेलता है ? क्या आप उस सय्यद आबिद रज़ाको वोट देंगे जिसकी बेटी हर साल नामहराम हिन्दुओं को राखी बाँधती है ? अगर आपकी इसलामी गैरत मर गई

है तो आप ऐसा जरूर कीजिए । मगर याद रखिए कि कयामत के दिन आप आँ हुजत (पैगम्बर) को क्या मुँह दिखाएंगे मैं मानता हूँ कि सय्यद आबिद रज़ा एक पढ़ा लिखा आदमी है । मैं यह भी मानता हूँ कि पहलवान अब्दुल गफ़ूर साहब एक मर्दे जाहिल है । मगर मैं यह भी जानता हूँ कि आँ हजत ने अरब के पढ़े-लिखों को छोड़कर अनपढ़ बिलाके-हबशी रज़ी अल्लाह ताला उनहो को अपने मसजिद का मोवज्जिन बनाया था । आप किसका साथ देंगे ? बिलाल की बिहालत का या अबू जेहल के इल्म का ?”<sup>३२</sup> भारतीय चुनावी राजनीति में जातियता का जहर फैला दिया है । इस धिनौनी राजनीति के कारण आदमी-आदमी में बँटता चला जा रहा है । एक दूसरे के प्रति वैमनस्य की भावना भर रही है । आज चुनावी राजनीति ने आम आदमी को छोटा बना दिया है । भारतीय राजनेता अपने निजी स्वार्थ के लिए आम आदमी का जातियों में बँटवारा कर रहे हैं । आज राजनीति में जातिवाद जैसी परंपरा शिक्षा के क्षेत्रों में भी देखी जाती है । विभिन्न विश्वविद्यालयों में भी हो रहे विभिन्न चुनावों में जातिवाद चलता है, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दुओं का दबदबा रहता है और अलीगढ़ विश्वविद्यालय में मुसलमानों का रहता है । इसी जातिगत भेदभावों के कारण विश्वविद्यालयों के छात्रों में भी अलगाव देखा जाता है । ‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में इप्फन सवाल करता है कि “बनारस में इंजीनियरिंग और साइंस के लड़के किसे वोट देते हैं ? इप्फन ने सवाल किया । जहाँ तक मुझे याद हैं बनारस युनिवर्सिटी यूनियन की कैबिनेट तक के लिए आज तक कोई मुसलमान लड़का नहीं चुना गया है । मेजर पोष्टों को तो गोली मारो ।”<sup>३३</sup> इन जातिवाद के कारण जहाँ पर जिन जाति की संख्या कम होती है । उनको अन्याय सहन करना पड़ता है । जहाँ पर जिस जाति का ज्यादा प्रभुत्व वहाँ राजनीति भी उन्हीं की चलती है । आजकल धर्म के आधार पर राजनीतिक दल तैयार किये जाते हैं ।

‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में डॉ. राही ने इन जातिवाद के कारण मुसलमानों को हो रहे अन्याय का जिक्र किया है। राजनीति में मुसलमानों के साथ अछूत जैसा व्यवहार किया जाता है। मुसलमानों की कोई कीमत नहीं है, सिर्फ वोट लेने के लिए ही मुसलमानों को सहारा दिया जाता है, बाद में उनके साथ अन्याय किया जाता है। “राजनीति चाहे दाँएँ हाथ की हो चाहे बाँएँ हाथ की..... कोई मुसलमान को उसकी क्षेत्रीय पहचान देने को तैयार नहीं है। चुनाव के दिनों में चुनाव का नक्शा बनता है। उतरी बम्बई से इतने गुजराती, इतने मराठी, इतने सिन्धी, इतने पंजाबी, इतने तमिल और इतने मुसलमान।”<sup>३४</sup> चुनाव में जातियाँ बहुत अधिक सीमा तक राजनीतिक जीवन को प्रभावित करती हैं। इसका कारण है जातिय चेतना की अधिक प्रबलता। चुनाव के समय नेता अपने वोट प्राप्त करने के लिए अलग अलग जाति के लोगों को उनके इलाके के आधार पर प्रचार करते हैं। क्योंकि इस जाति के आधार पर ही वह चुनाव लड़ सकते हैं। राजनीति में इलेक्शन लड़ने के लिए जो उम्मीदवार खड़ा होता है, वह भी ऐसे आदमी को ही टिकट मिलता है, जो ज्यादातर उस इलाके की जाति का हो, क्योंकि इसी कारण उसे ज्यादा वोट मिल सकते हैं। “क्योंकि आज कचहरी में शहीद आलम यह बता रहे थे कि आप इलेक्शन लड़नेवाले हैं। और इलेक्शन है तो वोट माँगने हैं। टिकट किसी पार्टी का हो, वोट जाता-पाँत और मजहब ही के नाम पर माँगा जाता है। I am absolutely disgusted with our so-called, secular political parties.”<sup>३५</sup> डॉ. राही ने ऐसे जातिगत भेदभावों से ग्रस्त राजनीति और उसके कारण मुसलमानों के साथ हो रहे अन्याय पर भारतीय राजनीति पर करारा व्यंग्य किया है और साथ ही राजनीति में इस तरह के भेदभाव से उत्पन्न परिस्थितियों से समाज को जागृत भी किया है।

➤ न्याय व्यवस्था में राजनीति :

भारतीय संविधान में स्वातंत्र्य, समता, न्याय, बंधुता आदि महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का समावेश किया गया है। भारतीय जनतंत्र को मजबूत बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य यह तत्त्व करते हैं। आज भारतीय जनतांत्रिक व्यवस्था को इतने साल होने के बाद भी भारतीय आम जनता स्वतंत्र है, न भारतीयों में समता है, न भाईचारे की भावना है। आज न्याय व्यवस्था पर राजनीति का प्रभाव देखा जाता है। राजनीति ने न्याय व्यवस्था में अपनी जड़े मजबूत की है। इसलिए न्यायालय में अधिकांश फैसले राजनीति में प्रेरित रहते हैं। न्याय व्यवस्था निरापराध व्यक्तियों को सजा दिलवा रही है और गुनहगार बाइज्जत रिहा हो रहे हैं। वर्तमान न्यायधीश भीतरी रूप से किसी-न-किसी राजनीतिक दल से जुड़े हुए हैं। इसी कारण जज राजनेताओं को गुनहगार होने के बावजूद भी सजा नहीं दे पाते।

आज न्यायव्यवस्था भ्रष्टाचार का अड्डा बन गयी है। न्याय को आसानी से बेचा-खरीदा जा रहा है। सरकारी वकील आसानी से खरीदे जाते हैं। राजनीति का अपराधीकरण हो जाने के कारण अपराधियों को छुड़वाने के लिए राजनेता जजों पर दबाव डालते हैं। आज वकीलों ने वकीली को धंधा बना दिया है। वकील अपनी वकालत के माध्यम से अपने स्वार्थ और लोलुपता को पूरा करता है।

‘ओस की बूँद’ उपन्यास में शहला ऐसी नारी पात्र है, जो इन कानूनी राजनीति का शिकार बनी हुई है। शहला न्याय के लिए इधर-उधर भटकती रहती है। उसको न्याय तो नहीं मिलते, किन्तु उसका शोषण किया जाता है। शहला अपने केस के लिए वकील की तलाश करती है, किन्तु वकीलों में भी जातिवाद का भेदभाव दिखाई देता है। हिन्दू वकील और मुसलमान वकील आदि अपनी जाति के केस स्वीकारने के लिए तैयार हैं। हयतुल्लाह अंसारी मुसलमान वकील है और ठाकूर शिवनारायण हिन्दू है। दोनों में अपना स्वार्थ

भरा हुआ है। हयतुल्लाह अंसारी शहला का केस स्वीकारने से इन्कार करता है, क्योंकि उनको डर था कि कहीं दूसरे केस उनके हाथ से निकल न जाए। और ठाकुर शिवनारायण मुसलमान का केस हाथ में लेता है, इसके पीछे भी उसका स्वार्थ छिपा है। शहला वकीलों में भी इस जातिभेद के कारण द्विधा में फँसी हुई है। “क्या मुकदमे में भी हिन्दू – मुसलमान होने लगे हैं ? क्या अल्लाह मियाँ और भगवानने अदालतों को भी आपस में बाँट लिया है।”<sup>३६</sup> न्याय व्यवस्था में भी धार्मिक कट्टरता का जहर फैला हुआ है। शहला ठाकुर शिवनारायण को अपने केस के लिए वकील के रूप में तैयार करती है। किन्तु ठाकुर शिवनारायण शहला से प्रेम करने लगता है। अदालत में शहला अपने हक के लिए लड़ती है, किन्तु अदालत में न्याय की अपेक्षा में राजनीति के चंगुल में फँसे लोगों में यह अकेली रह जाती है। चुनाव के समय के कारण सबको केस से ज्यादा राजनीति और चुनाव में रस था, इस केस के साथ किसी को कोई संबंध नहीं था। “चुनाव सामने खड़ा यह तमाशा देख रहा था। राजनीति चुप थी। यह झगड़ा चुनाव के इतना करीब था। तो चुनाव हारने का रिश्क कौन लेता।”<sup>३७</sup> न्यायालयों में राजनीति के इस प्रभाव के कारण जनता में न्याय की अपेक्षा कम होती जाती है और न्यायतंत्र पर से विश्वास उठ जाता है।

आज की न्याय व्यवस्था पूंजीवादी न्याय व्यवस्था जैसी हैं। जो शोषक वर्ग के हित एवं उनके इशारों पर न्याय करती है। न्याय व्यवस्था असली अपराधी को दंड नहीं दे पाती और निर्दोष किन्तु कमजोर वर्ग के लोग को दंड करती है। वर्तमान न्याय व्यवस्था सबूत और गवाह पर टिकी हुई है और सबूत को नष्ट भी किया जाता है। गवाहों को आतंक और प्रलोभनों से तोड़ा जाता है। इस प्रकार निरपराधी व्यक्ति के विरुद्ध जालसाजी, षडयंत्र करके सबूत बटोरे जाते हैं। झूठी गवाही दिलाकर निर्दोष व्यक्ति को सजा दिलवाई जाती है। डॉ. राही ने इसी अराजकता का वर्णन ‘नीम का पेड़’

उपन्यास में किया हैं । इसमें राही ने न्यायतंत्र में होनेवाले भ्रष्टाचार एवं जमींदारों के इशारे पर नाचनेवाली कानूनी व्यवस्था को दिखाया है । जमींदारों की आमने सामने की लड़ाई में किस्सा अदालत तक पहुँच जाता है । वकील रायबहादुर चन्द्रिका प्रसाद और वकील अतहर हुसैन साहब – दोनों वकील आमने सामने गवाहों को तोड़ने की कोशिश करते हैं । अदालत में फैसला जामिन मियाँ के पक्ष में होता है, तब वकील अतहर हुसैन को फैसले से मनमें शंका होती है । उनके अनुसार “दाल में कुछ काला है मियाँ जामिन । सब जज ने बड़ा दोगला फैसला किया है । नम्बर एक यह कि बजरंगी ने कहा था कि उसने आपके इशारे पर चमटोली से रामबहादुर को कत्ल किया । अदालत ने यह बात मानी ही नहीं कि वह चमटोली में मारा गया था, तो फिर बजरंगिया का कन्फेशन ही बेमानी हो गया । और नम्बर दो यह कि सजा सिर्फ बजरंगी को क्यों हुई, ए. एफ. आई. आर. में तो वह सब हरामजादे नामजाद थे..... और मुझे लग रहा है कि इन्हीं बातों की बुनियाद पर चन्द्रिका प्रसाद अपील करेंगे । उधर आपने बुधई को भी लखनऊ भेज दिया है । आप यह क्यों भूलते हैं कि वह मियाँ मुस्लिम का आसामी है ।”<sup>३८</sup> अदालत के फैसले में कई तरह की राजनीति और दावपेच खेले जाते हैं । जमींदार अपनी जोहुकमी से अदालत के फैसले को बदलने में भी सक्षम है । वह अपनी सत्ता के बल पर नतीजे में परिवर्तन करवाते हैं । अतः अदालतों में उनके खिलाफ कोई भी कारवाही नहीं की जा सकती । अदालतों में जो भी निर्णय लिये जाते हैं, उनमें जज पर भी दबाव डाला जाता है । चाहे वह राजनैतिक हो या आर्थिक, किन्तु जज भी अपने फैसले न्याय के आधार न सुनाकर दबाव में आकर सुनाते हैं । “खान बहादुर हुसैन साहब ने जिरह में कोई कसर नहीं रखी । तरह-तरह के मुद्दे उठाए । लेकिन सब जज को तो सरकार का ही साथ देना था । आखिर उन्हें जिन्दगी भर सब जजी थोड़े ही करनी थी । लोगों का तो यहाँ तक मानना था कि बुधई की

गवाही भर की देर थी, उनका फैसला तो पहले से ही तय था ।”<sup>२६</sup> राजनीतिक दबाव के कारण अदालती फैसलों में न्याय का नहीं, किन्तु राजनीति के आधार पर निर्णय लिया जाता है, क्योंकि राजनीति और सरकार के कारण ही तो जजों की अपनी चलती हैं ।

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में न्यायालय में चल रहे भ्रष्टाचार के विरुद्ध डॉ. राही ने स्वयं अपना वक्तव्य दिया है । “मैं नहीं मानता कि अदालतों में कानून चलता है और कानून के आधार पर फैसले होते हैं । आई.पी.सी. वाले मुकदमे में चाहे कानून चल भी जाता है कि वहाँ झूठ या सच साबित किया जा सकता है । पर जिन मुकदमों में राजनीति या विचारधारा या उसूलों की बात आन पड़ी हो, उनमें कानून अन्धा-बहरा नहीं रह जाता । उसके चेहरे पर आँखे उग जाती है । दुनिया का कोई जज ऐसे मुकदमों में अपनी विचारधारा, अपने उसूल और अपनी राजनीति से दामन नहीं बचा सकता । जस्टिस सिंहाने जो फैसला दिया वह कानूनी फैसला नहीं था, राजनीतिक फैसला था ।”<sup>२७</sup> डॉ. राही ने राजनीति के कठपुतली पर नाचनेवाले न्यायालय पर व्यंग्य किया है । राजनीति के कारण वर्तमान न्याय व्यवस्था सड़ गयी है । यहाँ पर बिगड़ी हुई न्याय व्यवस्था को लेकर उपन्यासकार चिंतित है । वे वर्तमान न्याय व्यवस्था का असली चेहरा पाठकों के सामने लाना चाहते थे और प्रामाणिकता से उन्होंने अपना कर्म किया है । जब से न्यायलयों में राजनीति ने हस्तक्षेप किया है, तब से न्याय व्यवस्था बिगड़ गयी है । राजनेताओं के दबाव के कारण न पुलिस विभाग प्रामाणिक जाँच कर पाता है, न न्यायधीश प्रामाणिक न्याय दे पाता है । इन पर सदा राजनीति का दबाव बना रहता है । अगर न्याय व्यवस्था को सुधारना है, तो राजनीति को न्याय व्यवस्था से अलग रखना होगा, तभी यह संभव है ।

‘आधा गाँव’ उपन्यास में कोमिला के केस में जमींदारों की जोहुकमी चलती है । अदालत में राजनीति दिखाई देती है । वहाँ कलक्टर साहब अंग्रेज



थे और वकील डिप्टी सय्यद अली हादी – दोनों के खास संबंध थे, इसलिए जज द्वारा दिया गया आदेश भी उनके इशारे पर दिया जाता है। “कोमिला की फाँसी की सजा कलक्टर साहब बहादुर ने नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी गिरधारीलाल श्रीवास्तव जज ने दी थी और फिर हाइकोर्ट के जस्टिस खन्ना ने दी थी। मगर राज्य अंग्रेज का था। कलक्टर अंग्रेज था, इसलिए श्रीवास्तव साहब या खन्ना साहब की भला क्या हिम्मत हो सकती थी कि गोरे साहब से पूछे बिना डिप्टी सय्यद अली हादी जैदी बी.ए.एल.एल.बी. के किसी आसामी को फाँसी की ऐसी सजा देते, जो प्रीवी कौंसिल से भी बहाल रहती।”<sup>४९</sup>

आजकल इस तरह के मुकदमे चलते रहते हैं। न्यायालय में आज लोगों को सच्चा न्याय मिलना मुश्किल सा बन गया है, क्योंकि कोमिला जैसे व्यक्ति को राजनीति का शिकार बनाकर उनको किसी भी तरह कानूनी फँदे में फसाया जाता है और फैसला देने में गवाहों पर नहीं, अपितु पैसा और रिश्तों को ध्यान में रखा जाता है। कभी-कभी किसी अफसर या अधिकारियों के दबाव पर जज न्याय देते हैं। इसी संदर्भ में आधा गाँव उपन्यास में जस्टिस खन्ना और गिरधारीलाल श्रीवास्तव दोनों जज कलक्टर साहब के इशारे पर अपना फैसला सुनाते हैं। इस तरह न्यायालय में हो रहे भ्रष्टाचार की प्रवृत्तियाँ डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत की हैं। आज मनुष्य को न्याय पर भरोसा नहीं है, क्योंकि आजकल न्यायालय में न्याय भी बिकता है और न्याय देनेवाले भी। इसलिए आम जनता के लिए सच्चा न्याय मिलना मुश्किल बन गया है। न्याय पैसों के बल पर खरीदा जाता है, इसलिए यहाँ पर डॉ. राही ने इसी समस्या पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

### ➤ राजनीति और प्रशासन व्यवस्था :

वर्तमान शासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए पुलिस की आवश्यकता होती है। पुलिस का सीधा संबंध जनता से होता है। पुलिस का

प्रमुख कार्य राज्य में शांति और सुव्यवस्था निर्माण करना है । सामान्य जनता का मित्र बनकर उनकी रक्षा करना पुलिस का प्रथम कर्तव्य है । पर आज हम देखते हैं कि पुलिस राजनेताओं, व्यापारियों, गुंडों, जमींदारों की अधिक रक्षा करते हैं । आज जनता का पुलिस पर विश्वास नहीं रहा है । जब रक्षक ही भक्षक बन जाय तो विश्वास किस पर किया जाए । आम जनता की रक्षा करनेवाली पुलिस ही जनता का शोषण कर रही है । पुलिस विभाग को भ्रष्टाचार का गढ़ माना जाता है । पुलिस स्वयं अनपराधियों से मिली हुई है । व्यक्ति यदि किसी प्रकार के नुकसान की रिपोर्ट थानों में कराने जाता है, तो पुलिस उसे ही मुजरिम मानकर उस पर अनेक अत्याचार करती है । आज सामान्य जनता का पुलिस पर से भरोसा उठ गया है । आज पुलिस भ्रष्टाचार के माध्यम से लाखों रुपयां कमा रही है ।

‘आधा गाँव’ उपन्यास में डॉ. राही ने ऐसे पुलिस कर्मचाचारियों का पर्दाफाश किया है । गंगोली गाँव के ठाकुर हरनारायण युद्ध के दिनों में गाँव के लोगों के पास से चंदा इकट्ठा करता है । वहाँ दारोगा हरनारायण चंदे की रकम हड़प जाता है । वह गोबरधन से चंदा लेता है और रसिद सिर्फ हजार रूपये की देता है । फिर भी गोबरधन मन ही मन खुश है, क्योंकि उनके लिए चंदे का महत्त्व नहीं है, किन्तु जो भी कुछ काले धन्धे की कमाई है, वह छुप जायेगी । दारोगा ने तय किया था कि “वार फंड के लिए बीस हजार और अपने फंड के लिए तीस हजार जमा करेंगे । गोबरधन की रकम से उनके तीस हजार पूरे हो रहे थे और वार फंड भी अठारह हजार तक पहुँच रहा था ।”<sup>४२</sup> जिससे दारोगा हरनारायण वार फंड में से आयी रकम में से कुछ रुपये अपनी जेब में भर लेता है और उसमें से कुछ ही रकम वह तहसील में जमा करवाता है । वार फंड के लिए इकट्ठे किये गये चंदे से ज्यादा रुपये वह अपनी जेब भरने के लिए ले लेता है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व एवं पश्चात् सरकारी कर्मचारियों एवं विशेषकर पुलिस विभाग के अवैधानिक कार्यों के विरोध में जनता संगठित प्रदर्शन एवं विद्रोह आदि करते हुए पायी जाती है । भ्रष्टाचार का उदाहरण ठाकुर हरनारायण प्रसाद है । गाँव के लोग भी पुलिस को कुछ रुपये देकर बात को खत्म करने की कोशिश करते हैं । फुन्नन मियाँ थानेदार को तीन सो रुपये देकर अपना काम करवाना चाहता है । ठाकुर हरनारायण प्रसाद के अत्यधिक भ्रष्टाचार एवं ब्रिटिश प्रशासन के कार्य संबंधी अवैधानिक कार्यों से वहाँ की जनता थानेदार एवं सिपाहियों को वृक्ष से बाँधकर जला देती है । थानेदार और ठाकुर हरनारायण प्रसाद को लेने के लिए आयी भीड़ में कम से कम दो हजार आदमी रहे होंगे । उनमें ऐसे लोग नहीं थे, जिन्हें आजादी का अर्थ मालूम हो, ये लोग वह थे जिनसे ज्यादा लगान लिया गया था । फुन्नन इस तरह के दारोगा द्वारा हो रहे भ्रष्टाचार का विरोध भी करता है । “अभई तक न ता दिया है । बाकी कहिए त देवे लगे । का कही कानून में ईहू लिखा है कि कांग्रेसवालेन को कोई चंदा न दे ? का तूँ डुग्गी पीटे रहिये ?”<sup>४३</sup> इस कथन के आधार पर हम कह सकते हैं कि थानेदार का वहाँ की जनता के साथ व्यवहार प्रेरणाप्रद, उत्साहजनक अथवा उदार नहीं था, बल्कि वह संपूर्ण वर्ग प्रशासन एवं परंपरागत धन संपन्न वर्ग की सुरक्षा का साधन मात्र था एवं उसकी आड़ में अपने आत्महित में रत था । स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत ग्रामीण जनता में जनतांत्रिक पद्धति के आविर्भाव से जनता अपनी शक्ति को समझने लगी है तथा ग्रामीण जनता का सुशिक्षित वर्ग प्रशासन में भ्रष्टाचारी सेवकों का विरोध करने लगा है । इसीलिए सरकारी सेवकगण भी अब उनसे भयभीत रहने लगे हैं । वैयक्तिक स्वार्थ एवं हित की सिद्धि के कारण ग्रामीण जनता के अशिक्षित वर्ग में भी अपेक्षाकृत अधिक निपुणता के साथ भ्रष्टाचारपूर्ण व्यवहार परिलक्षित होता है ।

डॉ. राही के पुलिस विभाग में व्याप्त प्रखर जातिवाद तथा घोर सांप्रदायिकता का उदाहरण 'असंतोष के दिन' उपन्यास में मिलता है । धर्माधिकारी पुलिस के व्यवहार से क्षुब्ध है । पुलिस द्वारा सांप्रदायिक दंगों में मुसलमानों पर अत्याचार किया जाता है । पुलिस सांप्रदायिक दंगों का फायदा उठाती है और राजनीति में इस बात की हवा देती है । अपनी बात को बताते हुए पुलिसवाला कहता है कि..... “अरे भैया यू.पी. में भी पुलिस मुसलमानों को ही मारती है । यहाँ पुलिस में मराटे ज्यादा है । जो कर्णाटक महाराष्ट्र की सीमा पर, कर्णाटक के ब्राह्मणों और मराठों में लड़ाई होगी तो वह कर्णाटक के ब्राह्मणों को भी मारेगी । उत्तरप्रदेश की पी.ए.सी. में कान्यकुब्ज ब्राह्मण ज्यादा है, तो वह ठाकुरों, हरिजनों और मुसलमानों को मारती है । पुलिस में भी हमी-तमी होते हैं ना । हम अपने मुहल्लों, अपने गाँवों, अपने कस्बों के सारे डर, वहाँ की सारी नफरते, सारे तनाव लेकर पुलिस क्वार्टर्स जाते हैं । पुलिस में मुसलमान ज्यादा होंगे तो पुलिस हिन्दुओं को मारेगी ।”<sup>४४</sup> सांप्रदायिकता हमारी राजनीति का मोहरा है । जिसे राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं और आपस में सौहार्द और समझदारी स्थापित करने की बनावटी कोशिश करते हैं । पुलिस का इस तरह का एटीट्यूड लोगों के मन में भय और शंका पैदा करता है और इसी भय और शंका के कारण शासन व्यवस्था पर से लोगों का विश्वास उठ जाता है परिणाम स्वरूप लोगों को पुलिस से ज्यादा गुंडे, आवारा तत्त्वों आदि पर ज्यादा विश्वास होता है, क्योंकि लोगों के मन में पुलिस के लिए जो सोच है, वही उनके लिए घातक बनती है । पुलिस प्रशासन द्वारा हो रही इस तरह की असामाजिक प्रवृत्तियों से समाज में सभ्य लोगों के लिए रहना मुश्किल सा बन जाता है ।

पुलिस सरकार से ज्यादा जमींदारों की रखवाली करती है, क्योंकि उन जमींदारों से ही पुलिस को रुपये मिलते हैं । दारोगा जिलेदारसिंह की खातिर

करने के लिए जमींदारों के यहाँ जलसे होते हैं । दारोगा का जमींदारों के यहाँ खाना-पीना होता है और वह ऐश करता है । दारोगा जिलेदारसिंह बजरंगी को छुड़ाने के लिए बाबुराम को फँसाता हैं, क्योंकि दारोगा जमींदारों का गुलाम होने के नाते वही करेगा जो जमींदार लोग चाहते हैं । “जिलेदारसिंह इस निष्कर्ष पर पहुँच गए कि बजरंगी को तो झूठ-मूठ फँसाया जा रहा है । असली हत्यारा तो बाबूराम है । बाबूराम को पेड़ से उल्टा लटकाकर उसकी पिटाई शुरू हुई । आखिर जिलेदारसिंह थानेदार को जमींदार साहब की खूशबूदार खाने की कदर जो रखनी थी .....”<sup>४५</sup> पुलिस अक्सर धनवानों के पक्ष में होती रहती है, क्योंकि उनको घूस मिलती है । पुलिस व्यवस्था में बढ़ते जाते भ्रष्टाचार को लेकर आज पुलिस प्रशासन व्यवस्था खोखली हो गई हैं । जिससे जनता का विश्वास उठ गया है । पुलिस की इस तरह की नीति से समाज में उत्पन्न परिस्थितियाँ एवं विडंबनाओं को दर्शाया गया है ।

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में अशफाकुल्लाह-खाँ जोनपुर जिला के रहनेवाले हैं । उनके खानदान से थानेदारी की परंपरा चल आ रही थी । अशफाकुल्लाह-खाँ अपने दादा केकिस्से यू सुनाते जैसे वह वहाँ मौजूद रहे हो । जैसे “बनारस के महाजन अपने नाम से काँपते थे और हर महीने की पहली को अपने हिस्से का नज़ाना खाँ साहब के घर पहुँच जाया करते थे और उन्हीं पैसे से खाँ साहब ने चहार सू वाली जमीन लेकर दुकाने बनवायी जिनका किराया आज तक अशफाकुल्लाह-खाँ खा रहे थे ।”<sup>४६</sup> अशफाकुल्लाह-खाँ ने एक मंत्री को खुश करने के लिए डकैती का मुकदमा ठोक दिया । गवाह भी झूठे खडे किये गये और आरोप एक अस्सी साल के बूढ़े पर लगाया गया । अशफाकुल्लाह अपनी ठाठ जमाने के लिए ऐसे दावपेच खेलता रहता है । पुलिस की अनुशासनता के कारण निर्दोष लोग उनके शिकार होते हैं । वह अपना पाँव जमाने के लिए दूसरों को मारने में भी नहीं हिचकिचाते । कलकते में कवि संमेलन में राजाराम गया था । वहाँ नकसलीयों ने हमला

किया, जिससे पुलिस और नक्सलवादी आमने सामने आ गये, जिसमें राजाराम फँस जाता है। पुलिस द्वारा राजाराम को नक्सलवादी बताते हुए गोली से उड़ा दिया जाता है और बाद में अखबारों में खबर आती है कि राजाराम नक्सलवादी मारा गया। पुलिस का कार्य तत्कालिन सरकार को खुश रखना है। क्योंकि ऐसा करने पर उनको प्रमोशन मिल सकता है। सब एक दूसरे से बाजी मारने में हैं। बेहारीलाल गुप्ता आई.पी.एफ. है। वह राजनीति में यु.पी. सरकार के माध्यम से अन्य सीनियर आफिसरो को काटकर डी.आर.जी. बनने के लिए चक्कर चलाता है। सब राजनीति के दबाव के नीचे है क्योंकि उनको डर लगता है कि कौन किसका रिश्तेदार निकल जाये। पुलिस विभाग में भी आपस में राजनीति के दावपेच खेले जाते हैं।

पुलिस द्वारा निर्दोष व्यक्ति को परेशान करने की वृत्ति डॉ. राही ने व्यक्त की है। पुलिस देशराज को गिरफ्तार करके ले जाती है। वहाँ देशराज पर अत्याचार करती है। उन्हें मार-मार हड्डियाँ तोड़ डालते हैं, वह समझाता है “बता दोगे तो और तकलीफ नहीं होगी। नहीं बताओगे तो बदन की एक-एक हड्डी का सुर्मा बना दूँगा।”<sup>४९</sup> पुलिस देशराज को उल्टा लटका देती है। देशराज की इस तरह की दुर्दशा से सब हँस रहे थे, किन्तु उसकी सुननेवाला कोई नहीं है। पुलिस उस पर बिना गुनाह किये अत्याचार करती जाती है। डॉ. राही ने ऐसे अमानवीय अत्याचार और उसमें फँसी जनता की दयनीय स्थिति को प्रस्तुत किया है।

### ➤ शिक्षा व्यवस्था में राजनीति :

देश के विकास में शिक्षा का अनन्य एवं असाधारण स्थान है। किसी भी देश का विकास वहाँ के शिक्षा स्तर पर निर्भर करता है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य युवाओं का सर्वांग विकास करके आदर्श भारतीय नागरिक निर्माण करना है। इसलिए शिक्षा स्तर ऊँचा होना चाहिए। जिस देश में अच्छी

शिक्षा दी जाती है उस देश में स्वस्थ और आदर्श युवकों का निर्माण होता है । शिक्षा व्यवसाय में युवकों का अपने उद्देश्यपूर्ति के लिए और प्रामाणिकता से कार्य करने के लिए शिक्षा व्यवस्था को राजनीति से अलग रखना चाहिए क्योंकि आज राजनीति इतनी गंदी हो गयी है कि जो भी व्यवस्था राजनीति से जुड़ जाती है, वह गंदी होने से नहीं बच सकती ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भी अनेक शिक्षा संस्थाएँ निर्माण की गयी । लेकिन वर्तमान शिक्षा संस्था का एकमात्र उद्देश्य धन कमाना है । वर्तमान शासन व्यवस्था ने शिक्षण संस्थाओं को राजनेताओं के हाथ में सौंप दी है । सत्ताधारी दल अपने असंतुष्ट राजनेताओं को संतुष्ट करने के लिए संस्था खैरात में बाँट रहे हैं । आज शिक्षा संस्थाएँ राजनीति के अड्डे बन गयी हैं । शिक्षण में प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा में भ्रष्टाचार और राजनीति फैली हुई है । सब नेता अपने राजनीति के दावपेच में शिक्षा संस्थान को मोहरा बनाते हैं ।

‘ओस की बूँद’ उपन्यास में गाँव में बच्चों को पढ़ाने के लिए स्कूल खोला जाता है । लेकिन वहाँ गरीब और अमीर बच्चों में भेदभाव रखा जाता है । अमीर के बच्चों पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है । “गाँव में स्कूल खोला इसलिए गया था कि मुसलमान लड़के पढ़ सकें किन्तु मास्टर लोग गर्मियों की छुट्टियों में चंदा जमा करने के लिए निकल जाया करते थे । स्कूल में नजीर गड्डीवाला के लड़के का नंबर काटकर कोतवाल साहब के बेटे को एक नंबर से पास किया जाता है । स्कूल में गरीबों के लड़के के लिए कोई स्थान नहीं था, पढ़ाई सिर्फ अमीरों के लिए ही थी ।”<sup>४८</sup> स्कूल के कमेटी के आदमी भी राजनीति में फँसे हुए होते हैं । वह अपना उल्लू ठीक करने के लिए मनमानी करते हैं ।

यहाँ पर राजनीति के साथ जुड़ी संस्थाओं का जिक्र किया है, जो अपने स्वार्थ के लिए स्कूल में राजनीति लाने की कोशिश करते हैं । इसमें स्कूल की

वर्किंग कमेटी के प्रेसिडेंट श्री हयातुल्लाह अंसारी जो स्कूल का नाम 'मुस्लिम ऐंग्लो वर्नाक्युलर हाईस्कूल' से बदलकर 'मुस्लिम ऐंग्लो हिन्दुस्तानी हायर सेकन्ड्री स्कूल' रखना चाहते हैं । जिसके कारण कमेटी के अन्य मेम्बर श्री बजीर हसन इसका विरोध करता है । किन्तु हयातुल्लाह अंसारी को स्कूल के साथ कम और राजनीति के साथ ज्यादा संबंध होने के कारण वह राजनीति के माध्यम से हाईस्कूल में हायर सेकन्ड्री करने की कोशिश करते हैं । इस चर्चा के संदर्भ में हयातुल्लाह अंसारी अपनी बात को इस तरह बताते हैं । “आप लोग भी कमाल करते हैं । कांग्रेस सरकार को चूतियाँ बनाने का यही मौका है । बलवो में इतने मुसलमान मारे जा रहे हैं कि बलवों के बाद सरकार मुसलमानों को फुसलाना शुरू करेगी । ओही लपेट में इस्कूलों हायर सेकेंड्री हो जड़ है ।”<sup>४६</sup> स्कूल में दो दल खड़े हो जाते हैं, दोनों ही दल एक दूसरे को निचा दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं । स्कूल में मास्टर्स की तनख्वाहों की बात में जातिगत भेदभावों को ध्यान में रखा जाता है । मास्टर्स की तनख्वाह नहीं बढ़ाई जाती, किन्तु गोबरधन चपरासी की तनख्वाह बढ़ा दी जाती है, क्योंकि वह हिन्दू है । यहाँ पर स्कूल से ज्यादा राजनीति के बारे में चर्चा की जाती है । “अब ई इस्कूल नहीं रह गया है । ई कोठा है जेपर हमलोगन की गैरत रडियन की तरह बैठके पेशा कर रही है ।”<sup>४७</sup> जिससे स्कूल में हो रही विसंगतियाँ और उसके परिणामों पर विचार किया गया है । जिससे पता चलता है कि स्कूलों में आजकल शिक्षा गौण स्थान पर रह जाती है और राजनीति मुख्य स्थान पर आ जाती है । नेतायें इन स्कूलों जैसी शैक्षिक संस्थाओं के माध्यम से अपना स्वार्थ सिद्ध करने की कोशिश करते रहते हैं । यहाँ पर स्कूलों में हो रही राजनैतिक गड़बड़ का जिक्र किया गया है ।

वर्तमान शासन व्यवस्था में अध्ययनशील और इमानदार युवकों को नौकरी के लिए भटकना पड़ता है । आजकल नौकरी ऐसे व्यक्तियों को ही मिलती है, जिसका रिश्तेदार बड़ा अफसर या नेता हो । धनवान युवकों को नौकरी प्राप्त



करना आसान सा हो जाता है । विश्वविद्यालयों में नौकरी उनको मिल रही है, जो विभागाध्यक्षों के संबंधित होते हैं । ‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में विश्वविद्यालयों में हो रहे राजनैतिक दावपेच एवं हो रहे अन्यायों का जिक्र किया गया है । टोपी और सकीना को लेकर युनिवर्सिटी में हंगामा हो जाता है, जिस कारण उसे राजनैतिक हवा देकर टोपी को रीडर के पद से हटाने के लिए प्रयत्न किये जाते हैं और डॉक्टर सुहेल कादरी का नाम लिया जाता है । इस पद के लिए अनवर मुजतबा जैदी साहब और रामविलास ‘बेखटक’ के बीच स्पर्धा रहती है । यहाँ पर जैदी साहब को पसंद किया जाता है । इस संदर्भ में लिखा है कि “अनवर मुजतबा जैदी साहब ‘बेखटकजी’ से जुनियर थे । बेखटकजी का थीसिस सबमिट हो चुका था और जैदी साहब का थीसिस चोरी हो गया था । परंतु उनका कहना था कि अलीगढ़ युनिवर्सिटी चूंकि इकलौती मुसलिम युनिवर्सिटी है । इसलिए जैदी साहब का हक साबित है । सारे हिन्दुस्तान की नौकरियाँ हिन्दुओं के लिए है तो क्या एक मुसलिम युनिवर्सिटी भी मुसलमानों की नहीं हो सकती ?”<sup>५१</sup> इसमें भाई भतीजावाद की चर्चा की गयी है । शिक्षा संस्थाओं में भाई-भतीजावाद तेज गति से पनप रहा है । शिक्षा संस्थाओं में प्रबंध समिति के रिश्तेदारों को ही नौकरियाँ दी जाती है । जब तक रिश्तेदार पद की काबिलियत प्राप्त नहीं करता, तब तक पद रिक्त रखने का भी एक षडयंत्र रचा जाता है । वह पद एक-एक साल के लिए भरा जाता है । आज कल युनिवर्सिटियों में पढ़े लिखे होने पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता । नौकरी में उम्मीदवार को पसंद करने के लिए जो कमिटी रची जाती है, वह भी खरीदी जाती है । उनके लिए पैसा ही जरूरी है नहीं कि शिक्षा । नौकरी में भ्रष्टाचार का दबदबा रहता है । “नौकरी बड़ी कातिल चीज है । बाहर से जो एक्सपर्ट आते हैं उन्हें अपने भत्ते और अगली ट्रेन पकड़ने की जल्दी होती है । चुनाव हेड ओफ़ दी डिपार्टमेंट ही करता है और उनकी अपनी पसंद और नापसंद होती है । वह उसी को लेता है जिसे वह

पसंद करता है । और कभी-कभी तो वह यह भी नहीं कर पाता क्योंकि उस पर हजार तरह के दबाव पड़ते हैं ।”<sup>५२</sup> इप्फन इतिहास का प्राध्यापक है । वह एक कोलेज में तीन सालों से इतिहास पढ़ाता है । वह प्रामाणिक और विद्वान अध्यापक है । जब प्रबंध समिति के सचिव के लड़के ने एम.ए. कर लिया । उसके लिए एक इतिहास की जगह की आवश्यकता थी, तो शहर में हिन्दी समाचार पत्रों में यह लिखा गया कि इप्फन मुस्लिम लीगी है । अतः इप्फन को नौकरी से हटाया गया और सचिव के बेटे को इतिहास का प्राध्यापक नियुक्त किया गया ।

वर्तमानकाल में जिस गति से शिक्षा का निजीकरण हुआ, उसी गति से अध्यापकों का शोषण भी आरंभ हो गया । कभी-कभी अध्यापकों का इतना शोषण किया जाता है कि वे आत्महत्या करने के लिए विवश हो जाते हैं । डॉ. राही ने समाज की इस राजनैतिक विवशता को प्रस्तुत किया है । वे इस त्रासदी के माध्यम से समाज की वास्तविकता और शिक्षण संस्था में राजनीति के प्रवेश के कारण आयी अराजकता को प्रस्तुत करते हैं ।

### ➤ अवसरवादिता :

सत्ता लोलुपता शासक को अवसरवादी बना देती है । वह सत्ता को बनाये रखने के लिए साम, दाम, दंड, भेद इत्यादि अनेक चाले चलता है । मान, प्रतिष्ठा, स्वाभिमान एवं राष्ट्र गौरव को ताक पर समयानुसार शासक गिरगिक की तरह रंग बदलने लगता है । अवसरवादी नेता राष्ट्र और जनता के हित का ध्यान नहीं रखते । यह सिर्फ इस बात का ही ध्यान रखता है कि उनकी सत्ता को नुकसान न पहुँचे ।

वर्तमान राजनीति में राजनेताओं का प्रमुख उद्देश्य टिकट प्राप्त करना ही होता है । टिकट न मिलने के कारण वह बोखला जाता है और अन्य दलों से टिकट प्राप्ति का प्रयास करता है, या निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनावों

में खड़ा रहता है । राजनेताओं की प्रबल इच्छा के कारण ही दलबदलु या अवसरवादी प्रवृत्ति बढ़ रही है । डॉ. राही ने अपनी दूरदृष्टि एवं चिंतन-मनन द्वारा राजनीति की इस परिस्थिति को अपने उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त किया है । आज के युग में स्वार्थ की राजनीति जितनी प्रखर है, उतनी भारत में कभी नहीं थी । सभी को कुर्सी की चाह है । चाहे वह किसी भी ढंग से प्राप्त क्यों न हो । आजकल राजनीति दल सिद्धांतों के आधार पर नहीं, बल्कि व्यक्तिगत महत्त्वकांक्षा के आधार पर बनते बिगड़ते रहते हैं ।

‘सीन ७५’ उपन्यास में डॉ. राही ने राजनीतिक संवेदना प्रस्तुत की है । राजनीति व्यावसायिक दृष्टिकोण से लाभदायी सिद्ध होने लगी है । व्यापारी वर्ग अपने आर्थिक फायदे के लिए गिरगिट की तरह रंग बदलते हैं । वे सोचते हैं कि किस दल या पार्टी के साथ जाने में हमें अधिक से अधिक फायदा है । लालाजी इस प्रकार की चाल चलते हैं । आजादी की जंग के दौरान लालाजी ने बड़ा पैसा बनाया, लेकिन जब उनको पता चला कि अब भारत आजाद हो जायेगा तब उन्होंने अंग्रेजों के साथ अपना व्यवहार तोड़ दिया । इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व भी राजनीति में अवसरवादी प्रवृत्ति थी । ठाकुर रघुनाथसिंह के व्यक्तित्व से डॉ. राही ने यह बात स्पष्ट की है । नेतागण अवसरों का लाभ लेना अच्छी तरह जानते हैं । ‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में डॉ. राही ने अवसरवादी प्रवृत्ति के नेता को भलीभाँति चित्रित किया है । इसमें डॉ. भृगुनारायण जो धार्मिक आदमी हैं, फिर भी उनको चुनाव लड़ने का शौक था, इसलिए वे बार-बार चुनाव लड़ते हैं और हारते हैं । “पहले कांग्रेस के टिकट पर लड़े । हार गए । आजाद लड़े । हार गए । जनसंघ के टिकट पर लड़े । हार गए । पार्लामेंट से म्युनिसिपैलिटी तक का चुनाव लड़े और हारे । ऐसे हारनेवाले कहाँ मिलते हैं ।”<sup>५३</sup> टोपी शुक्ला के भाई भैरवनारायण को कांग्रेसी बनने का शौक था, क्योंकि इस पेशे में ऊपर की आमदनी अधिक रहती है, उनके मतानुसार मुख्यमंत्री बन जाने से ढेर सारे रुपये मिलते हैं ।

वह सुनता था कि फुर्ला प्रान्त का मुख्यमंत्री तो मुख्यमंत्री होने से पहले बस कंडक्टर था और अब देश के हर बड़े नगर में उसकी कोठियाँ हैं। वह अपनी माँ से बार-बार कहता है कि “हम तो मुख्यमंत्री बनेंगे। इस पर माँ का उत्तर है – प्रभु की लीला अपरम्पार है। अवश्य बनोगे।”<sup>५४</sup>

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में बाबू गौरीशंकर पाण्डेय ऐसा ही दलबदल राजनेता है, जो कांग्रेस की टिकट पर चुनाव लड़ता है। बाद में जब कांग्रेस में अपना दल न बना सके और अन्य किसी दल ने उन्हें स्वीकार नहीं किया, तो गौरीशंकर जैसे राजनेता का मुख्य उद्देश्य टिकट प्राप्ति ही होता है। “बाबू गौरीशंकर पहला और दूसरा चुनाव कांग्रेस के टिकट पर जीते। फिर जब चरणसिंह कांग्रेस से अलग हुए तो वह भी अलग हो गये। और जब चरणसिंह की सरकार टूटी तो वह फिर कांग्रेस में लौट आये।”<sup>५५</sup> वर्तमान राजनीति में ऐसे दलबदल राजनेताओं की एक जमात ही निर्माण हो गयी है। आज दल बदलने की प्रवृत्ति नेताओं का गुण माना जाता है। यह अवसरवादी राजनेता पद या सत्ता प्राप्त करने के लिए नयी पार्टी का गठन करते हैं। बाबू गौरीशंकर पाण्डेय जैसे अवसरवादी राजनेता भी जब कटरा मीर बुलाकी के रास्ते का नाम बदलने की बात आती है, तब लोग महात्मा गांधी मार्ग या नेहरू रोड़ की सोच रहे हैं, तब वह इस राजनीति का लाभ उठाकर अपने पिता पण्डित शिवशंकर पाण्डेय के नाम का सुझाव देता है। वह नायब तहसीलदार थे, किन्तु भ्रष्टाचार करके अपना पक्का मकान भी बनवा लेते हैं और फिर भी वे देशभक्त कहे जाने लगे और जिला कांग्रेस कमेटी ने प्रस्ताव पास किया कि “स्वर्गीय पण्डितजी की गीनती देशभक्तों में होनी चाहिए और उनके नाम का डाक टिकट निकलना चाहिए। टिकट निकल गया और जब नाम का टिकट निकल गया तो एक सुसरी सड़क की क्या हैसियत!”<sup>५६</sup> आज के राजनेता अवसरवादी बन गये हैं। इन अवसरवादी नेताओं को जब भी अवसर मिलता है, उसका पूरा लाभ उठाते हैं।

आज की राजनीति में दलबदलता का जबरदस्त रोग लग गया है । कोई भी राजनैतिक व्यक्ति हो, वह अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए कभी-भी अपना दल बदलता रहता है । वह किसी भी दल में चला जाता है । वास्तव में दल के प्रति किसी भी राजनेता की निष्ठा नहीं दिखाई देती । नैतिकता और अनैतिकता का उनसे कोई दूर का भी रिस्ता नहीं है । ‘दिल एक सादा कागज’ उपन्यास में नारायणगंज में चुनाव आने पर मक्खनलाल ठाकुर साहब के खास आदमी है, किन्तु चुनाव में ठाकुर साहब बाबू चिरोंजी से चुनाव लड़वाना चाहते हैं । अतः मक्खनलाल ठाकुर साहब के दल से अलग हो जाते हैं । मक्खनलाल अवसरवादी वृत्ति का आदमी है । वह अपने भाँजे की शादी जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष की बेटी से करवाता है और इसका लाभ उठाकर वह कांग्रेस में चले जाने की कोशिश करता है । “मक्खनलाल कई बार यह कहते सुना जा रहे थे कि, यदि अपनी प्यारी जनता की खिदमत के लिए मुझे फुलोर क्रास करके कांग्रेस में भी जाना पड़े तो मैं तुरन्त चला जाऊँगा यह ठाकुर साहब के लिए खुली चुनौती थी कि जो करना हो कर लो, हम तो कांग्रेस के टिकट पर एम. पी. होने जा रहे हैं ।”<sup>५७</sup> आज भारतीय राजनीति में इतने दल हो गये हैं कि दुनिया के किसी भी लोकतांत्रिक देश में इतने दल नहीं हैं । इस तरह की दल बदलने की परंपरा सामान्य बन गयी है । इसलिए नेता जब चाहे अपना दल बदल लेता है । राजनीति में ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो अपने दल को लेकर डटे रहते हैं । ‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में ओमकारनाथ महरोत्रा ऐसे नेता हैं, जो अपना पक्ष नहीं छोड़ते, किन्तु जब कांग्रेस से चुनाव लड़ते हैं, तब उनको हार का सामना करना पड़ता है और जमानत भी जप्त हो जाती है । इसी डर के कारण राजनेता दल को बदलते रहते हैं । उनके लिए किसी दल का महत्त्व नहीं है । उनके लिए अपनी जीत का महत्त्व है । किन्तु विष्णुजी जैसे लोग जो कांग्रेस के दल से निकलकर कांग्रेस (आई) में जम जाते हैं । और उनकी तरक्की होने लगती

है । कारोबार ने दिन दूनी, रात चौगुनी तरक्की की । जब चाहे मुख्यमंत्री से मिल सकता है ।

वर्तमान भारतीय राजनीति को सही ढंग से चलाने के लिए और लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए 'दलबदल' का रोग कम करने की आवश्यकता है । यह भारतीय जनतंत्र को लगी हुई खतरनाक बीमारी है । इस दलबदलुता और असंख्य दलों के कारण जनतंत्र का भविष्य खतरे में पड़ गया है । दलबदल के कारण लोकतंत्र कमजोर हो गया है । डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में राजनीति में फैली हुई इस दूर्दशा को व्यक्त किया है । राजनीति में इस विभिषिका के कारण आजकल नेताओं में भी स्वार्थ, भ्रष्टाचार, धनलोलुपता आदि बढ़ते जाते हैं । डॉ. राही ने राजनीति की इसी विडंबना को व्यक्त करके अपनी लेखनी चलाई है ।

### ➤ राजनीति में चुनाव प्रणाली :

भारत देश स्वतंत्र होने पर भारतीय नेताओं ने देश के प्रशासन के लिए लोकतान्त्रिक पद्धति का चयन किया । लोकतन्त्र में चुनाव का महत्त्व सर्वोपरी है । चुनाव प्रणाली जनतंत्र का प्रमुख हथियार है, जिसके द्वारा जनता अपने अधिकारों का प्रयोग करती है । जनमत का महत्त्व इतना अधिक होता है कि बिना इसे प्राप्त किये कोई भी नेता सत्ता पर नहीं बैठ सकता । जनता देश के विकास के लिए और अपनी रक्षा के लिए प्रतिनिधि का चुनाव करती है । परन्तु आज की राजनीति में चुनाव प्रक्रिया धन, शक्ति प्रदर्शन, जातिवाद एवं बर्बरता पर आधारित हो गयी है । हर पार्टी मत हाँसिल करने के लिए साम, दाम, दंड, भेद का उपयोग करती है । आज चुनाव के नाम पर मूल्य विघटन स्वार्थ सिद्धि एवं अवसरवादिता ने हमारे जन जीवन को बुरी तरह से प्रभावित किया है । परिणाम स्वरूप चुनावी राजनीति हमारे लिए अभिशाप बन गयी है । वोट के लिए जनता को गुमराह किया जाता है । दंगे-फसाद, जातिवाद,

सांप्रदायिकता भडकाना सब आम बात हो गई है। 'ओस की बूंद' उपन्यास में म्यूनिसिपैलिटी के चुनाव में दीनदयाल और श्री हयातुल्लाह अंसारी कांग्रेस की टिकट के लिए आमने सामने हैं, किन्तु कांग्रेस का टिकट श्री हयातुल्लाह अंसारी को मिलता है। दोनों नेता एक दूसरे को हराने के लिए दाँव-पेच खेलते हैं। दीनदयाल ने आजतक किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया था, वह आज वोटों के लिए जनता के सामने भीख माँगता है। जिससे मनुष्य जीवन में तनाव फैल जाता है। इसी कारण वजीर हसन और हयातुल्लाह अंसारी दोनों दोस्तों के बीच दरार उत्पन्न हो जाती है। हयातुल्लाह अंसारी बताता है कि "तोरा मतलब का है कि मुसलमान के मारे हम एलक्शन ना लड़े।"<sup>५८</sup> राजनीतिक चुनाव के कारण दोनों में मनमिटाव हो जाता है। बुखारी साहब इलेक्शन के लिए शहला को मनाने के लिए उनकी सहेली शहरनाज को माध्यम बनाता है। उनके माध्यम से वह शहला को अपने पक्ष में करना चाहता है। "शहरू, जो तुम अपनी सहेली शहला को मेरी मदद करने पर राजी कर लो तो मैं लड़ जाऊँ इस साल।"<sup>५९</sup> चुनाव में इस तरह के संबंध बनाने की कोशिश की जाती है। नेता अपने वोट प्राप्त करने के लिए एक दूसरे के पास जाकर लोगों को ललचाने की कोशिश करते हैं।

चुनाव में समय पर राजनीतिक दल इतने सक्रिय हो जाते हैं कि वह अपनी कुर्सी बचाने के लिए चुनाव की तैयारियों में लग जाते हैं। 'नीम का पेड़' उपन्यास में इन्हीं राजनीतिक दावपेचों एवं आपसी संबंधों की आड़ में खेले जानेवाली राजनीति को दर्शाया गया है। इनमें मुसलिम मियाँ जामिन मियाँ की बेगम के चालीसवाँ के मौके पर आये हैं, किन्तु उनके लिए इन सब बातों का कोई मूल्य नहीं है। वह अपने ससुराल में जाकर चुनावी दाँवपेच में लग जाता है। मुसलिम मियाँ मदरसा खुर्द में राजनीतिक परिस्थितियों को भाँपने लग जाते हैं। तब सुखीराम बताता है कि "कौन किसका है ? कौन जाने और राजनीति में तो बिलकुल पता नहीं, कब कौन किसे धोखा दे दे। वोट

बिकते हैं, वोट देनेवाले बिकते हैं।”<sup>६०</sup> राजनीति में सबकुछ होता है। कोई भी व्यक्ति भरोसा करने लायक नहीं है, क्योंकि चुनाव में रुपये के बल पर सबकुछ खरीदा जा सकता है। जो बात रुपये से नहीं बनती, वह संबंधों की आड़ लेकर बनायी जाती है। चुनाव की इस गंदी राजनीति से भ्रष्टाचार पनपता है। राजनीति में संबंधों का सहारा लेकर भी चुनाव लड़े जाते हैं। मुसलिम मियाँ अपने लड़के की शादी मदनी साहब की लड़की शहनाज से तय करना चाहता है, क्योंकि इसके सहारे वह इलेक्शन का टिकट प्राप्त करना चाहता है। मुसलिम मियाँ अपनी बहु शहनाज को बताते हैं कि “यह तो हकीकत है बेटी कि अगर तुम्हारे वालिद चाहते तो मुझे इलेक्शन का टिकट जरूर मिलता।”<sup>६१</sup> ऐसे परिवार में संबंधों का कोई मूल्य नहीं होता। सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए संबंध बनाते हैं और बाद में तोड़ डालते हैं। रिजवी साहब जानते हैं कि मुसलिम मियाँ राजनीति का माहीर हैं। वह राजनीति के लिए कुछ भी कर सकता है। रिजवी साहब भी अपने स्वार्थ के लिए ऐसे परिवार में अपनी लड़की का ब्याह करते हैं। जहाँ राजनीति में ज्यादा दिलचस्पी हो। रिजवी साहब अपनी बेटी को समझाते हुए कहते हैं कि “ऐसा सिपासी धराना जहाँ भाई-भाई, बाप-बेटा पालिटिक्स लड़ाते हैं। जहाँ पानी का गिलास भी यह सोचकर पिया जाता है कि शायद इसके बाद इलेक्शन का टिकट मिल जाए, मिनिष्टरी मिल जाए। मैडम हाउस भी उससे अच्छा होता होगा। और फिर उस लड़के में क्या था? वह तो पोलिटिक्स भी नहीं जानता। एकदम निखटटू है।”<sup>६२</sup> यहाँ पर चुनावी दाँवपेच चलते रहते हैं। किस तरह राजनीति में अपना पाँव जमाया जाय, यह कोशिश रहती है। यहाँ पर इन सभी राजनीतिक संबंधों एवं दाँवपेच को लेखक ने प्रस्तुत किया है।



### ➤ राजनीति और संचार माध्यम :

संचार माध्यम में समाचार पत्रों का अनन्य एवं असाधारण महत्त्व है । लोकतंत्र की जड़े मजबूत करने का काम समाचार पत्र करते हैं । समाचार पत्र समाज का आईना हैं । समाज में घटित होनेवाली घटनाओं का चित्रण उसमें होता है । आज राजनीति में भी समाचार पत्र अपनी भूमिका अदा कर रहे हैं । राजनीति के संदर्भ में जो भी घटनाएँ घटित होती है, उसको जनता तक पहुँचाने का कार्य समाचार पत्र करते हैं । समाचार पत्र में बड़ी ताकत होती है । समाचार पत्रों का प्रमुख कार्य समाज सेवा है, और साथ ही साथ जनजागरण करना है । समाचार पत्र का महत्त्व स्पष्ट करते हुए डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र कहते हैं – “जनाधिकार, जनहित और जनस्वास्थ्य के लिए जब कभी खतरा या संकट उपस्थित हो उस समय यदि पत्र मौन रह जाए तो यह उनके लिए अक्षम्य अपराध की बात होगी ।”<sup>६३</sup> समाचार पत्रों का सदुपयोग जनता की शिक्षा के लिए करना चाहिए । किन्तु आजकल राजनीति की परछाई उन पर पड़ गयी है, समाचार पत्रों में आज वास्तविक और सच्ची खबरे आने से ज्यादा खबरों को चढ़ा-बढ़ा कर लिखा जाता है और जनता में आक्रोश पैदा किया जाता है । आज धन से विचार विक्रय करने का रोग पत्रकारिता में घुस रहा है । समाचार-पत्र नेताओं के कामों का लेखा जोखा जनता के सामने पेश करते हैं, जिसके बलबूते पर जनमत राजनेताओं की ओर झुक जाता है । जनता में राजनेताओं की लोकप्रियता बढ़ जाती है ।

डॉ. राही मासूम रज़ाने अपने उपन्यासों में समाचार-पत्रों की इसी त्रासदी का वर्णन किया है । ‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में महनाज यूथ कांग्रेस की लीडर है । वह पत्रकारिता के माध्यम से ख्याति बनाना चाहती है । वह मुहल्ले में सफाई अभियान आरंभ करती है, यहाँ पर सफाई अभियान का हेतु समाज सेवा न होकर समाचार पत्रों के माध्यम से जनता के सामने अपने आपको ‘मिसेज गांधी’ बनाना चाहती है । इसलिए वह प्रेसवालों को बुलाती

है । “महनाज की तस्वीरे उनके इन्टरव्यू समेत अलग छपी थी यह तस्वीरे छपने के बाद से महनाज अपने आपको कटरा मीर बुलाकी की ‘मिसेज गांधी’ समझने लगी थी ।”<sup>६४</sup> आपातकालीन परिस्थितियों में आकाशवाणी से प्रसारित होनेवाली खबरे भी राजनीतिक दौंवपेच के कारण राजनीतिक प्रसंसा की खबरे लगती है । आशाराम इमरजेंसी के खिलाफ था, वह आकाशवाणी द्वारा इमरजेंसी की खूबसूरत खबरे काफी दिनों से सुन रहा था, इसलिए आकाशवाणी की झूठी खबरों पर उनका भरोसा उठ गया था । इसी कारण वह बताता है कि “बतायेगा कौन दादाजी । पत्र-पत्रिकाओं की जबान काटी जा चुकी है । आकाशवाणी नम्बर एक सफदरजंग वाणी हो गया है । संजय गांधी वाणी हो गया है ।”<sup>६५</sup> आज सभी जनसंचार माध्यमों को सरकार ने अपने वश में कर लिया है । जनसंचार माध्यम सरकार की अच्छाइयों को बार-बार जनता के सामने रखकर सरकार की अच्छी प्रतिभा निर्माण करने का कार्य कर रहे हैं । जन संचार माध्यमों को अपने वश में रखने के लिए ‘जनसंचार मंत्रालय’ का निर्माण किया गया है । उन माध्यमों से सरकार की मात्र अच्छी बातों को ही जनता तक पहुँचाने का कार्य किया जाता है ।

कटरा मीर बुलाकी का देशराज जो आकाशवाणी इलाहाबाद से लापता हो जाता है और पुलिस द्वारा अत्याचार किया जाता है । इस तरह की खबर को आकाशवाणी से प्रसारित नहीं किया जाता, जब ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होती है तब ट्रान्समीटर को बंद कर दिया जाता है । “हमें खेद है कि ट्रान्समीटर में खराबी पैदा हो जाने के कारण आप स्थानीय समाचार न सुन सके । अब सुनिए फिल्म ‘जागृति’ में मुहम्मद रफी को । गीतकार है मजरुह सुलतानपुरी.....”<sup>६६</sup> इसमें डॉ. राही ने संचार माध्यमों में खासकर के आकाशवाणी जो जनता के लिए समाचार का माध्यम है, उसकी विडंबना को व्यक्त किया है । वास्तव में जनता की आवाज को जनता तक नहीं पहुँचाया जाता, फलस्वरूप जनता का विश्वास उठ जाता है । इमरजेंसी के समय

बुलडोजर के सामने बिल्लो आकर मर जाती है, लेकिन उसकी आवाज को सुननेवाला कोई नहीं है । इसी घटना को लेकर आकाशवाणी से समाचार मिलते हैं कि यह खबर बिल्कुल गलत है । बुलडोजर के ड्राइवर का बयान भी आकाशवाणी के लखनऊ इलाहाबाद स्टेशन से सुनवाया गया, जिसमें उसने कसम खाकर कहा कि उसके बुलडोजर से कुचलकर कोई नहीं मरा और लोगों को इस बात को मानना पड़ता है ।

‘ओस की बूँद’ उपन्यास में वजीर हसन जो धार्मिक एकता बनाये रखने के लिए मंदिर में जाकर शंख बजाता है, तभी पी. एच. सी. की गोली से उसकी हत्या हो जाती है । इसी संदर्भ में समाचार पत्रों में अफवाह फैलाई गई कि वह मंदिर की मूर्ति तोड़ने गया था । “दूसरे दिन के समाचार पत्रों में यह समाचार निकला कि मंदिर की मूर्ति को तोड़ने की कोशिश करता हुआ एक मुसलमान पी. एच. सी. की गोली से मारा गया ।”<sup>६७</sup> समाचार पत्रों में यह बात नहीं लिखी जाती, जो बनती है, अपितु समाचार पत्र में वास्तविकता को बदलकर खबर को भड़काया जाता है । समाचार पत्रों में हो रही इस तरह की करुणता को डॉ. राही अपने उपन्यासों के विविध पात्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं । इस तरह की परंपरा से समाचार पत्र जनता के लिए न होकर राजनीति के इशारे पर चलनेवाला यंत्र बन जाता है ।

‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में सांप्रदायिक दंगे और दंगों से उत्पन्न त्रासदी का वर्णन किया गया है । इसमें आकाशवाणी से प्रस्तुत समाचार पर जनता का भरोसा नहीं है, इसलिए आकाशवाणी से ज्यादा बी.बी.सी. समाचार सुनते हैं । आकाशवाणी से प्रस्तुत हो रहे समाचार में मरनेवाले लोगों की संख्या सही नहीं बताई जाती । समाचार पत्रों में समाचार से ज्यादा विज्ञापन को महत्त्व दिया जाता है । अब्बास साप्ताहिक ‘नई आवाज’ का संपादन कार्य करता है । इसमें पहले पन्ने पर पिछले हफ्ते की खास-खास खबरे छपती है और बाकी पन्नों पर ‘नामर्दी के शर्तिया इलाज, बिना आपरेशन के बवाशीर

और भगन्दर का इलाज जैसे विज्ञापन को महत्त्व दिया जाता है। डॉ. राही ने समाचार पत्रों एवं विभिन्न संचार माध्यमों पर राजनीतिक प्रभाव को अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया है। उन्होंने आज के वर्तमान समाचार पत्रों को राजनीतिक दलों के आश्रित होते हुए बताया है। वर्तमान समाचार पत्रों का प्रमुख उद्देश्य धन कमाकर समाचार पत्रों का विस्तार करना हो गया है। आज के समाचार पत्रों ने व्यापार का रूप धारण कर लिया हैं। इन सभी परिस्थितियों को प्रस्तुत करते हुए डॉ. राही जनसंचार के माध्यमों द्वारा हो रहे भ्रष्टाचार एवं इससे उत्पन्न त्रासदी का वर्णन किया है साथ ही साथ परिस्थिति को ध्यान में रखकर उसके समाधान के संदर्भ में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

#### ❖ निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि डॉ. राही का राजनीतिक चिंतन अद्वितीय था। क्योंकि डॉ. राही जानते थे और समझते थे कि हिन्दुस्तान की जो छबी उनके मन में हैं और जिसके वे दिवाने थे, राजनीति की धिनौनी चाल और उससे जुड़े लोग और राजनेता किस तरह उस तस्वीर को बदरंग करने पर आतुर है। डॉ. राही के उपन्यासों की विशेष उपलब्धि का मुख्य कारण उनका मानवतावादी दृष्टिकोण रहा हैं। डॉ. राही मुलतः थोड़े राजनीति के साथ जुड़े हुए थे, किन्तु राजनीति में जो गोलमाल चलती है, उस गंदी राजनीति उनको खतरो की ओर आगाह करती है। डॉ. राही अपने उपन्यासों के माध्यम से इन बातों पर गंभीर विचार करते हुए अपनी सोच एवं अभ्यासपूर्ण विचारों के माध्यम से इसकी सत्यता तक पहुँचने की कोशिश करते हैं। उन्होंने राजनीति को, समाज में फैले हुए सभी क्षेत्रों को अपने अनुभवों के आधार पर अपने उपन्यास में स्थान दिया और राजनीतिक गतिविधियों का विस्तृत चित्रण किया हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वर्तमान राजनीति के विभिन्न आयामों तथा जन-जीवन पर पड़ने वाले उनके प्रभावों का यथार्थ और प्रभावी चित्रण डॉ. राही के उपन्यासों में पाया जाता हैं।

## संदर्भ सूची :

क्रम	संदर्भ	पृष्ठ
१.	शब्दार्थ दर्शन - रामचन्द्र वर्मा	५०३
२.	हिन्दी शब्दसागर भाग-८ - सं. श्यामसुन्दर दास	४१५
३.	नालंदा विशाल शब्दसागर - श्री नवलजी	१६६
४.	संक्षिप्त हिन्दी शब्दकोश - रामचन्द्र वर्मा	८४६
५.	उपन्यास और राजनीति - सुषमा शर्मा	८
६.	उपन्यास और राजनीति - सुषमा शर्मा	२३
७.	हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन - डॉ. रमेश तिवारी	३४
८.	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना - ज्ञानचंद गुप्त	१७६
९.	भारतीय ग्राम : संस्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास - डॉ. पूरनचन्द जोषी	४२
१०.	ग्रामीण समाजशास्त्र - रामबिहारीसिंह तोमर	४१३
११.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	२६२
१२.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	२६२
१३.	नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	२०
१४.	नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	३६
१५.	नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	५७
१६.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	१२२
१७.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	३३७
१८.	कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	१४५
१९.	कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	११६
२०.	कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	१३३
२१.	कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	१२२

२२. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	५८
२३. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	२३८
२४. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	२४०
२५. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	२५०
२६. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	२५१
२७. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	२८२
२८. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	५१
२९. असंतोष के दिन - डॉ. राही मासूम रजा	२३
३०. नई धारा (मासिक) - सियाराम तिवारी दिसम्बर-जनवरी १९७३	७८
३१. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	४७
३२. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा	५२
३३. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा	७०
३४. असंतोष के दिन - डॉ. राही मासूम रजा	४४
३५. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	८४
३६. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	५४
३७. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	१०८
३८. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	३०
३९. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	३३
४०. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	११६
४१. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	६६
४२. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	१४३
४३. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	१४५
४४. असंतोष के दिन - डॉ. राही मासूम रजा	३४/४५
४५. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	१५
४६. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	१५

४७. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	१८१
४८. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	७८
४९. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	११
५०. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	१८
५१. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा	६२
५२. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा	६३
५३. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा	१४
५४. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा	१५
५५. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	१६
५६. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	२८
५७. दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रजा	१६६
५८. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	४४
५९. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	८२
६०. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	४५
६१. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	७४
६२. नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	७७
६३. हिन्दी पत्रकारिता - डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र	४५१
६४. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	१६६
६५. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	१६४
६६. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	२१०
६७. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	५१

## अध्याय-५

### “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में धार्मिक चेतना”

---

- ❖ विषय प्रवेश
- ❖ ‘धर्म’ शब्द का अर्थ
- ❖ ‘धर्म’ शब्द की परिभाषा
- ❖ धार्मिक चेतना का स्वरूप
- ❖ डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में धार्मिक चेतना
  - अंधविश्वास
  - धार्मिक आडम्बरों का चित्रण
  - मनौतियाँ
  - भूतप्रेत सम्बन्धी अंधविश्वास
  - हिन्दू-मुस्लिम आपसी सम्बन्ध
  - धर्म निरपेक्षता
- ❖ निष्कर्ष
- ❖ संदर्भ सूची



## अध्याय - ५

### “डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में धार्मिक चेतना”

#### ❖ विषय प्रवेश

भारतीय समाज, जीवन और उसकी संस्कृति में धर्म की सत्ता प्रमुख रूप से रही है। धर्म मानव जीवन में मूल्यों को उपलब्ध कराने के लिए जीवन की एक पद्धति का प्रतीक होता है। धर्म मनुष्य को सामाजिक विरासत में मिला वह पवित्रतम विश्वास हैं, जिसे सांस्कृतिक मान्यता प्राप्त है। जिसके सहारे वह जीवन के विविध क्रियाकलापों का क्रम निर्धारित करता है और संश्लिष्ट समस्याओं से जुझने को संबंध प्राप्त करता है। धर्म ही मानव व्यवहार को निर्धारित करता है। सामाजिक नियंत्रण के एक साधन के रूप में ‘धर्म’ के महत्त्व को सभी विद्वान स्वीकार करते हैं।

‘धर्म’ का मानव जीवन में बड़ा महत्त्व रहा है। ‘धर्म’ मानव जीवन को एक नयी दिशा प्रदान करता है। वह मानव को उत्थान की ओर ले जाता है। सुखमय जीवन की प्राप्ति के लिए मानव जीवन में ‘धर्म’ की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। धर्म एक ऐसी शक्ति है, जो समाज को प्रेरणा प्रदान करती है। धर्म के उदात्त तत्वों को आत्मसात करके मनुष्य अपना जीवन यापन करता है। धर्म ही मानव का मार्गदर्शक है। मानव समाज को धर्म के बिना पंगु माना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक धर्म होता है, इसलिए उसकी उस धर्म में पूर्ण आस्था होती है। वह उसको अपनी पूर्ण श्रद्धा व पवित्रता सम्बन्धी भावनाएँ अर्पित करके बदलें में उससे कल्याण की कामना रखता है।

हिन्दी साहित्य में 'धर्म' सम्बन्धी मान्यता एवं विश्वासों का चित्रण ज्यादातर देखने को मिलता है । उपन्यास साहित्य विद्या के अंतर्गत धर्म सम्बन्धी विभिन्न भावनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयास विभिन्न साहित्यकारों ने किया है । उपन्यास विधा के अंतर्गत डॉ. राही मासूम रज़ाने अपने उपन्यासों में धर्म सम्बन्धी विविध दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है । धार्मिक चेतना के अंतर्गत उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं । धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचार, धार्मिक अंधश्रद्धा, विश्वास, सांप्रदायिक दंगे, धर्म के नाम पर हो रहे भ्रष्टाचार और उनका शिकार हो रही जनता की करुण दशा का जिक्र वे अपने उपन्यास में करते हैं । डॉ. राही मासूम रज़ाने जो भी बात कही, वह किसी भी प्रकार के दबाव में आकर नहीं, अपितु निष्पक्ष रूप से बताई है, जिससे समाज की दयनीय स्थिति और उनसे उत्पन्न परिस्थितियों का जिक्र धार्मिक चेतना के अंतर्गत स्पष्ट होता है । डॉ. राही ने समाज में जो देखा-अनुभव किया, वही उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है । धार्मिक चेतना के माध्यम से डॉ. राही ने धर्म का वास्तविक रूप स्पष्ट करने का प्रयास किया है । जिससे धर्म सम्बन्धी जो संकल्पना है, उनको चरितार्थ करने का प्रयास किया है ।

डॉ. राही स्वयं धर्म में विश्वास करनेवाले व्यक्ति थे, किन्तु धर्म सम्बन्धी जो पाखंड एवं अंधश्रद्धा समाज में फैले हुए हैं, वह उनको बिलकुल पसंद नहीं थे । जिससे उन्होंने धर्म सम्बन्धी विसंगतियों को प्रस्तुत किया है । डॉ. राही ने धर्म सम्बन्धी खोखली और प्राचीनकाल से चली आयी परंपरा का खंडन किया है और समाज को एक नयी दिशा निर्देश करने का प्रयास किया है । डॉ. राही के धार्मिक चेतना सम्बन्धी विचार प्रस्तुत करने से पहले 'धर्म' शब्द का अर्थ, धार्मिक चेतना की परिभाषा आदि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जाए । यथा -

### ❖ ‘धर्म’ शब्द का अर्थ :

भारतीय समाज को संचालित करनेवाले तत्त्वों के अंतर्गत धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है । परमात्मा में विश्वास करने की भावना धर्म का उद्गम स्थल हैं । ‘धर्म’ शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में विद्वानों ने अपने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं ।

धर्म शब्द ‘धृ’ धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ है – धारण शक्ति । अतः किसी भी वस्तु की धारण शक्ति को धर्म कहा गया है । महाभारत में भी इस तरह का अर्थ चरितार्थ होता है । धर्म प्रजा को धारण करता है । हिन्दी शब्दकोश में “‘धर्म’ को इश्वरीय श्रद्धा, पूजा-पाठ तथा लौकिक व सामाजिक कर्तव्यों से जोड़ा गया है ।”<sup>१</sup> ‘धर्म’ शब्द के लिए उर्दू में पर्याय शब्द है ‘मजहब’ । उसका अर्थ है “‘किसी उपवास पद्धति पर अटल रहना ।”<sup>२</sup> यहाँ पर शब्दगत एवं कोशगत धर्म के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है । ‘धर्म’ शब्द का शाब्दिक अर्थ के आधार पर धर्म के विशाल स्वरूप को समझना संभव नहीं हैं, क्योंकि इसमें ‘धर्म’ को शब्दगत समझाने का प्रयत्न किया गया है ।

पाश्चात्य देशों में ‘धर्म’ शब्द के लिए ‘रिलिजन’ शब्द का प्रयोग होता है । किन्तु उसमें ‘धर्म’ शब्द का अर्थ पूर्ण रूप से चरितार्थ नहीं होता, इसका सही अर्थ नहीं निकलता । ‘रिलिजन’ शब्द जो शक्ति मनुष्य को पाप करने से बचाये इस भाव का द्योतक है । यह शब्द लैटिन भाषा से बना है और इसका अर्थ होता है – ‘बाँधनेवाला’ ।

इस प्रकार विभिन्न शब्दकोश द्वारा धर्म के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है । जो मनुष्य को उनके कर्तव्यों एवं नियमों से जोड़ते हुए समाज कल्याण की भावना पर बल देते हैं । शब्दकोश के अलावा विभिन्न विद्वानों ने भी ‘धर्म’ की परिभाषाएँ अपने अपने मतानुसार देने का प्रयास किया है ।

### ❖ ‘धर्म’ शब्द की परिभाषाएँ :

‘धर्म’ का स्वरूप व्यापक फलक पर देखा जा सकता हैं । अतः धर्मकी कोई चौक्कस परिभाषा देना संभव नहीं हैं । इसलिए वास्तविकता के आधार पर यद्यपि उसे शब्दों में बाँधा जा सकता हैं । उसकी ठोस परिभाषा देना या उसे पूर्णरूप से विश्लेषित करना कुछ असंभव सा है । फिर भी उसके स्वरूप को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने उसे परिभाषित करने का प्रयास किया हैं ।

डॉ. राधाकृष्णन के मतानुसार “धर्म वह अनुशासन है जो अंतरात्मा को स्पर्श करता हैं, बुराई और कुत्सितता से संघर्ष करने में सहायता देता है । काम, क्रोध और लोभ से हमारी रक्षा करता हैं । नैतिक बल को उन्मुक्त करता है; संसार को बचाने का महान कार्य के लिए साहस प्रदान करता है ।”<sup>३</sup> यहाँ पर धर्म मनुष्य के जीवन के साथ जुड़ा हुआ अभिन्न अंग माना गया हैं । धर्म की विशाल फलक पर परिभाषा बताते हुए कहा गया है कि “जो तत्त्व मनुष्य के, समाज के, राष्ट्र के और विश्व के जीवन को धारण करता हैं वही धर्म है ।”<sup>४</sup> समाज में धर्म में विश्वास या अविश्वास करना मनुष्य की मानसिक वृत्तियों एवं ज्ञानात्मक क्रियाओं पर आधारित हैं । डॉ. डी. आर. सचदेव के अनुसार “धर्म अति मानवीय शक्तियों के प्रति मनोवृत्ति है ।”<sup>५</sup>

पाश्चात्य विचारको ने अपने मतानुसार परिभाषा देने का प्रयास किया है । इसमें अर्नाल्ड ग्रीन धर्म को विश्वास और अति प्राकृतिक शक्तियों से जोड़ते हैं, जोन क्यूलर कहते हैं कि “धर्म के अंतर्गत पवित्र एवं मान्य विश्वासों, सांवेगिक भावनाओं, आदि का व्याप्त क्रियान्वयन होता हैं ।”<sup>६</sup> धर्म की संकल्पना अत्यंत जटिल होने से धर्म का रहस्य अत्यंत गूढ़ हैं । वह एक प्रकार से जीवन का नियामक तथ्य है । इसी के कारण लोक या संसार का वास्तविक रूप बिराजमान है । पाश्चात्य विचारक कूजर ने अपना विचार व्यक्त किया है । “धर्म से मेरा तात्पर्य मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि या

आराधना से है, जिसके संबंध में विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव को मार्ग दिखाती या नियंत्रित करती हैं।”<sup>७</sup> समग्र संसार का संचालन करने में धर्मका अपना स्थान होता है। अतः धर्म सम्बन्धी उपर्युक्त विचारों को जानने के बाद यह माना जा सकता है कि धर्म ऐसी अदृश्य शक्ति है, जो भारतीय संस्कृति पर ही नहीं, अपितु विश्व संस्कृति पर भी हावी रही है। जिसका मूल आधार विश्वास, श्रद्धा व पवित्रता है, जो मानव जाति के कल्याण हेतु निर्मित हुई हैं।

### ❖ धार्मिक चेतना का स्वरूप :

भारतीय समाज में प्राचीनकाल से धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। धर्म का जन्म मूलरूप से किसी भूत-प्रेत-पूजा से हुआ अथवा प्राकृतिक शक्तियों को सजीव शक्तिशाली मानने से, इस पर विवाद हो सकता है। प्रायः विद्वान इस बात पर सहमत है कि धर्म प्रायः सार्वभौमिक परिकल्पना है और इसका इतिहास सभ्य मानवता के इतिहास जितना ही पुराना है। समाजवादी विचारधारा में ‘धर्म’ को न तो अलौकिक शक्तियों का वरदान माना गया है, न ही इसे किसी शक्ति से जोड़ा गया है। धर्म को समाज के अन्य उत्पादनों की तरह एक सामाजिक उत्पादन स्वीकार किया गया है। धर्म किसी भी तरह से मनुष्य में जन्मजात नहीं होता और न ही धर्मभावना उनमें दिखाई पड़ती हैं। मानव जिस व्यवस्था में अपने को प्राकृतिक शक्तियों के आधीन पाता है, उस व्यवस्था में धर्म का सहारा लेना स्वाभाविक हो जाता है।

किसी भी बाह्य शक्तियों पर निर्भर होने के कारण धार्मिक व्यक्ति उनके अनुकूल व्यवहार करता है। वह अपनी इन धार्मिक वृत्तियों को पूरा करने के लिए पंडित पुरोहित वर्ग का संपर्क करते हैं। और वे कर्मकांडों का विधान करते हैं। इन विधियों से मनुष्य ईश्वर से सहायता, सलाह, आश्वासन, सहानुभूति आदि की प्रार्थना करता है। कालान्तर में धर्म, समाज, संप्रदाय,

परिवार आदि में मनुष्य के आवरण तथा कार्यकलाप का नियंत्रण विभिन्न निर्देशनों, निषेधों, आशाओं, उपदेशों आदि के जरिये करते हैं, जो भगवान के नाम पर दिए जाते हैं। शोषक वर्ग धर्म की इस नियामक शक्ति का लाभ उठाकर इसे अपने स्वार्थ साधना का शस्त्र बना लेता है और इसकी आड़ लेकर भ्रष्टाचार करते हैं। धर्म का आधार अति प्राकृतिक शक्तियाँ को स्वीकार करते हैं। धर्म सृष्टि के आदि से है और अंत तक रहेगा। धर्म को मानव मात्र का रक्षक माना जाता है। मनुष्य की इश्वर के प्रति आस्था उसको प्रभु की ओर निरंतर आकर्षित करती है। 'धर्म' मानव मात्र की समानता और एकता का जयघोष है।

'धर्म' प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय तक मनुष्य के साथ रहा है, जिसके कारण इसके स्वरूप में दिन-प्रतिदिन परिवर्तन होना स्वाभाविक है। प्राचीन समय में धर्मविहीन व्यक्ति को पशु समान माना जाता था। वेदों, पुराणों व अन्य धार्मिक ग्रन्थों में भी धर्मविहीन व्यक्ति की अवहेलना की गई है। धर्म के सम्बन्ध में डॉ. राधाकृष्णन लिखते हैं कि "धर्म का उद्देश्य चिन्तन या भाव समाधि नहीं है, अपितु जीने की धारा के साथ एकात्म्य स्थापित करना और उनके लिए सृजनात्मक प्रगति में भाग लेना है। धर्मपरायण मनुष्य उसके उपर उसकी भौतिक प्रकृति या सामाजिक दशाओं द्वारा थोपी गई मर्यादाओं से उपर उठ जाता है और सृजनात्मक उद्देश्य को विशालतर बनाता है। धर्म एक गतवर (गत्यात्मक) प्रक्रिया है, सृजनशील तीव्र मनोवेग के नये प्रयास जो असाधारण व्यक्तियों के माध्यम से कार्य करता है और जो मानव जाति को एक नये स्तर तक उठाने के लिए प्रयत्नशील है।"<sup>5</sup> मानव ने अपने सुखमय भावी जीवन निर्माण के लिए संयम के रास्ते को अपनाया। संयम का रास्ता सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करता है। इसलिए आज हर सामाजिक कार्य के साथ 'धर्म' शब्द जुड़ गया है। आज समाज में किसी भी व्यक्ति की सहायता करना, दान देना, अनाथालय में दान

देना आदि जो सामाजिक कार्य होते हैं। उसे धर्म का कारण माना जाता है, क्योंकि यह सब कार्य धार्मिक व्यक्ति के लक्षण माने जाते हैं।

‘धर्म’ शब्द आजकल इतना प्रचलित हो गया है कि शिक्षा हो या राजनीति धर्म के बिना अधूरे माने जाते हैं। धर्म केवल व्यक्ति तक सीमित न होकर समाज में भी सम्मिलित होता है। धर्म को सामाजिक सुधार का आधार बनाया जा सकता है, किन्तु उसे समाज सुधार का आंदोलन नहीं बनाया जा सकता। ‘धर्म’ को मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। ‘धर्म’ को मानव समाज की आधारशील माना जाता है, क्योंकि धर्म जीवन के प्रत्येक क्षेत्र और व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया को संचालित करता है। धर्म को जीवन में धारण करने से अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। आज धर्म अपने आधुनिक रूप में केवल आडम्बरों, पाखण्डों, व झूठे प्रदर्शनों का एक खेल बनकर रह गया है। वर्तमान युग में विज्ञान की प्रधानता होने के कारण मनुष्य का जीवन भौतिकता और यान्त्रिकता से परिपूर्ण है। जिससे वह धर्म से अधिक विज्ञान पर विश्वास करता है। व्यक्ति जब भौतिकवादी होने के कारण मानसिक रोगों का शिकार होता है, तो धर्म की शरण में आकर ही उसको शान्ति मिलती है। इसलिए आधुनिक युग में भी धर्म के अस्तित्व को नकारने की हिम्मत विज्ञान नहीं जुटा पाया। आज मानव को हर क्षण धर्म की आवश्यकता होती है। क्योंकि मानव की संपूर्ण क्रिया धर्म पर ही आधारित होती है; जीवन, मृत्यु, विग्रह, प्रत्येक क्षेत्र में धर्म का महत्त्व है। इसी कारण भारतीय चिंतकों ने धर्म का सम्बन्ध आध्यात्मिकता से जोड़ा है, जिसमें इश्वर के प्रति आस्था अनिवार्य तत्त्व होता है।

आज प्रवर्तमान समय में धर्म की भावना को कर्मकांडों में उलझा दिया है, जिस कारण धर्म का उद्देश्य मानव कल्याण न हो कर जनता का शोषण हो गया है। अतः धर्म केवल लाभ तथा धन कमाने का औजार बनकर रह गया है। आज धर्म के नाम पर झूठ, विश्वासघात, आडम्बर, पाखण्ड खुलकर

पनप रहे है । इससे स्पष्ट होता है कि धर्म का स्वरूप बदलता रहता है । समाज में लोग अपनी मानसिकता के आधार पर धर्म के प्रति आस्था रखते हैं और इसी आस्था पर वे विश्वास रखते हैं ।

### ❖ डॉ. राही मासूम रज़ाके उपन्यासों में धार्मिक चेतना :

मानव जीवन में धर्म का अपना अलग महत्त्व होता है । समाज में प्रत्येक व्यक्ति धर्म में विश्वास रखता है और इसी विश्वास के बल पर वह अपनी श्रद्धा बनाये रखता है । प्राचीन समय में धर्म के नाम पर अनेक बुराईयां एवं दुर्गुण पनप रहे थे । ‘धर्म’ को सामाजिक परिवर्तन लाने का माध्यम माना जाता था । ‘धर्म’ के नाम पर प्रजा पर अत्याचार होता था, ऐसी परिस्थिति में कई महापुरुषों ने धर्म की इस झूठी परंपरा का पर्दाफाश किया । सामाजिक जागृति के साथ-साथ धार्मिक आंदोलनों ने धार्मिक कुरीतियाँ एवं अंधविश्वास से जनता को जागृत किया और इस कार्य के लिए सबसे सबल माध्यम साहित्य रहा । परिणाम स्वरूप साहित्य एवं शिक्षा से धर्म के नाम पर उत्पन्न आडंबर शिथिल पड़े । प्रवर्तमान समय में धर्म सम्बन्धी अंधश्रद्धा एवं कुरीतियों का प्रभाव कम पड़ा और इसका स्थान भौतिक सुविधाओं और आर्थिक व्यवस्था ने ले लिया ।

धार्मिक चेतना का मुख्य कार्य समाज के समक्ष धर्म का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत करना है जिससे धर्म का सही अर्थ जान सके । हिन्दी साहित्य में कई साहित्यकारों ने साहित्य के माध्यम से समाज सुधार का पवित्र कार्य किया । डॉ. राही मासूम रज़ाइस तरह के धार्मिक प्रभाव से अछूते नहीं थे, इसलिए डॉ. राही की धार्मिक भावना धर्मनिरपेक्ष है । डॉ. राही के उपन्यास के तमाम चरित्र धार्मिक चेतना से भरे हैं । ‘धर्म’ मनुष्य से बड़ा होता है । यही कारण है कि मनुष्य में पाखण्ड एवं जडता समा जाती है, तब धर्म अपना विकृत स्वरूप अपना लेता है ।



डॉ. राही स्वयं धार्मिक व्यक्ति थे । धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा थी । वे धर्म को एक पवित्र दृष्टिकोण से देखते थे । इसलिए धार्मिक बुराइयों को वे सहन नहीं कर सकते थे । डॉ. राही सभी धर्म के उपर मानवधर्म को सर्वश्रेष्ठ मानते थे । उनके विचार से धर्म का सबसे बड़ा उद्देश्य मानव का विकास था । इसलिए डॉ. राही ने धर्म को साथ में रखकर मान जीवन के उत्थान के लिए प्रयत्न किया और इसी प्रयत्न के फलस्वरूप उन्होंने अपने उपन्यासों में विविध पात्रों के माध्यम से धर्म को प्रस्तुत किया । उन्होंने सामान्य जनता की धार्मिक मान्यता पर प्रकाश डालकर अपनी क्रांतिकारी धार्मिक मान्यता को प्रस्तुत किया है । डॉ. राही के अनुसार हर धर्म कभी न कभी मनुष्य को सही रास्ता दिखाने का प्रयत्न करता है । परंतु आज हर धर्म में लोग अपने फायदे के लिए राह से भटकने का कार्य करते हैं । डॉ. राही ने धर्म को हिन्दू-मुसलमान या इसाई के रूप में कभी नहीं देखा । उनका जीवन उनके लिए धर्म रहा, इसलिए धर्ममय होकर उन्होंने जीवन यापन किया । अर्थात् धर्म को जीवन में प्रधानता दी । उनके लिए मानवधर्म श्रेष्ठ धर्म है । वे धर्म को किसी भी प्रकार के बंधन में नहीं बांधते थे । उनके मतानुसार धर्मव्यक्ति को सुखमय जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करता है । डॉ. राही की धार्मिक दृष्टि उदार थी । वे केवल साहित्यकार नहीं, अपितु धर्मज्ञान के भाष्यकार भी हैं । उनकी मान्यता अनुसार ईश्वर और अल्लाह एक ही हैं । उन्होंने समाज में धर्म सम्बन्धी झूठी मान्यताओं का खंडन करके धर्म का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया । यहाँ पर डॉ. राही की धार्मिक चेतना को उनके उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत करने की प्रयास किया गया है । यथा -

#### ➤ अंधविश्वास :

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में शिक्षा का प्रचार बड़े पैमाने पर हुआ । विज्ञान की शिक्षा ने परंपरागत बातों की अपेक्षा अनुभूतिजन्य बातों पर

विश्वास को महत्त्व दिया । फिर भी ग्रामीण समाज में कई पुराने विचारों या रीतियों में आज भी अंधविश्वास है । वैसे ग्रामीण समाज में नगरी समाज की तुलना में ज्यादा अंधविश्वास दिखाई देता है । अंधविश्वास अलग अलग रूप में समाज में दृष्टिगत होता है । मानव के विभिन्न अंधविश्वासों के पिछे गरीबी व निरक्षरता कारणभूत है । किसी भी समस्या का समाधान वे इन अंधविश्वासों के माध्यम से ढूँढते हैं । प्रवर्तमान युग में धर्म की गलत मान्यताओं ने मानव को डरपोक बना दिया है । वह इसी डर एवं मानसिकता के कारण अंधविश्वासों का सहारा लेता है । इस प्रकार की युगो से चली आ रही रुढ़ि गत मान्यताएँ एवं अंधविश्वास आज भी समाज में दिखाई पड़ते हैं । विज्ञान के इतने बढ़ते कदम और शिक्षा के प्रचार के बावजूद भी आज का मानव इन समस्याओं से झूझता नजर आता है ।

धर्म जीवन की आधारशीला है । अतः जीवन के सभी कार्यकलाप धर्म पर आधारित हैं । आज के युग में धर्म का वास्तविक स्वरूप लुप्त सा होता जा रहा है । आधुनिक युग में आचार-विचार की पवित्रता को ही धर्म मानकर अनेक प्रकार के पाखंड तथा अंधविश्वास के स्वरूप प्रचलित हैं । आज धर्म का सारा स्वरूप बाह्याचार और छूआछूत में सिमटकर रह गया है । किन्तु यहाँ पवित्रता के स्थान पर लोग दिखावा और अंधविश्वास अधिक करते हैं । डॉ. राहीने इन सभी अंधविश्वासों का खंडन किया है । उनके उपन्यासों में अंधविश्वासों का वर्णन पाया जाता है । उन्होंने समाज में फैले इन अंधविश्वासों पर अपने विचार स्पष्ट किये हैं, क्योंकि अंधविश्वास की भावना जब एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती है, तब मानव के विकास में अवरुद्ध बन जाती है । डॉ. राही की प्रगतिशील चेतना ने ऐसे अंधविश्वासों को जड़ से उखाड़ने की कोशिश की है । ताकि समाज और राष्ट्र का विकास हो सके ।

‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में छूआ छूत जैसी अंधश्रद्धा दिखाई पड़ती है । जातिगत भेदभावों के आधार पर निम्नवर्ग के लोगों को अछूत माने जाते हैं

और उनको छूने से भी वे अपने आप को भ्रष्ट मानते हैं। इफन की पर दादी हिन्दुओं का छुआ भी नहीं खाती, क्योंकि वह हिन्दुओं को अछूत मानती है। वह अपने बेटे की बिमारी को देखकर चिंतित हो जाती है। अपने बेटे को चेचक निकली तो वह चारपाई के पास एक टांग पर खड़ी हो जाती है और माता से उसके ठीक होने की दुआए माँगती है। “माता मोरे बच्चे को माफ कर दयो।”<sup>६</sup> चेचक जैसी बिमारी को लेकर लोग अस्पताल में जाने के बदले ऐसी मान्यताओं को पकड़कर बैठ जाते हैं। ‘आधा गाँव’ उपन्यास में जातिगत भेदभावों का चित्रण किया गया है। जिस में मुस्लिम परिवारों में शिया लोग अपनी रक्त शुद्धता पर ज्यादा ध्यान देते हैं। शादी ब्याह, नाते, रिश्ते आदि में हड्डी की शुद्धता को विशेष प्रधानता दी जाती है, उपन्यास में सुलेमान-चा इंगटिया-बो के साथ शादी करते हैं, किन्तु इंगटिया-बो निम्न जाती की होने के कारण सुलेमान-चा उनकी छुई हुई चीज नहीं लेते हैं। “सुलेमान-चा मजहबी आदमी थे, इसलिए वह इंगटिया-बो की छुई हुई कोई गीली चीज इस्तेमाल नहीं कर सकते थे।”<sup>१०</sup> अंधविश्वासों का जहर समाज में इतना फैल गया है कि आज प्रत्येक क्षण पर अंधविश्वासों का सहारा लिया जाता है। इन अंधविश्वासों का शिकार ज्यादातर नारियाँ होती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में विधवाओं के प्रति भेदभाव रखकर अपमानित किया जाता है। हिन्दू समाज की तरह मुसलमानों में भी विधवाओं को अपशुक्न माना जाता है। इसलिए किसी भी शुभ अवसर पर विधवाओं का जाना वर्जित होता है। उनको सौभाग्यवती संधवा नारी के समान आभूषण धारण करना, शुभ अवसरों और शुभ स्थलों पर जाने का अधिकार नहीं दिया जाता, क्योंकि इसे अपशुक्न माना जाता है। हुसेन अलीमियाँ की बहन उम्मुल हबीबा बेवा हो जाती है। इसलिए उनको अछूत माना जाता है। कंदूरी फर्श पर उसकी परछाई नहीं पड़ सकती थी, वह दुल्हन के कपड़ों को छू नहीं सकती थी। ऐसे अत्याचार से त्रस्त उसका जीवन बेकार सा हो जाता है। समाज में ऐसी कई नारियाँ हैं,

जो ऐसे अंधविश्वासों के चंगुल में फँसी अपना जीवन व्यतीत करती है। डॉ. राही ने ऐसे अंधविश्वासों में जी रहे समाज में जागृतता लाने का प्रयास किया है। ऐसे कई उदाहरण हैं, जिसमें व्यक्ति को जाति के आधार पर भेदभाव रखकर अन्याय किया जाता है। चिकित्सा जैसे क्षेत्र में भी यह दूषण फैला हुआ है। हकीम साहब निम्न वर्ग के व्यक्ति को छूने के बाद स्नान करते हैं क्योंकि उनका मानना था कि उनको छूने से वह भ्रष्ट हो जाते हैं।

गुलाम हुसैन खा अंधविश्वास में विश्वास रखता है। अपनी बीबी को साँप काटने पर उनको अस्पताल ले जाने के बदले सामनेवाले इमाम चौक में मन्नते रखता है। इस बात को वह बबुरमवा-बो को बताता है, जिससे खुद इस अंधविश्वास का शिकार है, किन्तु दूसरों को भी अपनी बातों में फँसाकर गुमराह करने की कोशिश करता है। “उन्होंने बबुरमवा-बो को दरवाजे के इमाम चौक की करामते बतलायी कि किस तरह एक बार उनकी बीबी को साँप ने काट लिया था और किस तरह उन्होंने इस सामनेवाले इमाम चौक पर मन्नत मानी थी और किस तरह मन्नत के मानते ही साँप का जहर खुद-ब-खुद उतर गया था।”<sup>99</sup> साँप के काटने से शरीर में प्रविष्ट विष को उतारने के लिए इन अंधविश्वासों पर विश्वास किया जाता है। इस तरह के अंधविश्वासों में दोनों पक्ष के व्यक्ति विश्वास करते हैं। एक जिसकी इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है, वह ऐसी अंधश्रद्धा में डूबता जाता है और दूसरा जिसकी इच्छा पूरी नहीं होती, वह यह सोचता है कि भगवान की यह इच्छा होगी, जिसमें वह ज्यादा श्रद्धावान बनने की कोशिश करता है।

‘नीम का पेड़’ उपन्यास में दुखिया पुरातन विचारोवाली नारी है, जो अंधश्रद्धा में डूबी हुई है। अपनी बहू शारदा की जचगी घर पर ही होगी, क्योंकि अस्पताल पर उनका भरोसा नहीं था। इसके लिए वह अपनी दलील करती है, – “उसकी दलील थी कि सुखीराम की पैदाइस भी तो घर में हुई थी और वो इतना बड़ा आदमी बना। लेकिन शारदा को अपनी साँस की इस

जाहिलाना दलील पर गुस्सा आ रहा था । दुखिया कह रही थी कि अस्पताल का क्या भरोसा, वहाँ तो बच्चे बदल दिए जाते हैं ।”<sup>१२</sup> पुरातन विचारों से ग्रस्त इस समाज में फैली विडंबनाओं के कारण आज कई महिलाओं को मृत्यु का सामना करना पड़ता है । जिसको डॉ. राही ने धृवा के साथ व्यक्त किया है ।

### ➤ धार्मिक आडम्बरों का चित्रण :

‘धर्म’ मनुष्य के लिए श्रद्धा एवं विश्वास का प्रतीक है । प्रत्येक धर्म के लोग अपने अपने धर्म में विश्वास करते हैं । भारतीय समाज इसी धर्म का सहारा लेकर अपना जीवन यापन करता है । धर्म मानव को जीवन जीने की राह देता है । आजकल धर्म के नाम पर आडम्बर हो रहे हैं । इसी आडम्बरों का सहारा लेकर ऐसे धार्मिक व्यक्ति अन्य लोगों को गुमराह करते हैं । डॉ. राही मासूम रज़ाने अपने उपन्यासों में धर्म के नाम पर हो रहे आडम्बरों का पर्दाफाश किया है । डॉ. राही धर्म में विश्वास करते थे, किन्तु ऐसे बाह्य आडम्बरों से नफरत करते थे । उन्होंने अपने जीवन में भी इस बात का अनुभव किया है ।

डॉ. राही ने अपने सुप्रसिद्ध उपन्यास ‘आधा गाँव’ जो गंगोली के शीया और सुन्नी मुस्लिम परिवारों की जीवनशैली एवं मुहर्रम के त्यौहार का वर्णन करता सशक्त उपन्यास है । इसमें मुहर्रम के त्यौहार को बड़ी धुमधाम से मनाया जाता है । इसमें दोनों पट्टियों के लोगों में मजलिस होती है । इन मजलिसों में दोनों पट्टियों के लोग उत्साह पूर्वक भाग लेते हैं । मजलिस में दोनों पट्टियों के बीच बेहोश होने की स्पर्धा होती है । बेहोश होना एक काल्पनिकता है । सब बेहोश होने का आडम्बर करते हैं । डॉ. राही भी इस तरह की झूठी परंपरा में भाग लेने की कोशिश करते हैं । इसके लिए पहले से ही योजना बनायी जाती है और इसी योजना के आधार पर लोग झूठ में

बेहोश होते हैं। बेहोश होने की इस खोखली परंपरा के कारण डॉ. राही भी एक बार जख्मी होकर गीर जाते हैं। तब गभराहट फैल जाती है। “ए मासूम तभी लपक के एक पर्ईसे की हरी बुकनी लिआ दोउह बुइड़ा का जनी कहां जाके मर गया है। मैं चुप लेटा रहा। मैं कैसे बोलता, मैं तो मरा हुआ था ! ई मर गया है। भाई साहब ने बा’जी को खबर दी। का: बा’जी घबराकर अम्मा की तरफ भागी।”<sup>१३</sup> इस तरह के पाखंडों से घबराहट फैल जाती है और फिर भी लोगों में इस तरह की बेहोश होने की परंपरा चलती रहती है। लेखक इससे यह बात बताना चाहते हैं कि इमाम साहब के वियोग के कारण लोग बेहोश हो जाते हैं, किन्तु वास्तविकता केवल बाह्य दिखावा है। फिर भी सब उत्साहपूर्वक भाग लेते हैं। मरसियों में सभी रोते हैं, कोई जोर-जोर से चिल्लाकर रोता तो कोई जबरदस्ती रोंने की कोशिश करता है। हुसैन अली-चा रोना चाहते थे, मगर आँसू नहीं निकल रहे थे। अम्मू और हुसैन अली-चा आँसू निकालने में कामयाब नहीं होते। मुहर्रम का त्यौहार इस तरह कई प्रकार के धार्मिक आडम्बरों में फँसा है।

‘ओस की बूँद’ उपन्यास में बेहाल शाह अल्लाह बस बाकी हवस का नारा लगाता है। बेहाल शाह के घर पर औरतों का ठठ लगा रहता है। वह अपनी शक्तियों के द्वारा औरतों को विश्वास दिलाता है और इसी अज्ञानता से वह सब को फँसाता है। बेहाल शाह धर्म की आड़ में लोगों को फँसाकर अपना कार्य सिद्ध करता है। जिस स्त्री को बच्चा नहीं होता, ऐसी स्त्रियों को उसकी इच्छा से बच्चा होता है। किसी की बिमारी दूर करते हैं, किसी का मियाँ कत्ल के मुकदमें में फँसा है वे सभी बेहाल शाह के पास अपनी समस्या के समाधान हेतु आते हैं। लोगों का मानना है कि बेहाल शाह एक नेक इन्सान है, जिससे वह कई तरह की अपेक्षाएँ लिए जाते हैं। “तनी अल्लाह मियाँ से कहए शाह साहब, कि उ, झादूमारे की मव्वत एही तरा लिक्खिन रहा त एमें पुक्का के अब्बा का कउन कसूर है।”<sup>१४</sup> बेहाल शाह का यह व्यापार

जोर से चलता है । किन्तु जल हाजरा के बारे में सबको मालूम पड़ता है कि वह अल्लाह मियाँ से बातें करती है, तब बेहाल शाह का यह व्यवसाय मंद पड़ जाता है । बेहाल शाह लोगों को धर्म का भय दिखाता है । बेहाल शाह अपने इस व्यवसाय को जमाने के लिए एक मजार की तलाश करते हैं, क्योंकि उनके लिए एक मजार होना आवश्यक बन गया था और वहां बैठकर वह अपनी बातों से लोगों को आकृष्ट कर सकता है । इसलिए वह वजीर हसन के घर जाते हैं और शहला को बताते हैं कि “बेटा, हम तुम से वजीर हसन रजी अल्लाह के मजार पर झाड़ू देने की इजाजत माँगने आए हैं ।”<sup>१५</sup> बेहाल शाह एक धार्मिक व्यक्ति होने हुए भी शहला को देखकर उनकी ओर आकृष्ट होता है । किन्तु उनका लक्ष्य मजार प्राप्त करना था, यह सोचकर बेहाल शाह मजार पर जाकर बैठ जाते हैं और मजार बनाने के लिए चंदा इकट्ठा करने निकल जाते हैं ।

‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में धार्मिक आडम्बरों का चित्रण किया गया है । लोग धार्मिक स्थलों में भी अपने काले धन्धे करके अपना पैर जमाये हैं । ऐसे लोगों का मानना है कि आज के युग में धर्म ही वह माध्यम है, जिसमें वह अपने किसी भी बुरे कार्य को छिपा सकते हैं । उपन्यास में औरंगजेब भी ऐसा ही पाखण्डी व्यक्ति है, जो धर्म का सहारा लेकर चरस गाँजे का धंधा करता है । इसके लिए वह गाँव की मस्जिद का सहारा लेता है । वह मस्जिद में जाकर नमाज भी पढ़ता है और अपना यह धन्धा भी करता है । जिससे लोगों को किसी भी प्रकार का शक न हो । गाँव के लोग उसे एक धार्मिक एवं पवित्र इन्सान मानते हैं । आज ऐसे स्थलों को लोग मस्जिद मानकर उनकी श्रद्धा बनाये रखते हैं । “शराब-चरस-गाँजे के धन्धे के साथ साथ औरंगजेब पाँचों वक्त की नमाज भी पढ़ता था और अमीरजादा का असर तोड़ने के लिए सामनेवाले मैदान में नमाज पढ़ना शुरू किया और धीरे धीरे जवाहरनगर की तमाम दाढ़ियाँ उसके पीछे सफ बाँधकर नमाज पढ़ने

लगी और वह मैदान 'मस्जिद' कहा जाने लगा ।”<sup>१६</sup> समाज में धार्मिक लोगों की आस्था का लाभ औरंगजेब जैसे पाखंडी उठाते हैं । लोगों की इस तरह की मानसिकता के पीछे जागृकता का अभाव दिखाई पड़ता है । इसलिए डॉ. राही अपने उपन्यास एवं उनके विविध पात्रों के माध्यम से जागरूकता लाने का प्रयास करते हैं

समाज में धर्म के क्षेत्र में पाप पुण्य की विचारधारा पूर्व स्थान है । जो व्यक्ति सत्कर्म करता है, वह इह लोक तथा परलोक में सुख प्राप्त करता है एवं जो व्यक्ति दुष्कर्म करता है, वह इहलोक एवं परलोक में कष्ट प्राप्त करता है । धार्मिक विचारको के अनुसार समाज में जनता के कष्टों को बढ़ने का कारण उसके दुष्कर्म का विकास है । इस तरह की जनता की पाप-पुण्य सम्बन्धी विचारधारा के अनेकों उदाहरण मिलते हैं । दिल एक सादा कागज' उपन्यास में सैदानी बी एक ऐसी औरत है, जो लोगो को जहन्नम की बातें करके लोगो में अफवाह फैलाती है कि वे खुदा से बातें करती हैं । खुदा उनके सपने में आते हैं और रोज उनसे बातें किया करती हैं । सैदानी-बी अपने पति का ख्याल नहीं रख सकती और सैदान-बी की इस तरह की हरकतों से तंग आकर मर जाते हैं । “इस बीबी ने जीते-जी अपने खाविन्द की खिदमतन की और इसीलिए मरने के बाद जहन्नम की आग में जल रही है । और बीबी ने अपने मियाँ के एबो पर पर्दा डाला तो जन्नत से सात हुरे इसकी खिदमत पर मुकर्रर कर दी गयी है ।”<sup>१७</sup> सैदानी-बी इसी अंधविश्वास में जीती हैं । वह रफकन को तरह तरह की जन्नतया जहन्नम की कहानियाँ सुनाती हैं, जिससे रफकन के मन में डर पैदा होता है ।

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में मस्जिद में बम्ब बनाने का कारोबार चलता है । खुर्शीद आलम खाँ अपने रिपोर्ट तैयार करता है कि कटरा मीर बुलाकी में बमों का कारखाना और नोट छापे जाते हैं । इसी आधार पर पुरानी मस्जिद के खँडर में से उन्होंने बमों का एक कारखाना बरामद किया । इस



घटना से सारे कटरा में खलबली मच गयी । हिन्दू और मुसलमान दोनों ने इस घटना को बुरा माना । धार्मिक स्थल भी भ्रष्टाचारों की लपट में आ जाते हैं, जिसका फायदा उठाकर इस तरह के धन्धे करते हैं ।

‘हिम्मत जौनपुरी’ उपन्यास में हिम्मत जौनपुरी के दादा आरजू साहब के मरने के बाद उनकी मजार बनाई जाती है जहाँ पर हर साल उर्स होता है । उस उर्स में शरीक होने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं । यहाँ पर लोगो की धर्म के प्रति आस्था के दर्शन होते हैं । किन्तु मजार के पास एक नीम का पेड़ था । उस पेड़ के बारे में एक विशेषता थी कि उस नीम की पत्ती बड़ों की नामर्दी से लेकर बच्चों का सूखा रोग तक का शर्तिया इलाज है । जिससे बर्क साहब का परिवार उसी नीम के पेड़ की पत्तियों के कारण गाजीपुर में सुख चैन से रहते हैं । “इसी मजार और नीम के पेड़ की वजह से वह लोग पाकिस्तान भी न जा सके, क्योंकि जाहिर है कि वहाँ जाकर वह इस मजार और नीम के पेड़ का क्लेम तो दाखिल नहीं कर सकते थे ।”<sup>१८</sup> यहाँ पर मजार से ज्यादा नीम के पेड़ की पत्तियों का महत्त्व है । नीम का पेड़ मजार के पास ही होने के कारण मजार का चमत्कार माना जाता है । लोगों के ऐसे अंधविश्वास के कारण बर्क साहब के परिवार का गुजारा चलता है । बम्बई के चर्च के पास एक मंदिर का जिक्र किया गया है । मंदिर में सामान्य श्रद्धालु आते रहते हैं वहाँ पर भीड़ कम दिखाई देती थी, किन्तु उस मंदिर की सीढियों पर फूल बेचनेवाली लड़की बड़ी हो जाने से वहाँ पर भीड़ बढ़ जाती है । क्योंकि वहाँ श्रद्धालु के साथ साथ उस लड़की के पास ग्राहक बनकर आनेवाले लोग बढ़ जाते हैं और उसी के कारण मंदिर की आमदनी में भी बढ़ोतरी होती है । “परंतु एक दिन बंबई के भक्तों को पता चल गया कि वह जवान हो गई है, बस फिर क्या था, देखते ही देखते उस मंदिर का भगवान इतना पापुलर हुआ कि उसके पुजारी ने बंबई में तीन बिल्डिंगें खड़ी करली ।”<sup>१९</sup> धर्म के साथ साथ समाज में हो रहे इस तरह के पाखंड से

भगवान को भी धोखा देकर लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। पुजारी जैसा सामान्य व्यक्ति भी मंदिर के नाम पर धन इकट्ठा करने में लग जाता है यहाँ पर डॉ. राही इस बात को स्पष्ट करना चाहते हैं कि आज के आधुनिक युग में मंदिर, मस्जिद आदि सब धर्म के एवं लोगो की आस्था के प्रतीक हैं। उसमें भी आज अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार पनप रहे हैं और जिसका शिकार ऐसे लोग होते हैं, जो शिक्षित होते हुए भी अज्ञानता की इस राह पर चलते हैं।

### ➤ मनौतियाँ :

धर्म मनुष्य के लिए प्राचीन काल से श्रद्धा का विषय रहा है। धर्म में विश्वास रखनेवाले लोगों में देवी, देवताओं एवं इश्वरीय आस्था का आंतरिक उत्सव है – मनौतियाँ। जिनकी पूर्ति के लिए लोग अपने अभीष्ट की अभ्यर्थना करते हैं। अपनी किसी भी संभव या अंभव इच्छा पूर्ति के लिए विभिन्न मनौति मानना भारतीय समाज की विशेषता रही है। मनुष्य जीवन स्वार्थ का फलिभूत रूप है। व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इश्वर के प्रति ज्यादा आस्थावान बन जाता है और वही आस्था के रूप में मनुष्य मनौतियाँ प्रकट करता है। इन मनौतियों में ज्यादातर लोग अपने लाभ और यश की कामना करते हैं।

आज के आधुनिक युग में वैज्ञानिक शोध में मनुष्य ने अनेक सिद्धियाँ हाँसिल की हैं, और साथ ही साथ अनेक अंधविश्वासों का पर्दाफाश भी किया है। फिर भी आजकल ग्रामीण जनता इन अंधविश्वासों के साथ जकड़ी हुई है। विभिन्न देवी-देवताओं में आस्था रखनेवाले लोग अपने अपने मन में संकल्प निर्धारित कर लेते हैं और वह संकल्प पूर्ण होने पर उन देवताओं को प्रसन्न किया जाता है। डॉ. राही मासम रज़ाने इन अंधविश्वासों को अपने उपन्यासों में विभिन्न घटनाओं के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया है। डॉ. राही के

‘आधा गाँव’ उपन्यास में विभिन्न प्रसंगों पर मन्नते मानने की प्रथा का जिक्र किया गया है। उपन्यास में फुन्नन मियाँ को जेल की सजा हो जाती है, तब उनकी रीहार्ड के लिए उनकी पत्नी कुलसुम मन्नत मानती है। “उसने तो बड़े ताजिये के चौक पर मन्नत मान डाली थी, लेकिन जब फुन्नन मियाँ की सजा हो गयी तो इससे उसके विश्वास को ठेस नहीं लगी। उसने सोचा शायद मौला इस्तहान ले रहे हो, या शायद दमडिया-बो ने ठीक से मन्नत ही न मानी हो, या फुन्नन शाह और चंदन शहीद उस वक्त अपनी कब्रों में रहे ही न हो और बाद में रहमत के फरिश्ते उन्हें यह बताना भूल गये हो कि दमडिया भर के जरिये गंगोली की कुलसूम-बी ने कई मन्नत मानी हैं।”<sup>२०</sup> कुलसूम की इस प्रकार की सोच से शायद उसके स्वभाव का भोलापन, धार्मिक श्रद्धा या हास्य उत्पन्न करनेवाला कारण जो भी हो, लेकिन आज के आधुनिक युग में भी समाज में स्त्रियाँ इस तरह की मन्नते रखती हैं, जिसके पीछे वह अपनी धार्मिक श्रद्धा को समर्पित करती है। जब कभी किसी की मन्नत पूरी नहीं होती, तब वह इस बात से समाधान कर लेती है कि शायद खुदा उसका इस्तहान ले रहा है।

मन्नतों का सिलसिला क्रमशः चलता रहता है। खैरुद्दीन जो फोज में नौकरी करता है। उसके ननीहाल में जब लडाई की खबर मिलती है, तब उनकी नानी खैरुद्दीन की सलामत वापसी के लिए मस्जिद में जाकर दुआँ माँगती है। वह ताजिये के पास जाकर बोलती हैं कि “हे इमाम साहब ! खेरु के नाना को मत कहियेगा .....कि हम आपसे कुछ कहे आये रहे। बाकी खेरु को लाम पर जाय से रोक दिजिये..... परसाल हम आप पर नवा कपड़ा चढ़ा देंगे !”<sup>२१</sup> नानी की इस तरह की हरकते अशरफुल्ला को बिल्कुल पसंद नहीं है। वे मन्नते जैसे अंधविश्वासों में विश्वास करनेवाले मुसलमान नहीं थे, फिर भी उनके अंदर का डर उनको भी इस तरह की परंपरा को निभाने के लिए मजबूर करता है। वह नमाज में दुआँ मागता है “बारे

खुदाया ! अगर खैरु लडाई से जिंदा सलामत लौट आया, तो अब की बकरीद पर तीन गाये काटूँगा और दो गरीब मुसलमानों को हज करवाऊँगा ..... और ताजियेदारी का गुनाह बंद कर दूँगा ।”<sup>२२</sup> अशर फूल्ला खान के इस प्रकार के निवेदन से इस बात को देखा जाता है कि वह ताजियेदारी करना गुनाह मानता है और साथ-ही-साथ गाय को काटकर खुदा को खुश करने की इच्छा व्यक्त करता है । गुलाम हुसैन अंधविश्वासों से ग्रस्त होकर मनौतियाँ मानता है । उनकी पत्नी को साप काटने पर सामने वाले इमाम चोक पर मन्नत मानते हैं और किसी तरह उनके मन्नत मानते ही साँप का जहर खुद-ब-खुद उतर जाता है । बबुरमवा-बा कोई बात का पता चलने पर उनके लड़के को कत्ल के जुल्म से बचाने के लिए वही खड़े खड़े तड़ से मन्नत मान डालती है किन्तु फिर भी कामिला को फाँसी की सजा हो जाती है । जिससे एक चमारिन बबुरमवा-बो को बताती है कि “उसे बड़े ताजिये पर मन्नत माननी चाहिए थी कि उसी ताजिये ने पंडिताइन के लड़के को बचाया था । को मिला की सजा ने बड़े ताजिये की धाक और जमादी ।”<sup>२३</sup> मन्नते आमने सामने टकराती है । किसी न किसीकी मन्नत पूरी होती है और इसी लिए विश्वासों की दुनियाँ में कोई तुफान नहीं आता, जिसकी मन्नत पूरी नहीं होती, वह यह सोचकर चुप हो जाता है कि खुदा उसका इस्त्यहान ले रहा है ।

उपन्यास में लड़का और लड़की दोनों के जन्म सम्बन्धी भेदभाव देखा जाता है । बार-बार लड़की का जन्म परिवार के लिए चिंता का विषय बन जाता है और लड़का पैदा हो, इसलिए मन्नते मानी जाती है । सकीना एक ऐसा पात्र है, जिसको सात लड़कियाँ पैदा होती हैं । किन्तु फूस्सू मिया एक लड़के का अरमान रखे हुए मन्नते रखते हैं । साथ ही साथ गंडे ताबीज में जकड़ जकड़ाकर कोशिश करते हैं । सकीना भी इन अंधविश्वास में श्रद्धा रखती है और कोरे बरतन में खाना खाती है । लड़का प्राप्त करने के लिए सकीना साधुओं और फकिरों पर न जाने कितने पैसे खर्च कर चुकी थी ।

जब अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती, तब सकीना का विश्वास टूट जाता हैं । “और तब दुआ ताबीज पर से सकीना का एतबार उठ गया था । उसने नमाज पढ़ना भी छोड़ दिया था कि दो लड़कियाँ ओर हुई और उसने सोचा कि लड़की या लड़का होने का अल्लाह मियाँ के कारखाने से कोई ताल्लुक नहीं है ।”<sup>२४</sup> हकीम साहब की बेटी की शादी में रात को एक साधु का जिक्र किया जाता है । जिसकी बात से पता चलता है कि वह साधु मन्नते देता है । एक बार उनकी मन्नत से एक स्त्री को बच्चा भी होता है । “हमने तो सुना है कि वह लोगों की मन्नते पूरी कर रहा है । किसी के यहाँ लड़का नहीं होता था, उसने असीसे दी । अब सुना है कि उसकी बीबी पेट से है ।”<sup>२५</sup> इस से इतना प्रभाव पड़ता है कि मन्नते माँगने के लिए लोगों की भीड़ बनी रहती है । गुलाबीजान भी ठाकुर हरनारायण प्रसाद की तरक्की के लिए मन्नते मानती है । उपन्यास में मन्नते मानना एक तरह से परंपरा बन गई हैं । नईमा-बी मिगदाद के विवाह के लिए बेचैन है । वह मिगदाद का विवाह करना चाहती है, किन्तु मिगदाद के इन्कार कर देने पर नईमा-बी मन्नत मानती हैं । “हे मोला । जो मिगदाद की शादी साथ खैरियत के हो गयी और सालभर में लड़का भवा तो मैं आँठ का मिंबर भरी हो और हाजरी करे हो । हे छोटे हजरत ! हमरी मदद करिए । बाकी लड़का सालेभर में हो जाय की हमरी ककुलत दूर जाये । ई एह मारेकह रहि योकि आखिर मिगदाद ब्याह के नाम पर बिदक काहे रहा ।”<sup>२६</sup> नईमा-बी अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए मन्नतो का सहारा लेती है । मन्नते मानने के पीछे लोगों की मानसिकता का प्रभाव रहता है और इसी मानसिकता को ग्रहण करके वह अपनी अज्ञानता को प्रस्तुत करते हैं । डॉ. राही ऐसे लोगों के प्रति धृणा व्यक्त करते हैं और साथ-ही साथ ऐसे लोगों के प्रति उनका सहानुभूति का भाव भी दिखाई देता हैं ।

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में मुनियाँ भरत कुमार पहलवान के लिए मन्नत रखती है। वह पहलवान के घर बेटा होने के लिए मन्नत रखती है। “मुनिया ने बूढ़े ताजिये पर मन्नत मान रखी थी कि जो बेटा होगा तो वह फूल की चादर चढ़ायेगी। तो भरत मुनिया को लेकर चादर चढ़ाने गया।”<sup>२७</sup> यहाँ मन्नतो पर लोगों का विश्वास दिखाई पड़ता है। डॉ. राही ने यहाँ पर लोगों की मानसिकता पर प्रकाश डाला है। इस तरह के अंधविश्वास से व्यक्ति धार्मिक आस्था की आड़ में इन्हीं विश्वासों का सहारा लेता है। अशफाकुल्लाह खाँ थानेदार की बेगम आलम आरा बेगम कोतवालन बनने का ख्वाब देखती है। आलमआरा अशफाकुल्लाह खाँ के तबादले के लिए मन्नत मानती है। “अब गाजीपूर आजमगढ या बलिया की परवा को न करता है। आशाराम पकड़ा जाये और उसके मियाँ का तबादला किसी छोटे शहर में हो जाये।”<sup>२८</sup> इस तरह के अंधविश्वासों से ग्रस्त लोग अलग अलग प्रकार की मनैतियाँ मानकर अपना विश्वास दृढ़ करने की कोशिश करते हैं। डॉ. राही इन सब बातों का खंडन करते हैं। वे समाज में फैली इस तरह की कुरुतियों का विरोध करते हैं। उनके उपन्यास के कई पात्र इन मनोतियों की लपेट में आते हैं। डॉ. राही ने अपने युग-चेता विचारों से समाज सुधार का कार्य करने का प्रयास किया है।

### ➤ भुत प्रेत सम्बन्धी अंधविश्वास :

स्वतंत्रता के बाद समाज का एक हिस्सा आज आधुनिक विकास की ओर अग्रसर है। वह विज्ञान और तकनीकी को महत्त्व देकर उनमें विश्वास रखता है। परंतु दूसरी ओर समाज का दूसरा हिस्सा है, जो धर्म की झूठी परंपरा के नाम पर चलनेवाले षडयंत्र का शिकार हो रहा है। परिणामतः विभिन्न स्तरों पर शोषण किया जा रहा है। आज विज्ञान एवं तकनीकी के बढ़ते कदम के बावजूद भारतीय समाज अपनी प्रकृति और परिवेश में

अज्ञानजनित भूत-प्रेत सम्बन्धी प्रकल्पनाओं की समाहित किए हुए हैं । समाज में शिक्षित एवं अशिक्षित लोग भूत-प्रेत, आत्मा-चुडैल जैसे अंधविश्वास के शिकार होते हुए दृष्टिगत होते हैं । डॉ. राही मासूम रज़ाने अपने उपन्यास में समाज में फैली इस तरह की अंधश्रद्धा एवं उनसे उत्पन्न परिस्थितियों का वर्णन किया है । उन्होंने समाज की इस तरह की परिकल्पना का चित्र स्पष्ट करने का प्रयत्न किया ।

आज के आधुनिक युग में समाज में रहनेवाले प्रत्येक जाति व धर्म के लोग भूत-प्रेत, जिन्न आदि में विश्वास रखते हैं और उनसे भयभीत हो जाते हैं । भूत-प्रेत सम्बन्धी बातों का खंडन करते हुए डॉ. विमलशंकर नागर अपने शोध निबंध में लिखते हैं कि “ईश्वरवाद एवं बहु देव वाद के अतिरिक्त आत्मवाद की विचारधारा भारतीय ग्रामीण समाज में प्रचलित है । आत्मवाद की विचारधारा के अनुसार मानव विश्वास करता है कि प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु के उपरान्त सद्गति नहीं प्राप्त करता है । वह भूत-प्रेत चुडैल बनकर इस धरा पर विचरण करता है । एवं मनुष्यों पर प्रहार कर अपनी तृप्ति करता है ।”<sup>२६</sup> भूत प्रेत सम्बन्धी विभिन्न मान्यताओं को लेकर तरह तरह की चर्चा होती रहती है । डॉ. राही ने अपने सर्वश्रेष्ठ उपन्यास ‘आधा गाँव’ में भूत-प्रेत सम्बन्धी मान्यताओं का चित्रण करके इस बात का खंडन किया है । उपन्यास में गोरी दादी के स्वभाव में अचानक परिवर्तन आने से वे तरह तरह की हरकते करती हैं । जिससे गाँव में कानाफूसी होने लगती है । लोगों का मानना था कि गोरी दादी पर भूत का साया है । “अम्मा और लतीफनबुआ ने तो इतफाक से उस जोगी को देख भी लिया था । वह अघेड़ उम्र का एक दाढ़ीवाला था जो गोरी दादी की पट्टी पर कुहनियाँ टिकाये जमीन पर उकड़ू बैठा हुआ था । लेकिन हम लोगों ने उसे कभी नहीं देखा ।”<sup>२७</sup> डॉ. राही खुद भूतप्रेत पर भरोसा नहीं करते थे । बचपन में डॉ. राही ने गाँव में भूत-प्रेत संबंधी कहानियाँ सुनी थी गाँव के बाहर एक गोदाम था, जिसमें भूतों

का साया था, इस तरह की अफवाह थी । डॉ. राही स्वयं उस गोदाम में जाते हैं, तब स्वयं को डर महसूस होता था । तरह तरह की आवाज आने का उनको अनुभव होता है और उनको भय-सा लगने लगता है । वे डर के मारे भाग जाते हैं । “हे तक्कन चा ! मैं नें डरते डरते आवाज दी, क्योंकि होतो यह भी सकता था कि भूत ने मुझे धोखा देने के लिए तक्कन चा की आवाज बना ली हो, इसलिए उन्हे आवाज देकर मैं गोदाम से नीचे उतर आया था कि अगर तकन-चा की जगह किसी भुत ने सिर निकाला तो मैं भाग खड़ा हूँगा; मगर न भूत ने सिर निकाला ओर न तक्कन-चा ने गोदाम में एकदम से सन्नाटा हो गया ।”<sup>३१</sup> डॉ. राही खुद इन बातों का अनुभव करते हैं और डर के मारे भाग जाते हैं । किन्तु बाद में उनको पता चलता है कि गोदाम में भुत जैसी कोई चीज नहीं थी, जिससे उनको भुत-प्रेत पर से विश्वास उठ जाता है । इमाम बाडे के बारे में भी तरह तरह की बातें मशहूर थी । लोगो का ख्याल था कि शुक्रवार की रात को जिन्नात मजलिस करते हैं, इसलिए शाम के बाद वहाँ से कोई गुजरता नहीं था । “इस इमाम बाडे के बारे में अजीब-अजीब बातें मशहूर थी । मशहूर था कि हर जुमे (शुक्रवार) की रात को इसमें जिन्नात मजलिस करते हैं । इसलिए शाम के बाद कोई इधर से गुजरता ही नहीं था । लेकिन मोहर्रम में चाँद के मानी यह होते हैं कि इमाम हुसैन कर्बला से हिन्दुस्तान आ गये हैं और इमाम बाडा जिन्नात के हाथ से निकलकर आदमियों के कब्जे में आ गया है ।”<sup>३२</sup> गाँव में इस तरह की चर्चा लोगो में भय पैदा करती है, किन्तु वास्तव में इस तरह की कोई घटना नहीं होती । केवल समाज के लोगों द्वारा इस तरह की अफवाहें फैलाई जाती हैं ।

‘ओस की बूँद’ उपन्यास में भूतों का प्रभाव दिखाई पड़ता है । वजीर हसन का लड़का पाकिस्तान निर्माण होने से अपने परिवार को छोड़कर पाकिस्तान चला जाता है । जिस के शोक में वजीर हसन की बीबी पागल सी



हो जाती है। उनकी हरकतों से हमदर्दी के बहाने औरतें तरह तरह की बातें करती हैं, जिससे सारे गाँव में अफवाह फैल जाती है कि हाजरा पर जिन का साया है। “दूसरे दिन वह बात सारे शहर में फैल गई कि हाजरा पर जिनो का बादशाह आ गया हैं।”<sup>३३</sup> बेहाल शाह धार्मिक व्यक्ति है, किन्तु वह धर्म की आड़ में भूत उतारने का काम करता है। वह स्त्रियों के भूत उतारते हैं। जो स्त्री पर भूत का साया पड़ता है, वैसी स्त्री बेहालशाह के पास आती है। “बेहालशाह को तो यह भी मालूम था कि शहरनाज के बारे में बुखारी की नीयत क्या है? बात यह है कि हमीदून नायन का भूत वह कई सालभर से उतार रहे थे। वह हर जुमे की रात को आती थी। उसकी सास उसे शाह साहब के पास छोड़ जाया करती थी। ओर शाह साहब भूत उतारने लगते थे।”<sup>३४</sup> भूत प्रेत सम्बन्धी अंधविश्वासों का सामान्य मानवजीवन पर घातक असर पड़ता है। ये भूत कभी नारियों को पडकते हैं, कभी मनुष्यों को। पुरुषों की तुलना में नारियों को ही भूत ज्यादातर परेशान करता है। ऐसी परिस्थिति डॉ. राही के उपन्यास में दिखाई पड़ती है। भूत केवल स्त्रियों को अपना शिकार बनाता है, इस तरह की बातों में कोई तथ्य नहीं है। केवल उनकी अज्ञानता और मानसिकता इस बात को महत्त्व प्रदान करती है।

‘सीन: ७५’ उपन्यास में सरला, जो कोलेज की होस्टेल में रहती है। उस होस्टेल में दो ब्लॉक थे। एक न्यू ब्लॉक और एक ओल्ड ब्लॉक, जिसमें दो ब्लॉक के बीच इमली का पेड़ था। इससे इस बात की चर्चा होती है कि इमली के पेड़ पर भूत रहता है। आजकल भूत और प्रेतों ने अपना निवास पेड़, किसी पुराने मकान आदि पर किया है, जिससे अफवाह ज्यादातर इस तरह की होती है। “न्यू ब्लॉक और ओल्ड ब्लॉक के बीच में इमली का यह पुराना पेड़ भी था जिसके बारे में हास्टलमें कहानियाँ मशहूर थी कि उस पर कोई जिन या भूत रहता है जो लड़कियों को परेशान करता है।”<sup>३५</sup> ग्रामीण जनता अपनी निरक्षरता के कारण इन बातों पर विश्वास करती है, किन्तु पढ़े

लिखे लोग भी भूत-प्रेत संबंधी बातों पर भरोसा करके अपनी अज्ञानता को स्पष्ट करते हैं। भूत-प्रेत संबंधी इन बातों का खंडन करके डॉ. राही समाज की झूठी मान्यता एवं विडंबना को व्यक्त करते हैं।

### ➤ हिन्दू-मुस्लिम आपसी सम्बन्ध :

स्वतंत्रता के बाद भारत और पाकिस्तान के विभाजन के बाद देश के सामने सब से बड़ी समस्या हिन्दु और मुसलमान के बीच अलगाव की थी। इससे दोनों धर्मों के बीच अंतराल आ गया था। लोगों का मानना था कि पाकिस्तान का निर्माण मुसलमानों के लिए किया गया था। अतः पाकिस्तान में हिन्दुओं को और भारत में मुसलमानों को परेशानी का सामना करना पड़ा। डॉ. राही ने इन समस्याओं का देखा और अनुभव किया। हिन्दु और मुसलमानों में जहाँ अलगाव देखा जाता था, वहीं कई परिवारों ने आपस में मीठे सम्बन्ध भी बनाये रखे थे। गंगोली में कई परिवार ऐसे हैं, जो हिन्दू मुसलमान में किसी भी प्रकार का भेदभाव न मानकर प्रेम और सहानुभूति के साथ एक दूसरे के सुख दुःख एवं त्यौहारों में शरीक होते हैं। उनमें सांप्रदायिक संघर्ष की अपेक्षा हिन्दु मुस्लिम धर्मावलम्बियों के बहुमत से परस्पर स्नेह तथा सोहार्द की भावना अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है।

डॉ. राही मासूम रज़ाने हिन्दू मुस्लिम एकता का वर्णन करते समय अल्पमात्र भी अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया। गंगोली के मुसलमानों में धर्म और भाषा के लिए कोई अलगाव की भावना नहीं है। दोनों धर्म के माननेवाले अपनी अपनी जगह खुश हैं। वे एक दूसरे की धार्मिक मान्यताओं का आदर करते हैं। हिन्दू और मुसलमान के पारस्परिक प्रेम एवं परस्पर सद्भाव तथा सहयोग के अनेक उदाहरण बिखरे पड़े हैं। 'आधा गाँव' उपन्यास में हिन्दू लाठियाँ लेकर वारीखपुर वाले मुसलमानों को मारने और उनके घर जलाने के लिए एकत्रित होते हैं, तब गाँव के ठाकुर मुसलमानों को

बचाते हैं । यह घटना केवल गंगोली में रहनेवाली आम जनता की मानसिकता को उजागर नहीं करती, अपितु उस समय के भारत के आम आदमी की मानसिकता को दर्शाती है । यहाँ हिन्दू-मुसलमान एकता की जड़े गहरी हैं । गंगोली में शिया परिवारों में आपसी स्पर्धा, बैर, ईर्ष्या चाहे जो कुछ भी हो, परंतु इसका असर कभी हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों पर नहीं हुआ । गंगोली में दोनों धर्म के लोग आपस में मिल जुलकर रहते हैं । ‘ओस की बूँद’ उपन्यास में हिन्दू-मुसलमान पात्र अपने धर्म और विश्वासों का पालन करते हुए भी धर्म को परंपरागत अपनी मैत्री और सौहार्द के बीच नहीं आने देते । वजीर हसन और दीनदयाल दोनों गहरे दोस्त हैं । वजीर हसन कट्टर मुस्लिम लीगी और पाकिस्तान के समर्थक हैं, तो दीनदयाल पक्के कांग्रेसी हैं । लेकिन उनकी मित्रता में राजनीति दरार उत्पन्न नहीं कर सकती । वजीर हसन के शब्दों में—

‘मियाँ तुम नहीं समझाओगे ये बातें । वह दीनदयाल जो अब बाबूदीन दयाल हो गया है ना, और जो मुसलमानों को हर वक्त गालियाँ दिया करता है ना, मेरा लंगोटिया यार है हमदोनों साथ अमरुद चुराने जाया करते थे । हम दोनों ने एक साथ कुंजडों की गालियाँ खाई हैं जो मैं चला जाऊँगा तो उसके बिना वहाँ अधरा रहूँगा ओर मेरे बिना वह यहाँ । ऐसी बहुत सी बातें हैं मेरे पास, जो मैं सिर्फ दीनदयाल से कह सकता हूँ ओर उसके पास भी ऐसी हजारों बातें हैं, जो वह सिर्फ मुझी से कह सकता है । तो उन बातों का क्या होगा ? मुस्लिम लीग हो या महासभा, वह दीनदयाल और वजीर हसन से बड़ी नहीं है ।’<sup>३६</sup> इससे यह बात स्पष्ट होती है कि धर्म मानवीय सम्बन्धों के बीच बाधक नहीं बन सकता । इसी तथ्य को वजीर हसन का चरित्र उजागर करता है ।

‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में सांप्रदायिक दंगों का चित्रण हुआ है । इन सांप्रदायिक दंगों में हिन्दू-मुसलमान दोनों में संघर्ष चल रहा है । दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे हैं, फिर भी ऐसे वातावरण में भी भाइचारे की

भावना के दर्शन होते हैं । अब्बास की पत्नी सैयदा को हिन्दुओं से नफरत करती है, किन्तु उनके घर का नौकर राममोहन के प्रति सैयदा के मनमें लगाव रहता है । राममोहन हिन्दू है, फिर भी सैयदा राममोहन को बताती है कि “और सुन ! कल अपनी बीबी ओर बच्ची को कफरू उठते ही उस जोपडपट्टी से यहां उठा ला ! क्या पता वहाँ कब क्या हो जाए !”<sup>३७</sup> सैयदा के मन की व्यथा अपने नौकर के प्रति संवेदना प्रस्तुत करती है । यहाँ पर सम्बन्धों की जंजीरो से दोनों बंधे हैं । डॉ. राही मासूम रज़ाने इन रिश्तों और सैयदा के माध्यम से हिन्दू मुसलमान के आपसी संबंधों को एक नया आयाम दिया है । सैयदा हिन्दुओं से नफरत भी करती है और उनके प्रति संवेदना रखते हुए भी दिखाई पड़ती है । “स्वर्गीय सैयद अमीर अलीकी बड़ी बेटी सैयदा मूसवी हिन्दुओं को ग्रास्त हो जाने की बददुआ भी देती है और राममोहन के बीबी बच्चों के लिए परेशान भी है ।”<sup>३८</sup> यहाँ लेखकने हिन्दू-मुस्लिम जैसे धार्मिक भेदभाव को भुलकर मानवधर्म पर ज्यादा बल दिया है । इतना ही नहीं डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में दोनों धर्म के लोगों को एकता के बंधन में बाँधने का प्रयास किया है ।

‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्म के लोग एकदूसरे के धर्म में श्रद्धा रखते हुए अपने धर्म का पालन करते हैं । उपन्यास में जातिगत भेदभाव दिखाई देता है । कई पात्र ऐसे हैं, जो एक दूसरे का छुआ भी नहीं खाते, किन्तु फिर भी उनके आपसी सम्बन्धों में कोई गिरावट नहीं आती । इस बात को डॉ. राही ने अपने पात्रों के संवाद द्वारा प्रस्तुत किया है – “तुम्हारे नाना मियाँ हिन्दुओं का छुआ नहीं खाते तो क्या गोरीशंकर चा से उनकी दोस्ती नहीं है ।”<sup>३९</sup> साथ ही साथ सकीना जैसा पात्र भी है, जो हिन्दुओं से नफरत करती है और महेश को राखी बाँधती है । महेश हिन्दू है और महेश के पिता और सकीना के पिता सैयद साहब गहरे दोस्त हैं । दोनों ही परिवारने किसी भी धार्मिक कट्टरता में न बँधकर आपस में सम्बन्ध बनाये

रखे है । हिन्दू-मुस्लिम दंगो में महेश सकीना को अपने घर ले जाता है । यहाँ पर डॉ. राही ने हिन्दू-मुस्लिम परिवारों में विश्वास और सौहार्द का एक दृष्टांत प्रस्तुत किया है । हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों को लेकर डॉ. राही के अंतरमन में शायद कुछ खौल रहा था, जिसे उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से व्यक्त किया है ।

‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों की एक मिशाल है । उपन्यास में कटरा मीर बुला की में रहनेवाले हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही संघर्षों के होते हुए भी आपस में सम्बन्ध मजबूत बनाये रखते हैं । उसमें देशराज-जो हिन्दू है, फिर भी शम्सू मियाँ के परिवार के साथ उनका अतूट रिश्ता है । देशराज शम्सूमियाँ की बेटी शहनाज को बहन मानता है । दोनों में भाई-बहन का प्यार दिखाई पड़ता है ।

वह बार-बार उनको अम्माँ कहकर चिढ़ाता है । देशराज शहनाज की पढ़ने की इच्छा को पूरी करने के लिए सुक्कन और शम्सूमियाँ को समझाता है । वह बताता है कि “देखिए चाची ! अममा को आप रुला नहीं सकती है ए तरह । साफ बात है । हम मास्टरबदर का टयुशन लगवाये देते हैं । रोज आके पढ़ा जाया करि है । मुद्रा बिल्लों को पता चले ।”<sup>४०</sup> शहनाज भी हर साल देशराज को राखी बाँधकर अल्लाह मियाँ से अपने भाई के लिए दुआएँ माँगती है । वहू अल्लाह मियाँ से कहती है कि “अल्लाह मियाँ ! चाहे अम्माँ पुकारे चाहे कुछ पर मेरे भैया को सलामत रखना ।”<sup>४१</sup> शहनाज की इस तरह की दुआओं से पता चलता है कि यहाँ पर हिन्दू मुस्लिम में आपस में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं दिखाई देता । यहाँ पर मानवीय प्रेम और सहानुभूति की इमारत पर सम्बन्ध टिके हुए हैं । डॉ. राही खुद हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थन करते हैं । उनके विचार से सभी धर्म एक हैं । उनमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है । इसलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में हिन्दु और मुसलमान दोनों धर्मों के लोगो में आपसी संबंधों को स्थापित किया है ।

दोनों धर्म के लोगो में प्रेम, सहानुभूति, करुणा आदि गुणों के कारण संबंध टिकते हैं । इसलिए डॉ. राही का यह प्रयास सफल होता है ।

### ➤ धर्मनिरपेक्षता :

भारतीय समाज में सर्व धर्म समभाव की भावना रही है, जो हमारी संस्कृति रही है । स्वतंत्र भारत में धार्मिक आचरण सम्बन्धी पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है । भारत में 'धर्म' शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में किया गया है, भारत एक ऐसा देश है, जहाँ हितचिंतकों ने गर्व पूर्वक कहा है कि भारत में विभिन्न धर्मों के माननेवाले अपने अपने धर्म का अनुशरण करते हुए कल्याण को प्राप्त होते हैं । 'धर्मम् कुधर्मतेत् स्पष्टतः' यहाँ कहा गया है कि किसी धर्म का विरोध करनेवाला धर्म, धर्म न रहकर कुधर्म बन जाता है । विदेशी धर्मों की भाँति, धर्म के नाम पर किसी प्रकार के प्रतिबंध लगाना अथवा कठमुल्लापन का अभय प्रदान करना भारत को कभी भी मान्य नहीं रहा । इसीलिए हमारे देश के कर्णधारों ने इसे धर्मनिरपेक्ष कहकर इस शब्द को नया आयाम प्रदान किया है ।

आज आजादी के इतने साल के बाद लोग जितने सांप्रदायिक हो गये हैं, इससे पहले कभी भी नहीं थे । वे हिन्दू, मुस्लिम, सिख और इसाई तो हैं, लेकिन भारतीय होने का गर्व कम है । एक ओर सांप्रदायिक दलों की राजनीति और दूसरी ओर सरकार की अवसर वादिताने अनेक लोगों को धर्मनिरपेक्षता को तिलांजली देने के लिए विवश कर दिया है । धर्म भाव जगत की एक अत्यधिक संवेदनशील वृत्ति है । धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता तब होती है, जब धर्मसापेक्षता का बोलबाला हो । डॉ. राही बचपन से ही धर्म के विकृत रूप के प्रति विद्रोही भाव अपनाये हुए थे । उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों के अनेक पहलुओं को बड़ी सफाई और प्रभावशाली ढंग से उभारा है । डॉ. राही की मान्यता थी कि धर्म के नाम पर पारस्परिक वैमनस्य कभी भी कल्याणकारी नहीं

हो सकता । इस देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्ध आत्मीयता से भरे रहे हैं । परिणाम स्वरूप दोनों धर्म के लोग एक दूसरे के रश्म रिवाज त्यौहार को मिलजुलकर मनाते हैं । विविध धर्म के लोग एक साथ मिलजुलकर रहते हैं । अतः परस्पर एक दूसरे के प्रति धर्मावलम्बी और सहिष्णुता एवं उसके धर्म के प्रति आदर का भाव रखते हुए देश और समाज में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते हैं । अपने विश्वास पर दृढ़ रहते हुए भी दूसरे के विश्वास का आदर करना ही भारतीय मानव जीवन का मूल मंत्र है । इसी मूल मंत्र की संक्षिप्त व्याख्या है – ‘विविधता में एकता’ । डॉ. राही के विचारों में इसे धर्मनिरपेक्षता कहा गया है । उनके उपन्यासों में धर्मनिरपेक्षता के दर्शन हमें कई प्रसंगों में मिलते हैं, जिसमें डॉ. राही ने धर्म तथा धार्मिक भावनाओं के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में हिन्दू और मुसलमानों के परस्पर सद्भाव एवं मुसलमानों के राष्ट्रप्रेम के उदाहरण अनेक प्रसंगों में मिलते हैं । जिससे यह ज्ञात होता है कि हिन्दू और इस्लाम संस्कृति में परस्पर पर्याप्त साम्य है । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में दोनों धर्मों के विवाह के आयोजन सम्बन्धी समानता को प्रस्तुत किया है । इसमें शिया मुसलमानों ने विवाह पर गाये जानेवाले गीत हिन्दुओं के विवाह में भी गाये जाते हैं । जिससे दोनों धर्म में साम्यता दिखाई देती है । बारात के आने पर लड़कियों और औरतों द्वारा गाये जानेवाले गीत डॉ. राही इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं ।

“बड़ी धूम-गजर से आया री बन्ना,  
कुम्हार की गली हो आया री बन्ना ।  
अपनी अम्मा नचाता आया री बन्ना,  
सब लोग कहे कुम्हार का जना ।  
बड़ी धूम-गजर से आया री बन्ना ।  
महेतर की गली हो आया री बन्ना,

सब लोग कहे मेहतर काजना ।

बड़ी धूम-गजर से आया री बन्ना ।<sup>४२</sup>

इस तरह के गीत हिन्दुओं के विवाह प्रसंग पर भी गाये जाते हैं । ऐसे कई प्रसंग हैं, जिनमें दोनों धर्म में साम्य नजर आता है । उपन्यास में ठाकुर पृथ्वीपालसिंह बिनसांप्रदायिकता में विश्वास रखते हैं, जो सभी धर्म को समान मानते हैं । फुन्नन मियाँ की लड़की रीजये के जनाजे में हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना एवं संवेदनात्मक सम्बन्धों का जिक्र किया गया है । फुन्नन मियाँ को बिरादरी में से निकाल दिया जाता है । अतः फुन्नन मियाँ की लड़की के जनाजे में कोई मुसलमान शरीफ नहीं होता । रजिये के जनाजे में ठाकुर पृथ्वीपालसिंह, झिंगुरिया आदि हिन्दू उसको कंधा देते हैं और ठाकुर का परिवार जनाजे में जुड़ता है । जिसका वर्णन डॉ. राही इस प्रकार करते हैं “रीजये का जनाजा निकला तो ताबुत फुन्नन मियाँ, ठाकुर पृथ्वीपालसिंह, झिंगुरिया ओर अनवारुल हसन के कंधों पर था और ठाकुर कुँवरपालसिंह का सारा परिवार जनाजे के साथ ।”<sup>४३</sup> हिन्दु मुस्लिम एकता की जड़े यहाँ पर गहरी दिखाई देती हैं । मुहर्रम जैसे पवित्र त्योहारों में बड़े ताजिये के आगे हिन्दू ही चलते हैं । ताजिये में दोनों धर्म के लोग भाग लेते हैं । ताजिया निकलने पर गाँव की शकिने, जुलाहिने, आहीरने और चमारिने ताजिये में शरीक होती हैं । ताजिये में आहीर भी हिस्सा लेते हैं । “सोजखाबों के आगे लठठबंध आहीरो का एक गोल होता । यह तो जिया इतना बड़ा हुआ करता था कि गाँव की गलियों से नहीं निकल सकता था । उलतियाँ गिरानी पड़ती थी । लठठबंध आहीरो का गोल उलतियाँ गिराने ही के लिए बड़े ताजिये के आगे आगे चला करता था ।”<sup>४४</sup> गाँव में धार्मिक कट्टरता के साथ साथ बिनसांप्रदायिकता के उदाहरण अनेक प्रसंग पर देखे जाते हैं । गंगोली में ऐसे कई भोले भाले श्रद्धालु हिन्दू परिवार हैं, जिन के घरों से मजारों पर मलिदा जाता है, कब्रगाहों पर चादर चढ़ाई जाती है । इसमें इन लोगों की श्रद्धा और विश्वास के दर्शन होते हैं ।



मुहर्रम के अवसर पर निकाले जानेवाले ताजियों में दोनों पट्टियों के जमींदार भाग लेते हैं । यहाँ सामान्य व्यक्ति के लिए मुहर्रम के यह ताजिये हिन्दू-मुसलमान भेद के बिना सच्ची भावना और विश्वास का साधन हैं । हिन्दू-मुस्लिम एकता गाँव की विधवा ब्राह्मणी में नजर आती है । जो हिन्दू होते हुए भी मुसलमानों के त्यौहार मुहर्रम में श्रद्धा एवं विश्वास बनाये बैठी है । “एक साल तो ऐसा हुआ कि एक बेवा ब्राह्मणी की उलती मजदूरों की भूल से जरा कम निकली हुई थी । बड़ा ताजियाँ उसे गिराये बिना गुजर गया । वह बेवा फूट-फूटकर रोने लगी कि इमाम साहब उससे रुठ गये हैं । इसलिए जरूर कोई मुशीबत आनेवाली है, नहीं तो भला ऐसा हो सकता है कि बड़ा ताजियाँ उसकी उलती गिराये बिना चला जाता । वह अपने दो बेटों को बड़े ताजिये के सामने खड़ा कर दिया, फिर उसने ताजिये की अनदेखी आँखों में आँखें डाल दी और बोली ‘इ इमाम साहिब ! हमार लड़कन के कछऊ हो गइल ना, तठीक न होई !’”<sup>४५</sup> गंगोली के लोगों में मजहल चाहे अलग हो सकते हैं, किन्तु दोनों की धार्मिक भावनाओं में कभी भेदभाव नहीं था ।

फुन्नन मियाँ उनलोगों का प्रतीक हैं, जो हिन्दू-मुस्लिम एकता के केवल हिमायती ही नहीं उसके स्वयं उदाहरण भी हैं । फुन्नन मियाँ मंदिर बाँधने के लिए मातादिन पंडित को पाँच बीघे जमीन दान में देते हैं । डॉ. राही ने गंगोली के हिन्दू-मुस्लिम एकता का वर्णन करते समय जरा भी अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया । गंगोली के हिन्दू-मुस्लिम परम्पराओं और मान्यताओं से बँधे हुए हैं । लोगों की इस तरह की मानसिकता से लेखक यह बताना चाहते हैं कि लोग हिन्दु मुसलमान के नाम पर कभी नहीं बँटे । दोनों धर्म के माननेवाले एक दूसरे की धार्मिक मान्यताओं का आदर करते हैं ।

‘असंतोष के दिन’ उपन्यास में विष्णु महरोत्रा जो धर्मनिरपेक्षता में विश्वास करता है । वह अपने बेटे रवि और फात्मा की शादी स्वीकार कर लेता है । किन्तु महरोत्राजी की पत्नी इन रिश्तों को स्वीकारने के लिए तैयार

नहीं है । फिर भी महरोत्राजी उनको समझाने की कोशिश करते हैं, किन्तु बाद में वह अपनी मानसिकता के साथ समाधान करती हैं । “वह कान्ता भी तो शायद इसी सत्य का एक रूप है जो मुसलमानों का छुआ नहीं खाती जिसके घर में धर्मनिरपेक्षता के बरतन अलग है पर जो रवि फात्मा और माजिद संगीता ब्याहो का स्वागत करती है ।”<sup>४६</sup> धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा से प्रवृत्त डॉ. राही संकुचितता से उपर उठने की बात अपने उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं । डॉ. राही हमारी इस मानसिकता को यथार्थ रूप से उजागर करते हैं कि धर्मनिरपेक्षता की बातें करना अलग है और उस पर अमल करना दूसरी बात है । वर्तमान समय में धर्मनिरपेक्षता का बुर्खा इतना गहरा हो गया है कि उसके पीछे का असली चेहरा पहचानना मुश्किल हो गया है । चाहे हमारा वैयक्तिक जीवन हो, चाहे विष्णुजी का, चाहे कान्ता का अथवा सैयदा का, जो धर्मनिरपेक्षता के उजाले को अंदर घूसने नहीं देता । इन वास्तविकताओं को देखकर ही अब्बास जैसे सच्चे धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति का विश्वास डगमगाने लगता है । इस तरह डॉ. राही की कथा यात्रा मानवता, धर्मनिरपेक्षता और हिन्दू-मुस्लिम अैक्य की खोज यात्रा है, जिसमें साक्षी उनके उपन्यास के पात्र है ।

‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में टोपी को ट्रेन में मुसाफरी करते समय ट्रेन के डिब्बे में एक पण्डितजी से मुलाकात हो जाती है । टोपी जल हिन्दू-मुस्लिम की बातें करता है, तब पण्डितजी इन भेदभावों का खंडन करते हैं और हिन्दू-मुस्लिम एकता का समर्थन करते हैं । वह बताते हैं कि “हिन्दू-मुसलमान का भेदभाव झूठा है बेटा ! पण्डितजी ने कहा । वह तो भगवान की लीला है ।”<sup>४७</sup> पण्डितजी की बातों से धर्मनिरपेक्षता एवं हिन्दू मुस्लिम एकता का संदेश मिलता है । ‘कटरा बी आर्जू’ उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्म के लोग आपस में मिलकर अपना त्यौहार मनाते हैं । कटरा मीर बुला की में होली और मुहर्रम दोनों त्यौहार एक साथ आने के कारण दोनों ही धर्म के

लोग एक दूसरे के त्यौहारों में शामिल होते हैं। शम्सूमिया और मौलवी खेराती दोनों घर से निकलकर पहलवान के घर जाते हैं। दोनों हर साल होली खेलते हैं, किन्तु जुम्मे के कारण इस साल होली नहीं खेल सकते। शम्सूमियाँ इसका कारण बताते हुए कहते हैं कि “कभईऐयसा भया हैं कि हम होली न खेले। अभईरंग खेलेंगे तो फिर न हाए को पड़ेगा। जुम्मे का वखत निकल जायेगा।”<sup>४८</sup> जब इन मुसलमानों पर धार्मिक कट्टरता का दोस लगाया जाता है, तब पहलवान इन धार्मिक कट्टरता का विरोध करता है। पहलवान हिन्दू-मुसलमान के बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं मानता। “खबरदार जो इहाँ हिन्दू मुसलमान का चक्कर चलाया इस सब करना है तो अतर सुइर्या जाव या अटाने का चक्कर लगाव।”<sup>४९</sup> उधर इतवारीबाबा भिख मंगो का युनियन बनाते हैं। वह भीख माँग कर अपना जीवन निर्वाह करता है। इतवारीबाबा के मन में भी हिन्दू-मुस्लिम के बीच कोई भेदभाव नहीं है। क्योंकि कोई हिन्दू फकीर को पेसा देना चाहता है, अगर हिन्दू फकीर न मिले, तो वह मुसलमान फकीर को भी भीख देता है। यहाँ पर वह इस बात को नहीं सोचता कि हिन्दू फकीर है या मुसलमान। डॉ. राही इस तरह के उदाहरण प्रस्तुत करके मानवतावादी विचारधारा को समर्थन देते हैं।

उपर्युक्त धार्मिक चेतना में धर्म को मनुष्य के उन्नयन एवं आदर्श हेतु प्रस्तुत किया गया है। आज के आधुनिक युग में मनुष्य धर्म को अधर्म में बदल रहा है। इससे समाज में अनैतिकता फैलने की संभावना का संकेत मिलता है। आज एक ओर वैज्ञानिक विकास से धर्म को कल्पना विलास की वस्तु समझने का प्रयत्न होता है, तो समाज के निम्नवर्ग के लोग धर्म की आड़ में विकास मान विभिन्न धार्मिक गैरकृत्यों, अंधश्रद्धा की लपेट में आकर शोषण का शिकार हो रहे हैं। धर्म के नाम पर बाह्य आडंबर में वृद्धि होती जा रही है। आज का मनुष्य समाज में जीवन को धर्म के आधार पर इश्वरीय शक्ति पर धकेलकर जीवन को परावलंबी बनाता जा रहा है। अतः

डॉ. राही मासूम रज़ाने अनेक समसामयिक घटनाओं द्वारा धर्म के प्रति ज्ञानात्मक जागृति की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हुए धार्मिक चेतना को व्यक्त किया है । उन्होंने धार्मिक चेतना के माध्यम से भारतीय धार्मिक विश्वास, आस्था, अनास्था, का सामायिक पृष्ठभूमि में परिवर्तन का संकेत किया है ।

डॉ. राही मासूम रज़ाने धार्मिक चेतना के माध्यम से धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचारों और आडंबरो का विरोध किया है । समाज में धार्मिक पाखंडों का विरोध करते हुए सर्व व्यापी, सर्व कल्याणकारी, आदर्श जीवन पद्धति को धर्म के रूप में स्वीकारने का संकेत किया है ।

## संदर्भ सूची :

क्रम	संदर्भ	पृष्ठ
१.	हिन्दी शब्द कोश - डॉ. हरदेव बाहरी	४१६
२.	धर्म और राजनीति - डॉ. रामजीमिश्र	३३
३.	धर्म और समाज - डॉ. राधाकृष्णन	४५
४.	पंत के काव्य में समाज एवं संस्कृति - डॉ. गीता दुबे	६३
५.	समाजशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. डी.आर. सचदेव	६२६
६.	रामदरश मिश्र के कथा साहित्य में ग्राम्य जीवन - डॉ. वी.पी.चोहाण	२१७
७.	धर्म और राजनीति - डॉ. रामजी मिश्र	१७
८.	धर्म और समाज - डॉ. राधाकृष्णन्	८६
९.	टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा	२५
१०.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	४२
११.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	७३
१२.	नीम का पेड़ - डॉ. राही मासूम रजा	८१
१३.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	२७
१४.	ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	५६
१५.	ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	६०
१६.	असंतोष के दिन - डॉ. राही मासूम रजा	५२
१७.	दिल एक सादा कागज - डॉ. राही मासूम रजा	११-१२
१८.	हिम्मत जौनपुरी - डॉ. राही मासूम रजा	३२
१९.	हिम्मत जौनपुरी - डॉ. राही मासूम रजा	११२
२०.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	६०
२१.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	१०३
२२.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	१०३
२३.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	७५
२४.	आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	११०

२५. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	१६३
२६. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	१८६
२७. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	२६
२८. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	१५०
२९. रामदरश मिर के उपन्यासों में यथार्थ - डॉ. झेड. एम. जंधाले	२१७
३०. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	२७
३१. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	३३
३२. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	३७
३३. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	३६
३४. ओस की बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	७६
३५. सीन: ७५ - डॉ. राही मासूम रजा	२६-३०
३६. ओस बूँद - डॉ. राही मासूम रजा	१६-२०
३७. असंतोष के दिन - डॉ. राही मासूम रजा	१८
३८. असंतोष के दिन - डॉ. राही मासूम रजा	२०
३९. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा	३८
४०. कटरा बी. आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	२३
४१. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	२४
४२. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	१६६
४३. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	१६६
४४. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	७१
४५. आधा गाँव - डॉ. राही मासूम रजा	७१-७२
४६. असंतोष के दिन - डॉ. राही मासूम रजा	८५
४७. टोपी शुक्ला - डॉ. राही मासूम रजा	७२
४८. कटरा बी आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	८०
४९. कटरा बी. आर्जू - डॉ. राही मासूम रजा	८१

## उपसंहार

साहित्य में मनुष्य जीवन तथा परिवेश प्रतिबिंबित होता है । साहित्यकार समाज दृष्टा एवं समष्टा के रूप में साहित्यकृति में जीवन सत्य के एकाधिक पक्षों को विशद् कर उसे उभारते हुए सामाजिक यथार्थ का दृढ संकेत करने का प्रयास करता है । हिन्दी साहित्य में उपन्यास आधुनिक युग की महत्त्वपूर्ण विद्या है, उसमें समकालीन परिवेश समाज के वैचारिक मानसिक संघर्ष एवं समस्या के माध्यम से व्यक्त किया है, जिसमें युग-चेतना बहु आयामी संकल्पना है । जिसका व्यापक संबन्ध समाज की ज्ञानात्मक जागरुकता से हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में डॉ. राही मासूम रज़ा की गिनती की जाती है । डॉ. राही ने प्रेमचन्द के बाद उत्पन्न परिस्थितियों को जागरुकता की वाणी दी है । उन्होंने अपने प्रत्येक उपन्यास को अपने नीजी जीवन बिम्ब में धुला देने का सफल प्रयास किया है । यहाँ डॉ. राही के उपन्यासों का क्रमागत अध्ययन करके, उनके समय की कथाधारा के संदर्भ में उन मुल स्रोत के अनुसंधान का विनम्र प्रयास किया गया हैं । इन उपन्यासों में डॉ. राही के वैचारिक जगत का निर्माण हुआ हैं । उन्होंने अपने युग की युग-चेतना सबन्धी सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक समस्याओं का चिंतन मनन किया है, और उन्हे अपने जीवन-अनुभवों तथा व्यक्तित्व का योग देकर नवीन रूप प्रदान किया हैं ।

डॉ. राही के उपन्यासों में युग-चेतना की अभिव्यक्ति हुई हैं । साहित्य एवं समाज में समय समय पर युग चेतना सबन्धी प्रश्न उठाये गये हैं । इसलिए डॉ. राही के साहित्य में निहित विविध विषयक चेतनाओं का अवलोकन करने पर लगा कि उनकी युग चेतना कबीराई अंदाज लिए हुए सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की ओर उन्मुख रही है । उन्होंने वर्तमान जीवन में व्याप्त विकृतियों

को जहाँ देखा, वही उनकी चेतना पूरी तीव्रता के साथ भभक उठी । विचार और अभिव्यक्ति के स्तर पर उनकी युग चेतना सतत परिष्कृत और संशोधित बनती रही है ।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि डॉ. राही के उपन्यासों में तत्कालीन युग चेतना सहज ही समन्वित होती है । प्रत्येक रचनाकार की कृति में तत्कालीन युगीन जीवन और उससे संबंधित घटनाओं का विवरण होता है । इसलिए युग चेतना और साहित्य को अन्योन्याश्रित माना जाता है । युग चेतना का महत्त्व देखे तो समाज में जो त्रुटियाँ प्राप्त होती हैं उनका निराकरण लाने के लिए यह उपयोगी हो सकती है । युग-चेतना मानव समाज को एक नई दिशा प्रदान करती है । इस कार्य के लिए सब से प्रबल माध्यम साहित्य है । युग चेतना गतिशील एवं परिवर्तित है । वह समयानुसार बदलती रहती है । युग चेतना का संबंध आधुनिकता के साथ निकटता का है । आधुनिकता के बदलते दृष्टिकोण से युग चेतना का जीवन मूल्य एवं युग-बोध के साथ विभिन्न सम्बन्ध होता है । युग चेतना किसी भी राष्ट्र को शक्तिशाली और आदर्श बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं ।

डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में सामाजिक चेतना को उजागर किया गया है । भारतीय समाज आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण कर रहा है । इसे पाश्चात्य संस्कृति का आक्रमण माना जाता है । उपन्यास साहित्य में ऐसे पाश्चात्य रंग में रंगे समाज के आधार पर समाज की विडंबनाओं का यथार्थ चित्रण किया है । सामाजिक चेतना में समाज की गहराइयों को समझकर डॉ. राही ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अपने विचारों को वाचा दी है । जिससे वह समाज सुधार का कार्य कर सके । डॉ. राही के उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक गतिविधियों का अंकन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । क्योंकि समाज एवं उसकी परिस्थितियों के द्वारा ही किसी भी रचनाकार की युग-चेतना भविष्य के लिए सुखद मार्ग की तलाश



में क्रियाशील होती है । यही कारण है कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब माना जाता है । जनता की चित-वृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य में भी परिवर्तन होना अनिवार्य है । डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में समाज की वर्तमान विभिन्न समस्याओं को पकड़कर उनका समाधान साहित्य के माध्यम से ढूँढ़ा है । सामाजिक चेतना के अंतर्गत कई पहलुओं पर विचार विमर्श किया गया है ।

सामाजिक चेतना के अंतर्गत डॉ. राही ने नारी जीवन एवं उनसे जुड़े विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है । भारतीय परंपरा के अनुसार नारी को पूजनीया मानी गयी है । किन्तु आज के आधुनिकता एवं भौतिकवादी युग में नारी को पूज्या के स्थान पर भोग्या माना जाता है । प्रवर्तमान समाज में समाज की पुरानी सोच एवं विचार के कारण आज नारी कई समस्याओं के साथ जीवन में संघर्ष करती है । डॉ. राही के उपन्यासों में ऐसी नारी की स्थितियों को पहचानकर सामाजिक चेतना के रूप में प्रस्तुत किया गया है । समाज के सारे नीति नियम, धर्म, कानून-व प्रतिबंध केवल नारी के लिए ही बने हो, ऐसा प्रतीत होता है । अज्ञान व प्रतिबंध की चार दीवारों में बंध नारी, अनमेल विवाह, विधवाप्रथा, पर्दाप्रथा, दहेजप्रथा, तल्लाक की समस्या जैसी कृत्स्न सामाजिक बुराइयों के नीचे दबी हुई है । नारी की विवाहजन्य समस्याएँ अधिक दिखाई देती है । डॉ. राही के उपन्यासों में इस प्रकार की कुप्रथाओं का चित्रण एवं उसकी संपूर्ण विसंगतियों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है । भारतीय समाज में विधवाओं की दशा दयनीय है । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में उन्मुल हबीबा ऐसी ही विधवा है जो समाज द्वारा त्याज्य मानी जाती है । उन्हें किसी शुभ अवसर पर उपस्थित होने का अधिकार नहीं होता । ‘कटरा बी आर्जु’ उपन्यास की महनाज जो विधवा होने से ससुराल से अत्याचार का सामना करना पड़ता है ।

नारी की विवाहजन्य समस्या में कई समाज में अनमेल विवाह की समस्या नजर आती है। 'आधा गाँव' उपन्यास में मुइनुद्दीन जो विकलांग है उनकी शादी बदरुन से तय होती है। 'कटरा बी आर्जु' उपन्यास में दहेज के अभाव के कारण शम्सूमियाँ अपनी लड़की का विवाह किसी बड़ी उम्र के व्यक्ति के साथ तय करते हैं। समाज में फैली नारी संबंधी समस्या को चित्रित किया है। तलाक आज के युग में सबसे बड़ी समस्या है। डॉ. राही ने अपने उपन्यास के कई पात्रों को इस समस्या का सामना करते दिखाया है। 'असंतोष के दिन' उपन्यास में बच्चों के विवाह के संदर्भ में पति-पत्नी में संघर्ष होता होता है। जिससे अब्बास और सैयदा तलाक लेने का निश्चय करते हैं। 'आधा गाँव' उपन्यास में वृद्धावस्था में दिलगीर साहब अपनी बेगम को तलाक देते हैं। डॉ. राही नारी यौन विषयक चेतना को भी प्रस्तुत करते हैं। उनके उपन्यासों में कई नारी पात्र अपने आपको भोग विलास में लुप्त रखती हैं। आज स्त्री-पुरुष के बीच अनैतिक संबंध बढ़ते जाते हैं। स्त्री-पुरुष के बीच यौन संबंधों, जिसमें अनैतिकता की अंधी दौड़ के परिणाम स्वरूप यौन-उत्छृंखला एवं मूल्यों की क्षणभंगुरता के कारण मध्यम वर्गीय युवाओं के वैयक्तिक जीवन की असफलता को प्रस्तुत किया है। नारी के चरित्र के विभिन्न स्वरूपों को प्रस्तुत किया है। जिसमें 'ओस की बूँद' की राधिका, पुष्पलता, 'आधा-गाँव' की महेरुनिर्या, 'कटरा बी आर्जु' की भाग्यवती, 'दिल एक सादा कागज' की गुलबहरी आदि नारियाँ, भोगवादी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं। निम्न एवं उच्च जातियों में आपसी यौन संबंध उनके जीवन की परिवर्तित नैतिक मान्यताओं का उद्घाटन करते हैं। आधुनिक रीति-नीतियों के संक्रमण ने यौन चेतना को गतिशील बनाया है। डॉ. राही ने प्राकृतिक परिवेश तथा संरचनात्मक सामाजिक स्वरूप-दोनों को ही यौन संबंधों की नई स्थितियों की उत्पत्ति और उनसे उत्पन्न नई मानसिकता के द्योतक के रूप में चित्रित किया है। डॉ. राही के उपन्यासों में दाम्पत्य जीवन में आयी हुई विकृतियों

की अभिव्यक्ति हुई है बदलते परिवेश और आपसी मनमुटावों के कारण दाम्पत्य जीवन में दरारे पड़ती है । इसमें कई कारण हैं, जिससे दाम्पत्य जीवन में असफलता मिलती है । अनमेल विवाह, पति-पत्नी में वैचारिक भिन्नता, पारस्परिक दुर्व्यवहार के कारण संबंध बिगड़ते हैं । 'दिल एक सादा कागज' में रुक्या और शंकरदयालजी, 'सीन :७५' में फन्दाजी और राधिका जैसे कई पात्र हैं जिनके दाम्पत्य जीवन में दरारे पड़ती हैं । इसके साथ ही आदर्श और यथार्थ के बीच फँसे आदमी की दयनीयता को व्यक्त किया है । मनुष्य अपने समूचे जीवन में इसी संघर्ष में फँसता जाता है । कहीं पर माता-पिता से त्रस्त संतान है, तो कहीं पर संतानों से त्रस्त माता-पिता है । 'नीम का पेड़' उपन्यास में बुधिया को अपने ही बेटे सुखीराम से बार-बार अपमान सहने पड़ते हैं । टूटते हुए संबंधों के बारे में आज संयुक्त परिवार की विभावना टूटती जाती है । 'ओस की बूँद' उपन्यास में वजीर हसन का लड़का अली बाकर परिवार को छोड़कर पाकिस्तान चला जाता है । 'टोपी शुक्ला' उपन्यास में टोपी अपने ही परिवार से धृष्ट है । वह प्रेम के अभाव के कारण परिवार को छोड़कर चला जाता है । टूटते हुए परिवार आज दिन-प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं जिससे सामाजिक मूल्य भी टूटते नजर आते हैं ।

नारी जीवन को स्पर्श करते हुए लेखकने कई विचारों को स्पष्ट किया है । नारी के दुर्बल एवं सबल प्रथा को उजागर करने का प्रयास डॉ. राही ने किया है । महानगरों की समस्याओं को भी चित्रित किया है । 'सीन :७५', 'टोपी शुक्ला', 'दिल एक सादा कागज' उपन्यासों में महानगरों की इस भागदौड़ भरी जिन्दगी का वर्णन किया है जिसमें मनुष्य अपने आपको अकेला महसूस करता रहता है । सुख-संपत्ति प्राप्त करने की लालसा ने मनुष्य को अंधा बना दिया है । जिससे आज महानगरों में आम आदमी विविध समस्याओं का सामना करता है । डॉ. राही मासूम रजाने सामाजिक चेतना अंतर्गत समाज को स्पर्श करनेवाले इन सभी पहलुओं पर विचार विमर्श प्रस्तुत किया है ।

डॉ. राही के उपन्यासों में वर्णित राजनीतिक चेतना वास्तव में भारतीय पारंपरिक समाज में एक नयी जागरुकता का उदय है । समाज में प्रत्येक व्यक्ति पर राजनीति के व्यवहारिक पक्ष का प्रभाव दिखाई देता है । राजनीति के तत्कालीन परिवेश के प्रति डॉ. राही ने अपनी अनेक तर्क वितर्क प्रतिक्रियाएँ व्यक्त की हैं । वे केवल राजनीतिक न होकर समाजशास्त्रीय, धार्मिक एवं आध्यात्मिक चिंतक भी हैं । फिर भी अपने युग की राजनीतिक गतिविधियों के प्रति अधिक जागरुक और संवेदनशील हैं । राजनीति के बदलते प्रतिमानों, नेताओं की राक्षसी हरकतों, अवसरवादिता, साहित्य व शिक्षण पर हावी होती जाती आज की भ्रष्ट राजनीति को उन्होंने नजर अंदाज नहीं किया है बल्कि बड़ी तटस्थता और साहसिकता से इस भ्रष्ट राजनीति के अन्तविरोधों को उजागर किया है । समकालीन राजनीति का प्रतिबद्धता से परे उनका तटस्थ मूल्यांकन रहा है । डॉ. राही की राजनीतिक चेतना उत्पीड़ित जनता से जुड़ी हुई है । अपने युग की राजनीतिक गतिविधियों के प्रति डॉ. राही अधिक जागरुक और संवेदनशील रहे हैं । उन्होंने राजनीतिक चेतना के अंतर्गत जमींदारी प्रथा और जमींदारी उन्मूलन की घटनाओं को स्पष्ट किया है । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में फुन्ननमियाँ जैसे कई जमींदार हैं । जिनको जमींदारी का नशा है । किन्तु जमींदारी उन्मूलन से जमींदारों की जड़े हिल गईं । ‘नीम का पेड़’ उपन्यास में अली जामिन खाँ और उनके खाला के भाई मुस्लिम मियाँ जमींदारी उन्मूलन से दुःखी हैं । इस तरह की सामंतीय जीवन में आये विघटन और उससे उत्पन्न परिस्थितियों का वर्णन किया गया है । आपातकालीन परिस्थितियों में सरकार की दूहरी राजनीति एवं उनके भोग बने आम आदमी की गाथा बताई गई है । ‘कटरा बी-आर्जू’ उपन्यास में इमरजन्सी की घोषणा से इसका जनजीवन पर असर होता है । राजनेता अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए आपातकालीन परिस्थिति की घोषणा करते हैं । जिनका सामना समाज के मध्यमवर्ग को करना पड़ता है ।

राजनीति का प्रभाव प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई पड़ता है । समाज में राजनेता और उनकी गंदी राजनीति के कारण दिन-प्रतिदिन भ्रष्टाचार जैसी प्रवृत्तियाँ पनपती जाती है । “नीम का पेड़” उपन्यास का सुखीराम, मुस्लिम मियाँ ‘ओस की बूँद’ उपन्यास का वजीर हसन आदि स्वार्थी राजनेता का नेतृत्व करते हैं । राजनीति में जातिवाद का जहर भी फैला हुआ दिखाई देता है । राजनीति जातिवाद के भेदभावों को महत्व देती है । यदि किसी नेता को वोट चाहिए तो वह जातिवाद के आधार पर निर्धारित होता है कि किसको कितने वोट मिलते हैं । हिन्दू-मुसलमान आदि कई जातियों में राजनीति विभाजीत है । राजनीति में जातिवाद के प्रवेश होने से सांप्रदायिक दंगों को भी बढ़ावा मिलता है । राजनेताओं की गंदी राजनीति के कारण लोग आपस में लड़ते हैं । राजनेता धर्म एवं जाति का विभाजन करके जनता को गुमराह करते हैं । राजनीति के दाँवपेचों में न्याय व्यवस्था को भी जकड़कर रखा है । आजकल न्याय को भी राजनीति के प्रभाव से खरीदा जाता है । ‘नीम का पेड़’ उपन्यास में जामिन मियाँ को राजनीति के दाँवपेच में सजा होती है । गवाहों को तोड़ा जाता है, खरीदा जाता है । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में कोमिल के केस में अदालत में राजनीति दिखाई देती है । इसमें कलेक्टर साहब के आदेश पर जज अपना फैसला सुनाते हैं । शिक्षा के क्षेत्र में भी राजनीति अपना प्रभाव दिखाती है । शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा में ज्यादा राजनीति को महत्व दिया जाता है । ‘ओस की बूँद’ उपन्यास में हयतुल्लाह अंसारी जो राजनीति के माध्यम से हाइस्कूल से हायर सेकण्डरी करने की कोशिश करता है । ‘टोपी शुक्ला’ उपन्यास में टोपी को शिक्षा संस्थाओं से अन्याय होता है । उनको किसी न किसी कारण नोकरी से निकाल दिया जाता है । इसके पीछे भी राजनीति का हाथ होता है । डॉ. राहीने राजनीति विषयक इन खोखली परंपरा का खंडन किया है । समाज में फैली गंदी राजनीति का उन्होंने विरोध किया । वे खुद राजनीति को मानते हैं, किन्तु इन राजनीति के पीछे हो रहे

आडंबरो को वे सहन नहीं कर सकते थे । इसलिए उनके उपन्यासों में राजनीति विषयक चेतना को विभिन्न पहलुओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है ।

डॉ. राही के उपन्यासों में समकालीन अनेक स्थितियों एवं गतिविधियों के साथ साथ समाज में धार्मिकता एवं धर्म को लेकर प्रचलित मतमतांतर, विभिन्न विचारधाराएँ एवं धर्म के अनेक रूपों पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं । धर्म किसी भी व्यक्ति के लिए आस्था का प्रतीक है । किन्तु आज के आधुनिक युग में धर्म का वास्तविक स्वरूप नष्ट हो गया है । धर्म के नाम पर आडंबरो का बोल बोला रहा है । धर्म की आड़ लेकर व्यक्ति अपने स्वार्थों की सिद्धि करता है । धर्म किसी भी व्यक्ति को जीवन जीने की राह देता है । किन्तु वही धर्म आज मनुष्य को अज्ञानता की ओर ले जाता है ।

डॉ. राही धर्म में विश्वास करते थे, किन्तु बाह्याडम्बरों पर उनको विश्वास नहीं था । इसलिए उन्होंने धर्म के अनेक विकृत रूपों की विसंगतियों पर अपने तीखे प्रहार किये हैं । उन्होंने धार्मिक चेतना के अंतर्गत अंधश्रद्धा, मनौतियाँ, भूतप्रेत संबंधी परिकल्पना धार्मिक आडम्बरो आदि का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है । भारतीय समाज में अंधश्रद्धा की जड़े इतनी गहरी हैं कि आज आदमी इसके पिछे अंधा होता जा रहा है । डॉ. राही मासुम रज़ाने अपने उपन्यासों में विभिन्न मनोतियों का जिक्र किया है । मनुष्य अपने दुःखों से बचने के लिए विभिन्न मनोतियों का सहारा लेता है । विभिन्न देवी देवताओं में आस्था रखनेवाले लोग अपने अपने मन में संकल्प निर्धारित कर देते हैं । ‘आधा गाँव’ उपन्यास में फुन्नमियाँ की रिहाई के लिए कुलसुम मन्नत मानती है । उपन्यास में पात्र किसी न किसी कार्य की सिद्धि के लिए मन्नत मानते हैं । ‘कटरा बी आर्जू’ में मुनियाँ भरतकुमार पहलवान के लिए मन्नत रखती है । लोग धार्मिक अंधविश्वास में डुबते जाते हैं । भूतप्रेत संबंधी बातों का चित्रण भी किया है । समाज में रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति भूतप्रेत में विश्वास

करता है। 'आधा गाँव' उपन्यास में स्त्रियों पर भूत सवार हो जाता है। तो कहीं पेड़ पर, कहीं गोदाम में, आदि भूतप्रेत संबंधी चर्चाएँ होती हैं।

'ओस की बूँद' उपन्यास में वजीर हसन की बीबी पागल हो जाने पर बताया जाता है कि उन पर भूत का साया है। 'सीन :७५' में भी होस्टेल के सामने के पेड़ पर भूत की अफवाह चलती है। इन भूतप्रेतों में जनता विश्वास रखती है। डॉ. राही के उपन्यासों में समाज में फैले भूतप्रेत संबंधी प्रकल्पनाओं के तथा अंधविश्वास के बड़े ही जीवंत चित्र प्रस्तुत हुए हैं।

धार्मिक चेतना में डॉ. राही के उपन्यास में कई स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम एकता के दर्शन होते हैं। हिन्दू-मुस्लिम दोनों आपस में मिलजुलकर रहते हैं। दोनों ही एक दूसरे के त्यौहारों में शरीक होते हैं। 'ओस की बूँद' उपन्यास में दीनदयाल और वजीर हसन दोनों अपनी मित्रता के संबंध बनाये रखते हैं। 'असंतोष के दिन', 'कटरा बी आर्जू', 'टोपी शुक्ला' आदि उपन्यासों में एकता के दर्शन होते हैं। धर्म किसी भी व्यक्ति के लिए श्रद्धा एवं विश्वास का प्रतीक है। डॉ. राही ने अपने उपन्यासों में धार्मिक आडंबरों का चित्रण भी किया है। 'आधा गाँव' उपन्यास में मजीलसों में बेहोश होने की परंपरा में आडंबर दिखाई देते हैं। 'ओस की बूँद' का बेहाल शाह जो धार्मिक व्यक्ति होते हुए भी बाह्य आडंबरों में फँसा है और लोगों को अपनी झूठी बातों में फँसाकर गुमराह करता है। समाज में ऐसे कई लोग हैं, जो धर्म को भ्रष्ट करने की कोशिश करते हैं। धर्म के आधार पर लोगों का विभाजन होता है और सांप्रदायिक दंगे, भ्रष्टाचार, अत्याचार आदि गुनाह समाज में पनपते जाते हैं। डॉ. राही मासूम रज़ा ने धर्म संबंधी समाज में फैली ऐसी कुरितियों को देखा एवं अनुभव किया। बाद में उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया। धार्मिक चेतना को प्रस्तुत करनेवाले से भी तथ्यों पर उन्होंने निर्देश किया है। समाज को एक नई दिशा बताने का कार्य किया है। धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचारों का शिकार ज्यादातर ऐसे लोग होते

हे, जो अज्ञान होते हैं । धार्मिक चेतना के द्वारा धर्म का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया है । आज मनुष्य धर्म को अधर्म में बदल रहा है, जिससे समाज में अनैतिकता फैलने की संभावनाएँ हैं । समाज के विभिन्न वर्ग के लोग धर्म की आड़ में विकासमान विभिन्न धार्मिक गेरकृत्य एवं अंधश्रद्धाओं की चपेट में आकर शोषण का शिकार हो रहे हैं, जिससे बाह्य आडंबर में वृद्धि होती जा रही है । दूसरी तरफ निम्न वर्ग का समाज अपने जीवन को धर्म के आधार पर परावलंबी बनाता जा रहा है । डॉ. राही ने अनेक वास्तविक घटनाओं द्वारा धर्म के प्रति ज्ञानात्मक जागृति की अभिव्यक्ति प्रस्तुत करते हुए धार्मिक चेतना को व्यक्त किया है ।

कोई भी लेखक सामाजिक स्थितियों से अलग होकर नहीं लिख सकता । डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में युग-चेतना के विविध संदर्भों को देखने-परखने के बाद निश्चय ही कहा जा सकता है कि उनकी दृष्टि अत्यंत प्रगाढ़ और गहरी है । डॉ. राही अपने मौजूदा समाज के प्रत्यक्षदर्शी लेखक हैं । उन्होंने आँखें मूँदकर किसी का अनुकरण नहीं किया है । आँखें खोलकर देखने से जो कुछ नजर आया, उन सब को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करने का इमानदार प्रयत्न किया । सचेत साहित्यकार होने के नाते युग चेतना की प्रतिष्ठा को ध्यान में रखकर साहित्य के उक्त महनीय अपने फर्ज को निभाने में हिन्दी के आधुनिक उपन्यासकारों में डॉ. राही मासूम रज़ा सर्वाधिक कामयाब सिद्ध हुए हैं । डॉ. राही के उपन्यासों में युग-चेतना को युगीन आधार देकर प्रस्तुत शोध कार्य में विश्लेषण किया गया है ।



## परिशिष्ट

---

- आधार ग्रन्थ
- सन्दर्भ ग्रन्थ
- शब्द कोश एवं साहित्य कोश
- पत्र-पत्रिकाएँ
- वेबसाईट

### संदर्भ ग्रंथ सूची

- **आधार ग्रन्थ :** (डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यास)
१. आधा गाँव – डॉ. राही मासूम रज़ा  
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष १९६६ प्र.सं.
  २. टोपी शुक्ला – डॉ. राही मासूम रज़ा  
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष १९६६ प्र.सं.
  ३. ओस की बूँद – डॉ. राही मासूम रज़ा  
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष १९७० प्र.सं.
  ४. दिल एक सादा कागज – डॉ. राही मासूम रज़ा  
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष १९७३ प्र.सं.
  ५. सीन:७५ – डॉ. राही मासूम रज़ा  
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष १९७७ प्र.सं.
  ६. कटरा बी आर्जू – डॉ. राही मासूम रज़ा  
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष १९७८ प्र.सं.
  ७. असन्तोष के दिन – डॉ. राही मासूम रज़ा  
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष १९८६ प्र.सं.
  ८. हिम्मत जौनपुरी – डॉ. राही मासूम रज़ा  
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष १९८५ प्र.सं.
  ९. नीम का पेड़ – डॉ. राही मासूम रज़ा  
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, वर्ष २००३ प्र.सं.

➤ सन्दर्भ ग्रन्थ :

♦ हिन्दी संदर्भ ग्रन्थ

१. अमृतलाल नागर व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धांत - सुरेश बत्रा, पंचशील प्रकाशन, वर्ष-१९८४, प्र.सं.
२. आचार्य क्षेमेन्द्र 'सुमन' व्यक्तित्व कृतित्व - डॉ. आशा अग्रवाल, पुस्तकायन, नई दिल्ली, वर्ष-१९६२, प्र.सं.
३. आधुनिक खंडकाव्य में युग-चेतना - डॉ. एन. डी. पाटील, अतुल प्रकाशन, कानपुर, वर्ष-१९६६, प्र.सं.
४. आधुनिकता के पहलु - विपिन कुमार अग्रवाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष-१९७२, प्र.सं.
५. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण - डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-१९७३, प्र.सं.
६. आँचलिकता से आधुनिकता बोध - भगवती प्रसाद शुक्ल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-१९७२, प्र.सं.
७. उपन्यास और राजनीति - सुषमा शर्मा, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष-१९७६, प्र.सं.
८. उपन्यासकार राही मासूम रज़ा (आँचलिकता के परिप्रेक्ष्य में) - डॉ. सुनंदा मग्गीरवार, विनय प्रकाशन, कानपुर-२१, वर्ष-२००५, प्र.सं.
९. ग्रामीण समाजशास्त्र - रामबिहारी तोमर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष-१९८७, प्र.सं.
१०. डॉ. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में व्यक्त जीवन दर्शन - डॉ. सुनंदा मग्गीरवार, विनय प्रकाशन, कानपुर, वर्ष-२००५, प्र.सं.
११. डॉ. रांगेय राघव के उपन्यासों में युग-चेतना - डॉ. प्रभुलाल डी. वैश्य, तारामण्डल प्र. प्रा. लि., विकास कोलोनी, अलीगढ़

१२. धर्म और राजनीति - डॉ. रामजी मिश्र, आचार्य प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष-२००१, प्र.सं.
१३. धर्म और समाज - डॉ. राधाकृष्णन, राजकमल एण्ड सन्स, दिल्ली, वर्ष-१९६३, प्र.सं.
१४. पंत के काव्य में समाज एवं संस्कृति - डॉ. गीता दुबे, गरिमा प्रकाशन, कानपुर, वर्ष-२००२, प्र.सं.
१५. प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में अस्तित्ववाद - डॉ. शुकदेवसिंह, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, वर्ष-१९६०
१६. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग-चेतना - डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-१९६२, प्र.सं.
१७. भारतीय ग्राम : स्थानिक परिवर्तन और आर्थिक विकास - डॉ. पूरनचंद जोशी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-१९८४, प्र.सं.
१८. मार्क्स ऐंग्लस साहित्य तथा कला हिन्दी अनुवाद - प्रगति प्रकाशन
१९. मानव मूल्य और साहित्य - डॉ. धर्मवीर भारती - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, वर्ष-१९६०, प्र.सं.
२०. व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. पुरुषोत्तम दुबे, सरस्वती प्रकाशन, दिल्ली, १९८४, प्र.सं.
२१. राही मासूम रज़ा : एक अध्ययन - डॉ. जिलेदारसिंह, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, वर्ष-२००५, प्र.सं.
२२. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों में समकालीन संदर्भ - डॉ. शैलजा शराफ (जायस्वाल), चंद्रलोक प्रकाशन, कानपुर, वर्ष २००६, प्र.सं.
२३. राही मासूम रज़ा के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन - डॉ. मुहम्मद फरीदुद्दीन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, वर्ष-१९६६, प्र.सं.

२४. राही मासूम रज़ा का रचना संसार – रेहाना रिजवी, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-१९६४, प्र.सं.
२५. युग और साहित्य – शान्तिप्रिय द्विवेदी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, वर्ष-१९८७, प्र.सं.
२६. विविध बोध नये हस्ताक्षर – डॉ. हुकुमचंद राजपाल, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष-१९७६, प्र.सं.
२७. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास – डॉ. रामगोपालसिंह, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, वर्ष १९६५, प्र.सं.
२८. समाजशास्त्र विवेचन – नरेन्द्र सिंधी, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, वर्ष-१९७३, प्र.सं.
२९. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी समीक्षा में काव्य मूल्य – रामजी तिवारी, अतुल प्रकाशन, कानपुर, वर्ष-१९८०, प्र.सं.
३०. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण – डॉ. हेमेश्वरकुमार पानेरी, संधि प्रकाशन, जयपुर, वर्ष-१९७४, प्र.सं.
३१. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप – डॉ. गणेशदास, अक्षय प्रकाशन, कानपुर, वर्ष-१९६२, प्र.सं.
३२. स्त्री अपेक्षिता – प्रभा खेतान, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष-१९८०, प्र.सं.
३३. सामाजिक विघटन – डॉ. सरला दुबे, सरस्वती प्रकाशन सदन, दिल्ली, वर्ष-१९७१, प्र.सं.
३४. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना – ज्ञानचन्द गुप्त, अभिनव प्रकाशन, सीलमपुर, दिल्ली, वर्ष-१९७४, प्र.सं.
३५. समाजशास्त्र के सिद्धांत – डॉ. डी. आर. सचदेव, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, वर्ष-१९६१, प्र.सं.

३६. हिन्दी के आँचलिक उपन्यासों में जीवन सत्य - डॉ. इन्दुप्रकाश मिश्र पाण्डेय, नेशनल पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली
३७. हिन्दी उपन्यास युग-चेतना और पाठकीय संवेदना - डॉ. मुकुन्द त्रिवेदी, अनुपम प्रकाशन, पटना, वर्ष-१९६०, प्र.सं.
३८. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना - डॉ. रजनीकांत शाह, संस्कृति प्रकाशन, अहमदाबाद, वर्ष-१९६०, प्र.सं.
३९. हिन्दी उपन्यास : सांस्कृतिक एवं मानवतावादी चेतना - डॉ. सच्चिदानंद रोय, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-१९८६, प्र.सं.
४०. हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना - डॉ. रत्नाकर पांडेय, पांडुलिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-१९८३, प्र.सं.
४१. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
४२. हिन्दी उपन्यास पहचान और परख - डॉ. इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-१९७३, प्र.सं.
४३. हिन्दी उपन्यास रचना विधान और युग-बोध - बसंती पंत, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, वर्ष-१९७३, प्र.सं.
४४. हिन्दी उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना - डॉ. सुष्मा गुप्त, सूर्या प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-१९८३, प्र.सं.
४५. हिन्दी उपन्यासों में शास्त्रीय विवेचन - डॉ. महावीरमल लोढ़ा, बोहरा प्रकाशन, जयपुर, वर्ष-१९७२, प्र.सं.
४६. हिन्दी उपन्यास - सुरेश सिन्हा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-१९७६, प्र.सं.
४७. हिन्दी उपन्यास साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन - डॉ. रमेश तिवारी, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद

४८. ऑंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प - डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष-१९७५, प्र.सं.
४९. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ - डॉ. रामविलास शर्मा
५०. संक्षिप्त हिन्दी साहित्य समीक्षा - डॉ. वखतसिंह गोहिल, प्रकाशक सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट, वर्ष २००६, प्र.सं.

♦ **शब्द कोश एवं साहित्य कोश**

१. नालंदा शब्द सागर
२. हिन्दी विश्वकोश भाग-४
३. भाषा शब्दकोश
४. हिन्दी साहित्य कोश भाग-१
५. शब्दार्थ दर्शन
६. हिन्दी शब्दसागर भाग-८
७. संक्षिप्त हिन्दी शब्दकोश
८. बृहद हिन्दी शब्दकोश

♦ **पत्र-पत्रिकाएँ**

१. धर्मयुग
२. साप्ताहिक हिन्दूस्तान
३. आलोचना (त्रिमासिक)
४. नई धारा (मासिक)
५. सारिका